ॐ

ISSN :- 0976-4321

वास्तुशास्त्र अध्ययन माला – तृतीय पुष्प

वास्तुशास्त्रविमर्श

सन्दर्भित एव मूल्याङ्कित शोधपत्रिका

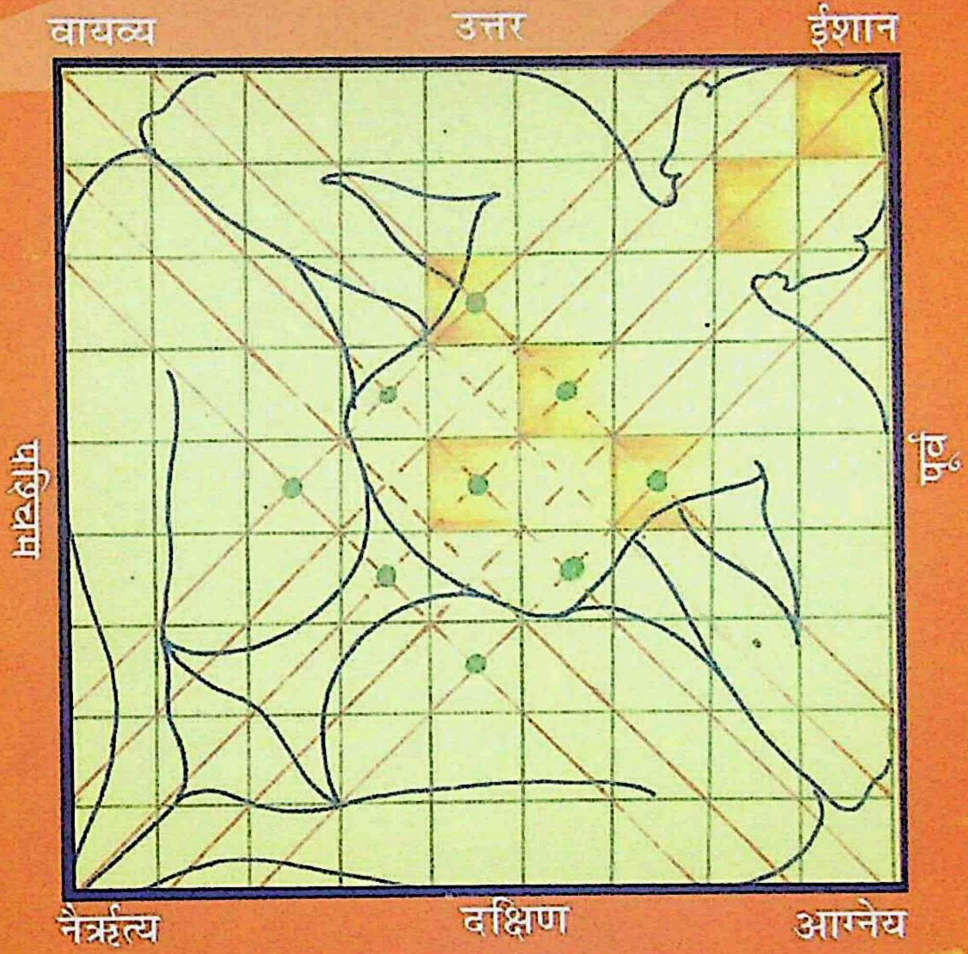

श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः

(केन्द्रीयविश्वविद्यालयः)

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

नवदेहली-110016

तृतीय पुष्प

वास्तुशास्त्रविमर्श

प्रधान सम्पादक

प्रो० वाचस्पति उपाध्याय

कुलपति

सम्पादक

प्रो० प्रेमकुमार शर्मा
अध्यक्ष
ज्योतिषविभाग
संकाय-वेदवेदाङ्ग

प्रो० देवीप्रसाद त्रिपाठी
संयोजक
वास्तुशास्त्र नवीकरण कार्यक्रम
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग

M.Katyayana

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय

(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)

नई दिल्ली-११००१६

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

प्रकाशक-
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
कुतुब सांस्थानिक क्षेत्र, नई दिल्ली-110016

© प्रकाशक

प्रकाशन वर्ष - मार्च, 2009
पुनर्मुद्रण, 2020

मूल्य २००/-

प्रकाशक की लिखित पूर्वानुमति के बिना इस ग्रन्थ के किसी भी अंश का अनुवाद या किसी भी रूप में नकल व उपयोग करना सर्वथा वर्जित है।

मुद्रक:
गणेश प्रिंटिंग प्रैस
कटवारिया सराय, नई दिल्ली-110016
9811663391, 9811663393

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

पुरोवाक्

भारतीय वास्तुशास्त्र का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति को सर्वविध सुख, समृद्धि एवं शान्ति प्रदान करना है। जीवन में आहार, परिधान एवं आवास की व्यवस्था सभी को सुलभ हो यह कल्याणकारी राज्य का एक आदर्श संकल्प माना गया है। वास्तुशास्त्र गृह निर्माण के सन्दर्भ में हमारा पथप्रदर्शक शास्त्र है। आवास में सर्वविध सुविधाओं के साथ-साथ यह शास्त्र निर्माण से सम्बन्धित तकनीकि दृष्टियों पर भी मार्ग निर्देशन करता है। मानव जीवन के पुरुषार्थ चतुष्टय की सम्पन्नता में आवास की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

वास्तुशास्त्र ज्योतिषशास्त्र का अंग है और ज्योतिष वेदाङ्ग है। वेदाङ्गों में इसे नेत्र कहा गया है। नेत्र अपने कर्त्ता तक ज्ञान का सम्प्रेषण अन्य ज्ञानेन्द्रियों की अपेक्षा शीघ्रतर करता है। सायण के अनुसार वेद का उद्देश्य इष्ट प्राप्ति एवं अनिष्ट परिहार के लिए एवं अलौकिक उपायों का निर्देश करना है- **इष्टप्राप्तिरनिष्टपरिहारयोर-लौकिकमुपायं यो वेदयति सः वेदः।** उपाय अनिष्ट के बाद हो अथवा पहले, यदि बाद में हो तो उपाय का क्या प्रयोजन? अनिष्ट का ज्ञान अभी हुआ ही नहीं कि अनिष्ट आदिभौतिक, आदिदैविक एवं आध्यात्मिक में से कौन-सा है? इष्टानिष्ट के ज्ञान की प्रत्याशा में ही ज्यातिषशास्त्र का विकास हुआ। ज्योतिषशास्त्र ने वास्तुशास्त्र के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया कि कौन व्यक्ति किस दिग् देश में किस काल तक सुखी एवं समृद्ध रह कर अपने अभ्युदय को प्राप्त कर सकता है। मानव का अभ्युदय एवं निःश्रेयस सिद्ध हो यही धर्म है–**यतोऽभ्युदयनिश्रयस् सिद्धिः स धर्मः।** (वैशेषिकसूत्र 1.1.2)

अथर्ववेद का उपवेद स्थापत्य ही कालान्तर में वास्तु शास्त्र या शिल्पशास्त्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस प्रसंग में प्रशंसा करते हुए विश्वकर्मा कहते हैं कि–

यत्प्रसादान्मया ज्ञातं वास्तुशास्त्रमिदं ततम्।
शास्त्रेणानेन सर्वस्य लोकस्य परमं सुखम्।।

चतुवर्गफलप्राप्तिस्सलोकश्च भवेद् ध्रुवम्।
शिल्पशास्त्रपरिज्ञानम्मर्त्योऽपि सुरतां ब्रजेत्।।

परमानन्दजनकं देवानामिदमीरितम्।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

शिल्पं विना नहि जगत्त्रिषु लोकेषु विद्यते।।
जगद्विना न शिल्पञ्च वर्तते वासव प्रभो।
अतो लोकेषु सर्वेषु शिल्पं बहुविधा ततम्।।
ग्रामाणाञ्च पुरीणाञ्च लक्षणं बहुधा स्मृतम्।। (2.29.33)

संस्कृत साहित्य में कला विषयक तीन शास्त्र हैं–वास्तु, शिल्प एवं चित्र। प्रायः वास्तुशास्त्र के आचार्य शिल्पशास्त्र को वास्तुशास्त्र का पर्याय मानते हैं परन्तु कुछ आचार्य इसे शिल्पशास्त्र के अन्तर्गत स्वीकार करते हैं। धाराधिपति भोज के समराङ्गणसूत्रधार को देखने से ज्ञात होता कि शिल्प ओर चित्र वास्तुशास्त्र के ही अंग हैं। समराङ्गणसूत्रधार ने वास्तुशास्त्र को तीन भागों में विभक्त करते हुए भवनादि निर्माण में वास्तुशास्त्र की, प्रतिमादि निर्माण में शिल्पशास्त्र की एवं आलेख में चित्रशास्त्र की भूमिका स्वीकार की है। समराङ्गणसूत्रधार एवं शिल्परत्न ही सम्पूर्ण वास्तुशास्त्र के ग्रन्थ हैं क्योंकि इन ग्रन्थों ने ही स्थापत्य के आठ अंगों पुर, दुर्ग, भवन, प्रासाद, प्रतिमा, चित्र, यन्त्र एवं शयनासन का वर्णन कर भारतीय स्थापत्य की अविकल परम्परा को पल्वित एवं पुष्पित किया है। वास्तु परक तत्त्वों का मूल शुल्बसूत्रों में है। वास्तु एवं शिल्प में अभेद्य सम्बन्ध ही नहीं अपितु दोनों को आचार्यों ने एक ही स्वीकार किया है। रूपमण्डन में अब ऐसी धारणा व्यक्त करते हुए श्री सूत्रधारमण्डन ने अपनी कृति को वास्तुशास्त्र के ही अन्तर्गत माना है। यथा–

विश्वरूपं नमस्कृत्य पूर्वतन्त्रानुसारतः।
मण्डनस्तनुते वास्तुशास्त्रं श्रीरूपमण्डनम्।। (01.01)

आज सामाजिक जीवन में वास्तुशास्त्र की चर्चा सर्वाधिक रूप में होती हुई दिखाई देती है परन्तु शास्त्रीय ज्ञान के अभाव में इस शास्त्र के जिज्ञासु जनों को सम्यक् दिशा निर्देश नहीं मिल पाता है। सम्प्रति प्रायः वास्तुशास्त्री मात्र दिग् का सहारा लेकर इस शास्त्र को दिग् भ्रमित करने में लगे हैं जबकि आज भी इस शास्त्र की एक सुदृढ़ अलौकिक परम्परा हमारे समक्ष ग्रन्थों एवं पुरातत्त्वाभिलेखों के रूप में विद्यमान है। इस शास्त्र के शास्त्रीय ज्ञान से अनभिज्ञ होने के कारण समाज को भयंकर परिणाम भोगने पड़ सकते हैं। अतः इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए विद्यापीठ ने स्वतन्त्र रूप से इसके अध्ययन-अध्यापन कराने का निश्चय किया। वर्तमान में इस शास्त्र का अध्ययन ज्यौतिष विभाग में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा प्रदत्त इनोवेटिव प्रोग्राम के तहत चल रहा है। विद्यापीठ का प्रयास है कि यह स्वतन्त्र विभाग के रूप में आगे कार्य करे। इस वास्तुशास्त्र अध्ययन माला के तृतीय पुष्प **वास्तुशास्त्रविमर्श** को वास्तुशास्त्र नवीकरण कार्यक्रम के

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

संयोजक प्रो. देवीप्रसाद त्रिपाठी ने विभिन्न शोधपूर्ण लेखों से सुसज्जित किया है। यह इनके निरन्तर कार्य करने का ही परिणाम है। अतः मैं इन्हें हार्दिक साधुवाद देता हूँ।

यह विषय आज जितना लोकप्रिय है उतना ही शास्त्रीय भी है। इस शास्त्र के गूढ़तम तथ्यों को जन-जन तक पहुँचाने और प्रचलित भ्रान्त धारणाओं के निराकरण में ज्यौतिष विभाग द्वारा किया जाने वाला यह कार्य एक स्वच्छ एवं सुदृढ़ भूमिका का निर्वहन कर रहा है। मैं विभागीय सभी विद्वज्जनों को धन्यवाद देते हुए, इस वास्तुशास्त्र अध्ययनमाला तृतीय पुष्प **वास्तुशास्त्र विमर्श** को वास्तुशास्त्र प्रेमियों के अध्यनार्थ समर्पित करते हुए हर्ष एवं गौरव का अनुभव कर रहा हूँ।

वर्षप्रतिपदा वि.सं. 2066
दिनाङ्क 27-3-2009

प्रो. वाचस्पति उपाध्याय
कुलपति

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

दो शब्द

भारतीय वास्तुशास्त्र की अनवरत परम्परा वैदिक काल से चलती आ रही है। अथर्ववेद के उपवेद स्थापत्यवेद में वास्तुशास्त्र के मूल सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है। इसी परिप्रेक्ष्य में वास्तुशास्त्र के सभी अङ्गों के मर्मज्ञ वास्तुविद को स्थपति कहा गया है। सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा ने केवल मानसी सृष्टि की। सृष्टि के उपरान्त इस ऊँची नीची धरा को महाराज पृथु ने समीकृत करके आवास योग्य पुर, ग्राम पत्तन, प्रसाद, भवन आदि का निर्माण प्रधान स्थपति विश्वकर्मा से करवाया। वास्तु शब्द का व्यापक अर्थ धरा है और इस धरा पर निर्मित पुर, भवन, प्रासाद आदि सभी वास्तु हैं। जिस शास्त्र में इन वास्तु के नियमों का प्रतिपादन किया जाता है, वह वास्तु शास्त्र कहलाता है। भारतीय शास्त्रों की यह परम्परा रही है, कि यहाँ कोई भी कार्य देवकल्पना के बिना प्रारम्भ नहीं किया जाता। अतः भारतीय संगीतशास्त्र में 'नादब्रह्म', व्याकरण शास्त्र में 'शब्दब्रह्म' इसी प्रकार वास्तुशास्त्र में 'वास्तुब्रह्म' तथा अन्यान्य शास्त्रों में तत्तद् देवभावनाओं की परिकल्पना की गयी है। भारतीय कला एवं विज्ञान अध्यात्म की पृष्ठभूमि पर अधारित है, जबकि पाश्चात्य कला मात्र सौन्दर्य तथा विज्ञान मात्र भौतिक है। इस प्रकार स्थापत्यवेद से लेकर वर्तमान तक वास्तुशास्त्र का विकसित स्वरूप भारतीय वास्तुशास्त्र के मानकग्रन्थों विश्वकर्माप्रकाश, समराङ्गणसूत्रधार, अपराजितपृच्छा, शिल्परत्न, मयमतम्, मानसार, प्रासादमण्डन, वास्तुरत्नाकर, वास्तु-रत्नावली आदि में मिलता है; जिसमें पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश इन प्राकृतिक पाँचमहाभूतों के सन्तुलन तथा गुरुत्वशक्ति, चुम्बकीय शक्ति एवं सौर ऊर्जा इन तीन प्रकार की प्राकृतिक शक्तियों के प्रबन्धन के सिद्धान्तों का विस्तार से विवेचन किया गया है। मानसार, मयमतम् आदि द्राविड़ी परम्परा के वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थ शिल्पशास्त्र के नाम से भी जाने जाते हैं। द्रविड़ अथवा दक्षिण की वास्तुकला में चित्रण का प्रधान्य होने से **'प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति'** इस नियम से वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों को भी शिल्पशास्त्र की संज्ञा दी गयी है। स्थापत्यशास्त्र, वास्तुशास्त्र, शिल्पशास्त्र में तीनों शब्द पर्याय के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। वस्तुतः वास्तुशास्त्र की व्यापकता की दृष्टि से इसके वास्तु, शिल्प तथा चित्र ये तीन अङ्ग कहे जा सकते हैं, जो कि एक दूसरे के उपकारक हैं। शिल्प रत्न में विमान और गोपुर में चित्रकला के प्राशस्त्य को इस प्रकार कहा गया है

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

एवं सर्वविमानानि गोपुरादीनि वा यतः।
मनोहरतरं कुर्यान् नानाचित्रैर्विचित्रितम्।।

द्राविड़ी परम्परा में विमान एवं गोपुर में चित्रकला को विशेष महत्व दिया गया है। उत्तर और दक्षिण का मिश्रित स्वरूप बेसर परम्परा में मिलता है। इस प्रकार उत्तर में विश्वकर्मा तथा दक्षिण में मयमत के अनुसार ये दोनों परम्परायें अक्षुण्ण रूप से चलती रहीं। **"युगानां परिवर्तेन कालभेदोऽत्र केवलम्"** सूर्य सिद्धान्त की इस उक्ति के अनुसार वास्तुशास्त्र के इन मानकग्रन्थों के मूलभूत सिद्धान्तों के अनुसार ज्योतिषविभागाध्यक्षचर प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी जी ने विभागीय प्राध्यापकों के सहयोग से यू.जी.सी. प्रदत्त इन्नोवेटिव प्रोग्राम के अन्तर्गत सत्र 2004 से प्रवर्तित वास्तुशास्त्र में द्विवर्षीय पी.जी. डिप्लोमा पाठ्यक्रम की अध्ययन सामग्री का निर्माण किया, जिसमें वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आवासीयवास्तु, व्यावसायिक वास्तु एवं धार्मिकवास्तु के सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है।

यह प्रकाशन विद्यापीठ के यशस्वि एवं मनस्वि कुलपति प्रो. वाचस्पति उपाध्याय जी की सत्प्रेरणा, दूरदर्शिता एव निरन्तर कार्यशीलता का परिणाम है। अतः मैं प्रणताञ्जलि पूर्वक इनको कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। इस प्रोग्राम के सूत्राधार ज्योतिषविभागाध्यक्षचर प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी जी का सेवानिवृत्ति के उपरान्त भी विभाग को निरन्तर मार्गदर्शन मिलता रहता है। अतः मैं इनका प्रणताञ्जलि पूर्वक आभार व्यक्त करता हूँ। इस प्रकाशन हेतु वास्तुशास्त्र नवीकरण कार्यक्रम के संयोजक प्रो. देवीप्रसाद त्रिपाठी, समिति के सभी सदस्यों एवं अन्य सभी विद्वानों को साधुवाद देता हूँ, जिनके परामर्श एवं विमर्श से वास्तुशास्त्र विमर्श के इस तृतीय पुष्प का प्रकाशन सम्पन्न हुआ है। आशा है, कि जिज्ञासु सुधीजन इस प्रकाशन से अवश्य लाभान्वित होंगे।

प्रो. प्रेमकुमार शर्मा
अध्यक्ष- ज्योतिष विभाग

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सम्पादकीय

वास्तु एवं वास्तुशास्त्र की कल्पना आदिकाल से ही दिखाई देती है जब मनुष्य कुञ्जों गह्वरों आदि में निवास करते थे, तब सम्भवतः आवासीय व्यवस्था नहीं रही होगी तथाऽपि उप काल में भी मनुष्य अपनी बौधिक क्षमता के कारण एक सुरक्षित आवास का ही चयन करते थे। पौराणिक आधार पर ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम पृथु ने ब्रह्मा जी के आदेशानुसार पृथ्वी को समतल कर सुव्यवस्थित आवास की परिकल्पना की। इस कल्पना के उपरान्त ही पृथु ने ब्रह्मा से कहा कि हे प्रभो! अब पृथ्वी ग्राम-नगरादि आवासीय योजनाओं के लिए पूर्वरूप में तैयार है। ब्रह्मा जी ने सम्यक् निर्माण के लिए अपने पूर्वादि मुखों विश्वभू, विश्वविद् विश्वस्रष्टा एवं विश्वस्थ से क्रमशः विश्वकर्मा, मय, मनु एवं त्वष्टा की उत्पत्ति की। यथा–

विश्वभूरिति नामैतत्पूर्ववक्त्रं प्रकीर्तितम्।
दक्षिणे विश्वविद् वक्त्रं विश्वस्थं च तथोत्तरे।।

पश्चिमे विश्वस्रष्टाख्यं वक्त्रमेव चतुर्विधम्।
एतेभ्यः प्रथमं जातं विश्वकर्मचतुष्टयम्।।

पूर्वानने विश्वकर्मा जायेत दक्षिणे मयः।
उत्तरस्य मुखे त्वष्टा पश्चिमे तु मनुः स्मृत।।[1]

ब्रह्मा जी ने अपने चारों पुत्रों से कहा कि तुम पृथ्वी में जाकर राजा पृथु के अनुसार ग्राम-नगर-पुर आदि आवासीय योजनाओं की पृथक्-पृथक रचना करो। विश्वकर्मादि ने समीचीन निर्माण के लिए ब्रह्मा के आज्ञानुपालन में एक-एक अनुयायी पुत्रों को उत्पन्न किया। विश्वकर्मा से स्थपति, मय से सूत्रग्राही, मनु से तक्षक, एवं त्वष्टा से बार्धकी की उत्पत्ति हुई। यह सर्वविदित है कि किसी भी निर्माण कार्य के लिए विभिन्न प्रकार के शिल्पियों की आवश्यकता होती है। जैसे–पाषाण विशेषज्ञ, काष्ठविशेषज्ञ, धातुविशेषज्ञ एवं चित्यादि निर्माण विशेषज्ञ। विश्वकर्मादि के ये चारों अनुयायी वेदज्ञ पुत्र सभी शास्त्रों के ज्ञाता एवं सभी प्रकार के निर्माण कार्यों में दक्ष होते थे। इन सभी में स्थपति प्रमुख अभियन्ता माने जाते थे। इनमें विशेषकर सूत्रग्राही मानचित्र विशेषज्ञ, बार्धकी चित्रकला विशेषज्ञ तथा तक्षक तक्षण कार्य के साथ ही काष्ठ विशेषज्ञ भी होते थे। इस

1. वास्तुसारसंग्रह प्राक्, पृ. 8

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

प्रकार पृथु के मनोनुकूल विश्वकर्मा ने एक सुव्यवस्थित शास्त्रसम्मत विधि से गृह, ग्राम, नगर, पुर, पत्तन आदि निर्माण कार्यों की योजना बनाकर कार्य सम्पन्न किया। यहीं से प्रायः वास्तु शास्त्र का उद्भव माना जाता है।

वास्तुशास्त्र के उद्भव के सन्दर्भ में भगवान शिव एवं अन्धकासुर के युद्ध की कथा भी बहुत प्रसिद्ध है जिससे वास्तु पुरुष का उद्भव हुआ। यह कथानक सृष्टि के विकास क्रम की प्रथमावस्था है। इसके बाद ही यह पृथ्वी गृह, ग्राम, नगर आदि के निर्माणार्थ तैयार होती है। पुराणों में वर्णन मिलता है कि किसी भी निर्माण कार्य एवं यज्ञमण्डपादि पूजन में वास्तु पुरुष का पूजन अपेक्षित है अन्यथा सुख शान्ति सम्भव नहीं है। पूजन का अभिप्राय यहाँ गृह, ग्राम, नगर आदि के तादात्म्य भाव से है यही तदात्म्य भाव ही शुभ एवं अशुभ का द्योतक होता है।

यह तो वास्तुशास्त्र का एक कथानक स्वरूप हुआ यह शास्त्र उतना ही पुरातन है जितनी मानव सभ्यता। इस शास्त्र के मूलभूत तत्त्व प्रायः सभी वेदों, वेदाङ्गों, पुराणों एवं आगमग्रन्थों में विभिन्न प्रसङ्गों में दिखाई देते हैं। वैदिकेत्तर साहित्य में भी इस शास्त्र की चर्चा पर्याप्त रूप में दृष्टिगोचर होती है। वास्तुशास्त्र का ज्यौतिष एवं कल्प के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। शुल्ब सूत्रों में यज्ञवेदियों की परिकल्पना ही इस शास्त्र की आधारशिला मानी जाती है। जिस प्रकार विभिन्न आकार के यज्ञकुण्डों से विभिन्न इष्टफलों को प्राप्त किया जाता है ठीक उसी प्रकार विभिन गृहों से भी विभिन्न फल प्राप्त होते हैं।

वस् निवासे धातु से इस शास्त्र का अर्थ गृह अथवा गृहार्थ निर्धारित भूखण्ड होता है।[1] 'ऋग्वेद में वास्तु पद का अर्थ निवास या गृह[2], अथर्ववेद में अच्छे गृह के लिए सुवास्तु तथा गृहाभाव के लिए अवास्तु शब्द प्रयुक्त हुआ है[3], जबकि यजुर्वेद संहिताओं में वास्तुशब्द का प्रयोग यज्ञवास्तु के सन्दर्भ में दिखाई देता है।[4] सूत्रग्रन्थों में वास्तुशब्द का अर्थ सामान्य निवास के रूप में प्रयुक्त होता है।[5] कौशिकगृह सूत्र में वास्तु का अर्थ मृतकों के संस्कार स्थल के रूप में मिलता है।[6]

---

1. वाचस्पत्यम् भाग 6, पृष्ठ 4888
2. ऋग्वेद 8:19:36
3. अथर्ववेद, 12:7:7
4. मैत्रावणी संहिता 1:5:113, तै. संहिता 3:1:10:3
5. आपस्तम्ब श्रोतसूत्र 6:28:6, पारस्करगृहसूत्र 3:48
6. कौशिक गृहसूत्र 5:2:13

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

रामायण[1] एवं महाभारत[2] में वास्तु गृहनिर्माण का बोधक है। पुराणों में विशेषकर मत्स्यपुराण में देवताओं के निवासस्थान मन्दिर को वास्तु कहा गया है। यथा–**निवासात् सर्वदेवानां वास्तुरित्यभिधीयते।**[3] कौटिल्य अर्थशास्त्र में वास्तु शब्द का अर्थ गृह, क्षेत्र आराम, सेतुबन्ध, तडाग एवं इनकी आधारभूमि को कहा है।[4] कामिकातन्त्र[5] में विमान प्रासादादि भवन, अपराजितपृच्छा[6] में ग्रामादि, मयमत[7] में भूमि, मानसार[8] में देवता व मनुष्यों के भवन व उससे सम्बन्धित भूमि को वास्तु शब्द से सम्बोधित किया गया है। ऋग्वेद[9] में गृह के अर्थ में 30 शब्दों का प्रयोग मिलता है। निघण्टु[10] में गृह के 22 पर्याय बताये गये हैं। अथपर्ववेद[11] के शालासूक्त में भवननिर्माण वर्णन तथा यजुर्वेद में वास्तुशब्दों का प्रयोग प्राय: यूपनिर्माण, स्तूपनिर्माण, आसन्दी एवं पर्यङ्कनिर्माण के प्रसंग में मिलता है।[12] शतपथ ब्राह्मण में यज्ञादि के प्रसङ्ग में चिति वर्णन, इष्टिका निर्माण, इष्टिका प्रकार, इष्टिका प्रमाण, आदि का वर्णन मिलता है।[13] श्रोतशुल्बसूत्र में वास्तुशब्द का वर्णन सर्वाधिक रूप में मिलता है। यज्ञवेदियों के निर्माण में शुल्बसूत्रों का एक विशिष्ट स्थान है। यहाँ शुल्ब का अर्थ रज्जू (रस्सी) से है। इसी से वेदी निर्माण के सभी कार्य सम्पादित होते हैं। यज्ञवेदी निर्माण में बौधायन, आपस्तम्ब कात्यायन शुल्बसूत्रों का तथा भूमिचयन, भूशोधन एवं भूमिपूजन में शांखायन, पारस्कर, आश्वालयन गृहसूत्रों का प्राधान्य मिलता है।[14]

वैदिक वास्तुविद् देवगण

वास्तुविद् देवगणों में सर्वप्रथम प्रजापति का तथा इनके बाद विश्वकर्मा, त्वष्टा, ऋभु एवं वास्तोष्पति की चर्चा आती है। **प्रजापति**–इन वास्तुविद् देवगणों में ऋग्वेद के हिरण्यगर्भ सूक्त के

1. बाल्मीकि रामायण 1, 23, 33, 56
2. महाभारत 2:18
3. मत्स्यपुराण 251:14
4. अर्थशास्त्र 3:8:2
5. कामिकागम 208–210
6. अपराजित्पृच्छा 2:17
7. मयमतम् 2.1
8. मानसार 2.2–3
9. ऋग्वेद 2:3:8, 1:154:6, 8:10:5, 6:16:33, 1:121:2, 4:53:6
10. निघण्टु 3:4, निरुक्त 3:13:09
11. अथर्ववेद 3:12, 9:03
12. तैत्तिरीय संहिता 1:3:6:3, वाजसनेयी संहिता 35, 19:46, 20:1
13. शतपथ ब्राह्मण 7:1:20, 8:1–5, 6:1:2:22, 23, 29
14. शांखायन, 3:4:5, पारस्कर 3:4, आश्वालयन 3:9:10

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अनुसार प्रथम वास्तुविद् हैं। जिन्होंने द्यु, अन्तरिक्ष एवं पृथ्वी की रचना की। वेदों के अनुसार प्रजापति ही हिरण्यगर्भ हैं। यथा–**हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।**[1] ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में वर्णन मिलता है कि सृष्टि के आदि में न सत् था, न असत् था, न आकाश था, न वायुमण्डल था, न दिन था, और न ही रात्रि थी, यदि थी तो मात्र ब्रह्म की सत्ता। ब्रह्म के संकल्प मात्र से ही सृष्टि उत्पन्न हुई। संकल्प ही ज्वाज्वल्यमान तप था।[2] **विश्वकर्मा**–वाजसनेयी सहिता के अनुसार प्रजापति से ही सम्बद्ध देवता हैं। निरुक्तकार यास्क ने विश्वकर्मा को सभी का कर्त्ता स्वीकार किया है।[3] ऋग्वेद के अनुसार परमेश्वर ही स्रष्टा है तथा परमेश्वर के गुणों को ही देवता कहते हैं। देवता ही समग्र ब्रह्माण्ड का निर्माण करते हैं। निर्माण करने वाले देवता हैं– विश्वकर्मा, विष्णु, सविता, त्वष्टा, इन्द्र एवं वरुण आदि। इन देवताओं ने विश्वधूलिमेघ (कास्मिकडस्ट) से विश्व का निर्माण किया। इस सृष्टि के धारक परमेश्वर ही इसके रहस्य को जानते होंगे। यथा–

इयं सृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद।।[4]

त्वटा–वैदिक साहित्य में तक्षण कार्य कुशल शिल्पी माने जाते हैं। वाहन, आयुध, आदि के निर्माण में तो वे कुशल थे ही साथ ही अग्निकला प्रदर्शन एवं व्रज, लोह-कुठारादि के तीक्ष्णीकरण में भी कुशल थे।[5] अतः सिद्ध होता है कि त्वष्टा देवताओं के निष्णात् शिल्पी थे। **ऋभु**–ये हस्त कला कुशल तथा त्वष्टा के त्वाष्ट कर्म के कुशल शिल्प थे।[6] **वास्तोष्पति**–वैदिक देवता का कहीं भी निर्माण कार्य से सम्बन्ध नहीं दिखाई देता परन्तु गृह के रक्षण और पालन में इनकी भूमिका सर्वाधिक प्रतीत देती है। यथा–

वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः।
यत् त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे।।[7]

---

1. यजुर्वेद संहिता 13:4, 40:8, ऋ.सं 10:121:01, 1:121:1, 7,
2. ऋग्वेद संहिता 10:129:03
3. निरुक्त 10:26, 10:25
4. ऋग्वेद 10:129:7
5. वहीं, 1:32:2, 10:5:9
6. वहीं 1:180:1, 8:5:29
7. वहीं 7:54:01

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

रामायण एवं महाभारत में वास्तु का वर्णन बहुत स्थलों पर दिखाई देता है। जैसे- किष्किन्धाकाण्ड में वर्णित विचित्र गुफा का वर्णन मय का एक अद्वितीय शिल्प कौशल[1] पुष्पकविमान[2], सेतुबन्ध[3], इन्द्रप्रस्थपुरी[4], द्वारिकापुरी[5], मिथिलापुरी[6] विभिन्न सभाभवन[7], लाक्षगृह[8] आदि। पुराणों में वास्तुशास्त्र का वर्णन मत्स्य[9], अग्नि[10], स्कन्द[11], गरुड़[12] एवं विष्णुधर्मोत्तर[13] में पर्याप्त रूप में मिलता है।

पौराणिक वास्तुविद् देवगण

वास्तुशास्त्र से पौराणिक वास्तुविद् देवताओं में सर्वप्रथम देवाधिदेव ब्रह्मा, विष्णु, महेश का साक्षात् सम्बन्ध प्रतीत होता है। **सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा** ने ही पृथु की प्रार्थना पर अपने पूर्वादि मुखों से वास्तुशास्त्र की सम्यक् स्थापना के लिए चार पुत्रों (विश्वकर्मा, मय, मनु एवं त्वष्टा) को उत्पन किया। नारद, भृगु, पुलस्त्य, अत्रि, एवं वशिष्ठादि ऋषि भी ब्रह्मा के ही मानस पुत्र हैं। ये सभी वास्तुशास्त्र के प्रणेता आचार्य हैं।[14] भगवान **विष्णु** ने मत्स्यावतार के रूप में मनु को वास्तुशास्त्र का, विष्णु के रूप में विश्वकर्मा को चित्रशास्त्र का तथा वराहरूप में पृथ्वी का पङ्क से उद्धार कर गृह, ग्राम, नगरादि बन सके इस योग्य बनाया।[15] शिव- सभी ज्ञान राशियों के मूल स्रोत माने जाते हैं।[16] भगवान शिव ही मूलरूप में वास्तुशास्त्र के उपदेष्टा हैं क्योंकि वास्तुपुरुष का उद्भव ही भगवान के तृतीय नेत्र के स्वेद बिन्दु से हुआ।[17]

1. लङ्काकाण्ड 3:2-21, 4:4-30
2. सुन्दरकाण्ड 9:11
3. लङ्काकाण्ड 3:2-21
4. महाभारत 1:207: 30-48
5. वहीं 3:15:5-18
6. महाभारत 3:207:7-11
7. वहीं 2:1:4-5, 47
8. वही 1:144:4-11
9. मत्स्यपुराण अ. 252-360
10. अग्निपुराण अ. 105, 247
11. स्कन्धपुराण माहेश्वरखण्ड
12. गरुड़पुराण अ. 43-49
13. विष्णुधर्मोत्तर 3:86-87
14. भागवत पु. 3:12:38, मानसार 1.2, मत्स्यपुराण 252:2-4
15. मत्स्यपुराण 252.4, विष्णुधर्मोत्तर 3:35:5, वराहपुराण 11:2:1
16. मत्स्यपुराण 68.4
17. मानसार 1.2, मत्स्यपुराण 5:30

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

वास्तुशास्त्र के आचार्य

मत्स्यपुराण में वास्तुशास्त्र के 18 उपदेशक आचार्यों का वर्णन मिलता है।[1] जैसे- भृगु, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजित, विशालाक्ष, पुरन्दर, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश, शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र एवं बृहस्पति। अग्निपुराण में 25 आचार्यों का वर्णन मिलता है।[2] रामायण[3] में वर्णित विश्वकर्मा के पुत्र नल-नील एवं महाभारत में वर्णित लाक्षागृह के कर्त्ता पुरोचन भी वास्तुशास्त्र के प्रख्यात आचार्य थे।[4] मानसार[5] में 32 आचार्यों का वर्णन मिलता है। ब्रह्मवैवर्तपुराण के वर्णन के अनुसार विश्वकर्मा के नौ शापदग्ध पुत्र शिल्प कला में दक्ष थे।[6] ये हैं 1. मालाकार, 2. कर्मकार, 3. शखकार, 4. कुविन्द, 5. कुम्भकार, 6. कांस्यकार, 7. सूत्रधार, 8. चित्रकार, एवं, स्वर्णकार। शापित होने के कारण ये पुत्र आचार्य के स्थान को प्राप्त नहीं कर पाये। वास्तुशास्त्र की यह सुदृढ़परम्परा वैदिक काल से ही प्रारम्भ होती है।

वास्तुशास्त्र की एक विस्तृत परम्परा एवं वर्तमान में इसके स्वरूप को देखते हुए हमारे यशस्वी कुलपति प्रो. वाचस्पति उपाध्याय जी ने जुलाई 2004 में पूर्व संकाय प्रमुख एवं ज्योतिष विभागाध्यक्ष प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी जी के सहयोग से विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा स्वीकृत इन्नोवेटिव प्रोग्राम के अन्तर्गत विद्यापीठ में इस विषय का पठन-पाठन प्रारम्भ किया। जो सम्प्रति पी.जी. डिप्लोमा पाठ्यक्रम के रूप में सफलतापूर्वक अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर है। इस प्रोग्राम के अन्तर्गत प्रतिवर्ष देश के विशिष्ट विद्वानों द्वारा विजिटिंग फैकल्टी के अन्तर्गत विशिष्ट व्याख्यान होते हैं। इस पाठ्क्रम के तहत अध्येता छात्रों को आचार्यों के निर्देशन में एक विशिष्ट विषय प्रायोगिक अध्ययन के रूप में दिया जाता है। इन अध्ययनों में से समिति द्वारा उपयुक्त पाये गये निबन्धों को एवं विशिष्ट विद्वानों के व्याख्यानों को ज्योतिषविभाग **वास्तुशास्त्र विमर्श** के रूप में प्रकाशित करता है।

सर्वप्रथम एतदर्थ में संस्कृत उन्नायक परमश्रद्धेय कुलपति प्रो. वाचस्पति उपाध्याय जी के चरणकमलों में प्रणाम करते हुए कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं; जिनकी सत् प्रेरणा एवं दृढ़संकल्प से यह योजना निर्वाधगति से अपना कार्य कर रही है। इस योजना को कार्य रूप में परिणत करने एवं सम्यक्

1. मत्स्यपुराण 252.2. 2-4
2. अग्निपुराण 39.1-5
3. बाल्मीकि रामायण युद्धकाण्ड 22:52, वामनपुराण 62, मानसार 68.1-2, महाभारत वन पर्व 274:25, भागवतपुराण 9:10:16
4. महासार 132:8-13
5. मानसार 68:5-9
6. ब्रह्मवैवर्तपुराण 1:10:19-21

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

निर्देशन के लिए हम अवकाश प्राप्त ज्योतिष विभागाध्यक्ष प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी जी के कृतज्ञ हैं। इस प्रकाशन कार्य में उत्साहवर्द्धन करने वाले हमारे कुशल प्रशासक कुलसचिव डॉ. बी.के. महापात्र जी तथा शोध एवं प्रकाशन विभागाध्यक्ष प्रो. रमेशकुमार पाण्डेय जी का भी सराहनीय योगदान रहा है। अतः मैं इन्हें हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ। इसी सन्दर्भ में प्रकाशन समिति एवं ज्योतिषविभाग के अध्यक्ष प्रो. प्रेमकुमार शर्मा जी व अन्य सभी सदस्यों को हार्दिक धन्यवाद प्रदान करता हूँ। जिनके सत् परामर्श से ही वास्तुशास्त्र अध्ययन माला-तृतीय पुष्प **वास्तुशास्त्रविमर्श** का प्रकाशन हो सका। मुद्रण कार्य के लिए अमर प्रिंटिंग प्रेस एवं अन्य सभी सहयोगी सुहृद जनों का, जिनका इस प्रकाशन कार्य में सहयोग प्राप्त हुआ, को हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ। शमिति।

प्रो. देवीप्रसाद त्रिपाठी
संयोजक
वास्तुशास्त्र नवीकरण कार्यक्रम

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

शोध एवं प्रकाशन समिति

1.	प्रो. प्रेमकुमार शर्मा	अध्यक्ष
2.	प्रो. देवीप्रसाद त्रिपाठी	संयोजक
3.	डॉ. विहारीलाल शर्मा	सदस्य
4.	डॉ. विनोदकुमार शर्मा	सदस्य
5.	डॉ. नीलम ठगेला	सदस्य
6.	डॉ. दिवाकरदत्त शर्मा	सदस्य
7.	डॉ. परमानन्द भारद्वाज	सदस्य
8.	डॉ. सुशीलकुमार शर्मा	सदस्य
9.	डॉ. फणीन्द्रकुमार चौधरी	सदस्य
10.	डॉ. रश्मि चतुर्वेदी	सदस्य

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

विषयानुक्रमणिका

1.	वास्तु का ऐतिहासिक विकास	प्रो. सुस्मिता पाण्डेय अध्यक्ष- प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, (म.प्र)	1-11
2.	देवालय एवं उनके भेद	डॉ. शैलजा पाण्डेय राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान गंगानाथ झा परिसर आजाद पार्क, इलाहाबाद (उ.प्र.)	12-19
3.	भूमि की गुणवत्ता एवं परीक्षिण विधियाँ	प्रो. ओंकार नाथ चतुर्वेदी 882/A-3 वार्ड-6, महरौली, नई दिल्ली-30	20-29
4.	दिक् साधन	प. कल्याणदत्त शर्मा श्री ला.ब.शा.रा.स. विद्यापीठ, नई दिल्ली-16	30-38
5.	वास्तुशास्त्र एवं मुहूर्त्त	प. रामदेव झा ए-260, शिवालिक इन्क्लेव मालवीय नगर, नई दिल्ली-17	39-46
6.	पिण्डानयन एवं आयादि विचार	प्रो. उमाशंकर शुक्ल आचार्य- ज्योतिष विभाग सपूर्णानन्द संस्कृतविश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)	47-51
7.	वास्तुपद विन्यास संकल्पना	प्रो. सच्चिदानन्द मिश्र आचार्य-ज्योतिष विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी-5 (उ. प्र.)	52-65

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

8.	बहुमंजिले भवन एवं आवास	प्रो. वासुदेव शर्मा अध्यक्ष ज्योतिषविभाग, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान जयपुर परिसर, त्रिवेणी नगर, जयपुर (राजस्थान)	66-77
9.	कूप एवं जलाशय निर्माण	श्री अखिलेश कुमार शर्मा अधिशासी अभियन्ता (सिविल) सी-363, मिलेनियम अपार्टमेन्ट सैक्टर 18, रोहिणी, दिल्ली-89	78-93
10.	आवासीय वास्तु एवं अन्तः सज्जा	श्री राजेन्द्रकुमार चतुर्वेदी 379, वार्तालोक सैक्टर-4 सी वसुन्धरा, गाजियाबाद, (उ.प्र.)	94-104
11.	औद्योगिक वास्तु	श्री हरिओउम कौशिक 323 E-16, सैक्टर-8 रोहिणी, दिल्ली-85	105-113
12.	व्यावसायिक वास्तु में दुकान एवं शोरूम	डॉ. दीपक कुमार बी. 8/124, एम.आई.जी. फ्लैट सैक्टर-4, रोहिणी, नई दिल्ली	114-124
13.	दक्षिणमुखी भवन	श्री रविशंकर जी-94 बी-1, फ्लोर, साउथ गणेशनगर, दिल्ली-92	125-143
14.	ईशान कोण का महत्त्व	श्री सोहनलाल अग्रवाल म.नं. 18, पकिट एफ-26, सैक्टर-7 रोहिणी, दिल्ली-85	144-156
15.	आग्नेय कोण का महत्त्व	श्री धर्मवीर बी-318, प्रशान्तविहार रोहिणी, सैक्टर-14, दिल्ली-85	157-173
16.	वास्तु एवं रंग विन्यास	श्री दिलीप कुमार बी. 8/124, सैक्टर 4, रोहिणी, नई दिल्ली	174-190

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

वास्तु का ऐतिहासिक विकास

(अर्थशास्त्र और पुराणों के संदर्भ में)

M.Katyayana

प्रो॰ सुस्मिता पाण्डेय

इतिहासकार की दृष्टि में वास्तु के विकास के अध्ययन का विशिष्ट महत्व है। जिस प्रकार धर्म एवं दर्शन के विकास में हम अपनी संस्कृति एवं सभ्यता के विचारों का विकास देखते हैं उसी प्रकार वास्तु के इतिहास में भी भारतीय संस्कृति के गहनतम मूल्यों का अध्ययन कर सकते है। हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि धार्मिक, दार्शनिक, ज्योतिष तथा वास्तु का संदर्भ एक स्वतंत्र संदर्भ है। सामाजिक परिस्थिति से इसका निर्धारण नहीं होता है अपितु इन विचारों से सामाजिक संस्थाएं तथा स्तरीकरण अवश्य प्रभावित हो सकते हैं। वास्तु की विचारधारा में भारतीय धर्म-दर्शन की पृष्टभूमि है।

वास्तु शास्त्र की भारतीय परम्परा का अर्थ

वास्तु शास्त्र की भारतीय परम्परा अत्यंत प्राचीन है। यह दिक् और काल की परम्परा से जुड़ी है। ये दोनों ही ब्रह्म की शक्ति के प्रकट रूप माने गये है। भगवद्गीता में भी भगवान ने कहा है **"भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनोबुद्धिरेव च। अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा"**[1]।। इस शक्ति को मनुष्य अधिकाधिक किस प्रकार से प्रयोग करे इस हेतु काल की अवधारणा से ज्योतिषशास्त्र बना और दिक् की अवधारणा से वास्तुशास्त्र। **वास्तुज्ञानमथातः कमलभवान्मुनि परम्परायातम्**[2]। ऋग्वेद में वास्तोष्पति के अर्थ हैं वह शक्ति जो घर की रक्षा करे इसका इन्द्र से तादात्म्य किया गया है। इसके पश्चात् कल्पज्योतिष में इसका विकास है।

देवताओं और मनुष्यों के निवास स्थान को वास्तु कहा गया है। इसके अंतर्गत भूमि, प्रासाद, यान तथा शयनासन आते हैं।

(क) भूमि वह स्थान है जहाँ निवास बनते हैं।
(ख) प्रासाद के अंतर्गत दीवार, स्थापत्य तथा कोई भी संरचना आदि आते हैं।
(ग) यान के अंतर्गत रथ, विमान, नौका आदि आते हैं।

---

1. श्रीमद्भगवतगीता 7/04
2. वृहत्संहिता 53/1

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

(घ) शयनासन वस्तुएँ शय्या, आसंदिका सेज आदि शयन है। वास्तु शिल्प के अंतर्गत आते हैं।

देव शिल्प या मंदिर वास्तु की प्रतीकात्मकता

देव शिल्प के अंतर्गत मंदिरवास्तु आता है। इसके विभिन्न अवयवों का संयोजन किस प्रकार हो? इसका निर्धारण मंदिर के प्रयोग के पीछे के दर्शन से संबंधित है। ब्रह्म इस सृष्टि में अंतर्भूत भी है और परे भी है। यह विचार पुरुष सूक्त में स्पष्ट है। मन्दिर भी उस पुरुष की प्रतीकात्मकता रखते हैं। उनके विभिन्न भाग इस विराट पुरुष से तादात्म्य रखते हैं जैसे पाभाग, जंघा भाग, ग्रीवा, मस्तक आदि।

इसी प्रकार यज्ञ की प्रतीकात्मकता में आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तत्व थे। आधिभौतिक मनुष्य और समाज से तादात्मय करते थे, आधिदैविक देवता से और आध्यात्मिक स्वयं के आध्यात्मिक तत्व से। धीरे-धीरे एक विराट पुरुष की कल्पना सार्थक हो जाती थी। मंदिर में यज्ञ की भी स्पष्ट प्रतीकात्मकता बतलायी गयी है। मंदिर का वेदी भाग यज्ञ की वेदी है। उसकी दीवार वाला भाग यज्ञ की अग्नि है। आदि।

मंदिर और धार्मिक वास्तु के विकास में पंचरात्र आगमों का बहुत योगदान है। इसके अंतर्गत विभिन्न अनुष्ठान, ज्ञान, योग, क्रिया और चर्चा जैसे विषय समाहित थे। क्रिया मंदिर निर्माण तथा चर्चा के अंतर्गत अभिगमन, उपादान, इज्या, स्वाध्याय और योग आते थे। इन सभी अनुष्ठानों का जिस संरचना में उचित पूर्वक क्रियान्वित किया जा सके ऐसी संरचना के विषय में विधि विधान धार्मिक वास्तु के अंतर्गत आता है।

मंदिर का ऐतिहासिक विकास

यद्यपि अर्थशास्त्र में देवस्थान का वर्णन है इसके पुरातात्विक साक्ष्य शुंगकाल से प्राप्त होते हैं। विदिशा में बेसनगर में वृत्तायत मंदिर के अवशेष प्राप्त हुए हैं जिन्हें लगभग इसी काल का कहा गया है। इसके अतिरिक्त सांची के शिल्प में बोधि मंड का अंकन है जो प्रारम्भिक प्रकार का मंदिर था। राजस्थान में चित्तौड़ के पास नागरी में हाथी बाड़ा अभिलेख द्वितीय श. ई. पू. के मंदिर का तथा मथुरा में मोरा अभिलेख प्रथम शताब्दी ई. के मंदिर का साक्ष्य है। पूर्ण विकसित मंदिरों को सबसे प्रथम प्रकार सांची के मंदिर क्रमांक 17 को माना गया है।

भारत वर्ष में प्रमुखतः मंदिरों के तीन प्रकार वर्गीकृत किये गये हैं **नागर शैली, वेसर शैली एवं द्राविड़ शैली।** इनके अतिरिक्त इन्हीं शैलियों में विविधताएं देखते हुए अनेक स्थानीय शैलियों का विकास हुआ जैसे भूमिज, मारूगुर्जर आदि। द्रविड़ शैली में पल्लव तथा चोल प्रमुख है। दक्षिण भारत में भक्तिवादी संत आड़वार तथा नायनार हुए जिन्होंने मंदिर मूर्तियों तथा भावनात्मक भजनों को लोकप्रिय किया राजाओं द्वारा मंदिरों को प्रोत्साहन दिया गया।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

वास्तु में मानव शिल्प के आधार

वास्तु में मानव या लौकिक शिल्प जिन घटकों से प्रभावित था उनमें सर्वप्रथम तो दिक् शक्ति के प्रयोग का आधार था। जिसके आधार पर किस दिशा में कौन वास करेगा और किस दिशा में कौन सा कक्ष बनेगा इसका निर्धारण होता था। जैसे प्राय: सभी ग्रन्थों में उत्तर पूर्व में जल स्थान बनाने का विधान है।

दूसरा घटक स्थापत्य के नियमों के आधार पर था। जैसे दुर्ग के चारों ओर परिखा बनाना। दुर्ग के द्वार को सुरक्षा हेतु बनाना। उसमें सैनिकों को तैनात करने की व्यवस्था करना। स्थापत्य के अभियांत्रिकी दृष्टि से भी नियम होते है जिनके अनुसार किस भाग को भारवहन के लिये बनाना है किसको नहीं आदि निर्धारित होता है।

तीसरा घटक सौन्दर्य शास्त्र के मूल्यों के आधार पर था। जैसे स्थापत्य का कोई अवयव इस प्रकार लगाना जिससे अभियांत्रिको की आवश्यकता के साथ-साथ वह सौन्दर्य शास्त्र के मूल्यों को भी दर्शाए। जैसे अशोक के स्तंभ स्तंभों का कार्य तो करते ही थे परन्तु उसके विभिन्न अवयव capital, abacus ऊपर का capital आदि सौन्दर्य बोध प्रतीकात्मकता दोनों से ओतप्रोत है।

चौथी आवश्यकता सामाजिक स्तरीकरण की थी। नगर नियोजन में यह ध्यान रखा जाता था कि राजा को सुरक्षा के अनुसार उसका प्रासाद कहाँ हो, विभिन्न वर्ण और वर्ग कैसे नियोजित किये जाएं। यद्यपि इन निर्धारणों में दिक् शक्ति के ही नियम मुख्य थे। फिर भी सभी वर्णो और वर्गों में सामाजिक सामंजस्य बना रहे यह भी एक आवश्यकता थी जिससे वास्तु प्रभावित था।

एक अन्य घटक प्राचीन परम्परा का निर्वाह था। जैसे प्रारम्भिक गुहाओं एवं वेदिकाओं में लकड़ी के स्थापत्य के अवशेष तथा चैत्य झरोखे का प्रयोग आदि। वास्तु में शुभ अशुभ प्रतीकात्मक एवं आध्यात्मिक विचारों से निर्धारित होते थे। जैसे मकान के मध्य का भाग ब्राह्म स्थान आदि।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वास्तु

वास्तु का व्यवस्थित प्रयोग सर्वप्रथम अर्थशास्त्र में दिखाई देता है।[1] अर्थशास्त्र में नगर नियोजन में उसके अनुसार तीन राजमार्ग पश्चिम से पूर्व की ओर और तीन दक्षिण से उत्तर की ओर होने चाहिये, इनके मध्य जो क्षेत्र हैं वे आवासिक स्थान कहलाते हैं। इनके अनुसार नगर में बारह मुख्य द्वार होने चाहिये तथा जल, नालियाँ व भूमिगत मार्ग भी होने चाहिये।

मार्गों की चौड़ाई चार दंड होनी चाहिये। द्रोणमुख, स्थानीय चारागाह, पत्तन, श्मशान तथा ग्राम में आठ दंड चौड़ी होनी चाहिये। सिंचाई स्थलों तथा वनो में चारदंड, हस्तिपथ तथा कृषिपथ

---

1. अर्थशास्त्र 4.22, 1-2

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

में दो दंड, पांच अरत्नी रथपथ चारदंड़ मवेशियों के लिये दो दंड का पथ का उल्लेख मिलता है।[1]

राजप्रासाद आवासीय क्षेत्र के मध्य के उत्तर भाग में नवे भाग में होना चाहिये **वास्तुहृदयात् उत्तरे नवभागे।**[2] कांग्ले के अनुसार यह नगर 81 पद वास्तु के आधार पर *परमशायिकवास्तु* होगा। मध्य का 1/81 वर्ग वास्तुहृदय होगा। इससे उत्तर की ओर 1/9 भाग राजकीय क्षेत्र होता है। अतः राजकीय स्थल केन्द्र से उत्तर की ओर नगर का 1/9 क्षेत्र होगा। परमशायिक वास्तु के साथ षोडशभागिक वास्तु का तालमेल बैठाना कठिन है। प्रारम्भ में मार्गों के वर्गीकरण से षोडशभागिक वास्तु प्रतीत होता है।[3]

गुरु तथा पुरोहित का निवास स्थान, यज्ञशाला का स्थान, जल तथा बवनदबमससवते का स्थान पूर्वोत्तर (पूर्व के उत्तर भाग में पूर्वस्यांदिशि उत्तरः) में, रसोई (पाकशाला), हस्तिशाला तथा शस्त्रागार दक्षिण पूर्व (पूर्व के दक्षिण भाग) में, गंधिक, पुष्प विक्रेता, प्रसाधनकार तथा क्षत्रिय पूर्व दिशा में वास करें।[4] भंडारगृह कार्यालय कर्मचारियों के घर दक्षिण पूर्व (दक्षिण के पूर्व भाग) में, वनोपज, अस्त्रशस्त्र दक्षिण पश्चिम में (दक्षिण के पश्चिमभाग में) अनाजविक्रेता औद्योगिक अधिकारी, सेना अधिकारी, पक्वान्न मदिरा, मांस विक्रेता, गणिका, नर्तक तथा वैश्य दक्षिण भाग में वास करें।[5] गर्दभ तथा उष्ट्रशाला तथा कारखाना दक्षिण पश्चिम (पश्चिम के दक्षिण) में, पालकी तथा रथशाला उत्तरपश्चिम (पश्चिम के उत्तर) भाग में, अन्न, वस्त्र, बांस, चर्म, अस्त्रशास्त्र, तथा शूद्र पश्चिमी भाग में वास करें।[6] घड़े, औषधि उत्तर पश्चिम (उत्तर के पश्चिमीभाग) में, कोष, मवेशी, तथा अश्व उत्तर पूर्व (उत्तर के पूर्वी भाग) में, देवता राजा, धातु तथा रत्न कार्मिक और ब्राह्मण उत्तरी भाग में रहें।[7] अनावासीय क्षेत्रों में श्रेणियाँ तथा विदेशी व्यापारी रहें।[8] नगर के मध्य में अपराजित, अप्रतिहत, जयन्त, वैजयन्त, शिव, वैश्रवण, आश्विन, श्री एवं मदिरा के मंदिर तथा नगर द्वारों में ब्रह्मा, इन्द्र, यम तथा सेनापति के स्थान होने चाहिये। नगर से बाहर सौ धनुष की दूरी पर मंदिर पवित्र स्थल बगीचे तथा जल कार्य आदि होने चाहिये।[9] श्मशान का उत्तरी तथा पूर्वी भाग उच्च वर्णों के लिये, दक्षिणी भाग निम्न वर्णों के लिये।[10] पाषंडों और चांडालो के लिये श्यशान के बाह्य भाग में स्थान होना चाहिये।[11] दुर्ग विधान के अध्याय (II.3.21) में जो वर्णन है वह सांची के शिल्प

1. अर्थशास्त्र II 4.22, 3-5
2. वहीं 4.22, 7
3. कांग्ले-कौटिल्य अर्थशास्त्र पृष्ठ 68, पाद टिप्पणी 6
4. अर्थशास्त्र II 4.22, 8-9
5. वहीं II 4.22, 10-11
6. अर्थशास्त्र II 4.22, 12-13
7. वहीं II 4.22, 14-15
8. वहीं II 4.22, 16
9. वहीं II 4.22, 17-20
10. अर्थशास्त्र II 4.22, 21-22
11. वहीं II 4.22, 23

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

में दिखता है जिसमें प्रतोली, अट्टालक, हर्म्य थे। प्रमुख द्वारों में गोपुर, पुष्करिणी द्वार कुमारीपुर द्वार, मुंडक द्वार आदि थे।

पुराणों की पृष्टभूमि में वास्तुशास्त्र

पुराणों में वर्णित वास्तु की विवेचना करने के पूर्व पुराणों की एतिहासिक पृष्टभूमि पर प्रकाश डालना आवश्यक है। अठारह प्रमुख पुराण हैं। यथा[1]

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्।
अनापद् लिङ्गकूस्कानि पुराणानि पृथक्-पृथक्।।

1. मत्स्य	7. ब्रह्मांड	13. नारद
2. मारकंडेय	8. वामन	14. पद्म
3. भागवत	9. विष्णु	15. लिंग
4. भविष्य	10. वायु	16. गकड़
5. ब्रह्म	11. वराह	17. कूर्म
6. ब्रह्मवैवर्त	12. अग्नि	18. स्कन्ध

प्रारंभिक पुराणों का काल तीसरी चौथी शताब्दी ई. माना जाता है। परंतु यह तो उनके व्यवस्थित रूप से संकलन का काल था। उनकी ऐतिहासिक जड़े हम वैदिक काल से ही देख सकते है। ऋग्वेद में पुराण के अर्थ प्राचीन या प्राचीन गाथा हैं।[2] पी. वी. काणे ने पुराणों के विकास में पांच चरण देखे हैं।[3] पहला चरण अथर्ववेद शतपथ ब्राह्मण और प्राचीन उपनिषदों का है अथर्ववेद में पुराण शब्द इतिहास गाथा और नारांशसी के स्वयं प्रयुक्त है।[4] शतपथ ब्राह्मण को भी वेद कहा है।[5] दूसरा चरण तैत्तरीय आरण्यक और आपस्तंब धर्मसूत्र का है। तीसरा चरण दूसरी-तीसरी शताब्दी है का था चौथा चरण 5-6 श. ई. से नवी श. ईस्वी का था जब प्रमुख पुराणों की रचना हुयी। पांचवां चरण उपपुराणों का 7-8 से 13 वीं श. ई. का था।

पुराणों के पांच लक्षण

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम्[6]।।

---

1. देवी भागवत 1/3/21
2. ऋग्वेद 3.5.49, 3.58.6, 10.130.6, 9.99.4
3. पी. वी. काणे हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र V-II, पृष्ठ 853-855
4. अथर्ववेद 15-16
5. शतपथ ब्राह्मण 13.4.3.13, तान् उपदिशति पुराणम् वेद।
6. विष्णुपुराण 3/6/24, मार्कण्डेय पु. 134/13, अग्निपुराण-1/14, भविष्य पु. 215, ब्रह्मवैवर्त पु. 133/6, वराह पु. 2/4, मत्स्य पु. 53/64

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सर्ग-सृष्टि, प्रतिसर्ग-सृष्टि काल, वंश ऋषियों की वंशावली, मन्वन्तर (मनु के युग) वंशानुचरित (राजाओं की वंशावली)। धीरे-धीरे पुराणों के लक्षण बढ़ते गये और वे बृहत कोषों के भांति होते गये। भागवत पुराण में इनके दस लक्षण कहे गये हैं। सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति, अपाश्रय। दूसरी सूची सर्ग विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, अंतर, वंश, वंशानुचरित, संस्था, हेतु, अपाश्रय।[1] धीरे-धीरे पुराणों ने कोषों का रूप ले लिया जिनमें आयुर्वेद, वृक्षायुर्वेद, कला एवं स्थापत्य रत्न परीक्षा आदि सभी विद्याएं आ गयी क्योंकि आम मनुष्य में धर्म के माध्यम से सभी शिक्षाओं का प्रचार उनका उद्देश्य बन गया था।

मत्स्य पुराण और वास्तु

मत्स्य पुराण की तिथि में सबसे प्राचिन भाग चौथी श. ई. के लगभग माना गया है। इसमें वास्तु शास्त्र के प्रणेता भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजित, विशालाक्ष, पुरन्दर, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश, शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरूद्ध, शुक्र एवं प्रजापति। वास्तु के उद्भव के विषय में रोचक कथा है। अंधक के वध के समय शिव के माथे के स्वेद से एक विकराल प्राणी ने जन्म लिया जो अंधक के रक्त बिन्दुओं का पान कर गया। इससें उसने शिव से वर मांगा कि उसने तीनों लोको को ग्रस लेने का सामर्थ्य हो जावे। इसके पश्चात वह समस्त भूमंडल, आकाश को देखते हुए पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब भयभीत चित्त वाले देवता, ब्रह्मा, शिव, दानव, दैत्य, राक्षसों सभी ने चारों ओर से उसे रोक लिया। सभी देवताओं का निवास स्थान होने के कारण वह वास्तु नाम से जाना गया। वास्तु ने जब देवताओं से कहा कि मैं नीचे मुख लिये कैसे अवस्थित होऊंगा? तो देवताओं ने कहा कि बलि द्वारा। वास्तु पूजा न करने वाले भी तुम्हारे आहार बनेंगे। उपर्युक्त कथा से पता चलता है कि वास्तु का विचार न ही केवल तल विन्यास या site plan है परन्तु जिस स्थान में वास होना है उसको शुभ या पवित्र करने की मानसिक प्रक्रिया है। दूसरी प्रतीकात्मकता यह है कि समस्त ब्रह्माण बाहर भी है और मनुष्य के अंदर भी है वैसे ही उसके निवास स्थान पर भी समस्त ब्रह्माण्ड की कल्पना की गयी है। इसीलिये वास्तु आसुरिक शक्तियों के मध्य दैवी क्षेत्र है। अथवा आसुरिक शक्तियों पर देवी शक्तियों का प्रभुत्व स्थापन है। सूर्य में जो प्रभाव है वही वास्तु पुरुष में भी प्रतिबिम्बित है क्योंकि दिन में एक बार सूर्य संपूर्ण वास्तु क्षेत्र का भ्रमण करता है इसका केन्द्र प्रजापति है। अतः जो macrocosm और microcosm के एक होने की अवधारणा ब्रह्मांड और मनुष्य के संबंध में कही गयी है वही अवधारणा ब्रह्मांड और निवास क्षेत्र के संबंध में भी मानी जाती है।

---

1. सर्गश्चाथ विसर्गश्च वृत्ती रक्षान्तराणि च।
वंशो वंशानुचरितं संस्था हेतुरयाश्रयः।। श्रीमद्भागवत 12/7/9

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

गृह निर्माण के मुहूर्त

चैत्रादि मासों में गृह निर्माण से विभिन्न फल मिलते है जैसे चैत्र में व्याधिग्रस्त, वैशाख में धेनु, रत्न, ज्येष्ट में मृत्यु, आषाढ़ में नौकर चाकर, श्रावण में नौकर, भाद्रपद में हानि, आश्विन में पत्नीनाश, कार्तिक में धनधान्य, मार्गशीर्ष में अन्न प्राप्ति, पौष में चौरभय, माघ में लाभ पर अग्निभय, और फाल्गुन में सुवर्ण लाभ एवं पुत्र प्राप्ति होती है।

गृह निर्माण के पूर्व मिट्टी का परिक्षण करना चाहिये। यह चार वर्णों की होती है सफेद, लाल, पीली, काली। इसके लिये अश्विनी, रोहिणी, मूल, तीनो उत्तरा, मृगशिरा, स्वाति, हस्त एवं अनुराधा प्रशस्त हैं। रविवार और मंगलवार छोड़ कर सभी दिन सूर्य और चन्द्र का बलावल देखना चाहिये। एक अन्य विधि के अनुसार एक हाथ गढा खोदकर उसे लीप पोतकर स्वच्छ करके चारबत्तियों के साथ चारों दिशाओं में पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर रखना चाहिये। यदि पूर्व अधिक जले तो ब्राह्मण के लिये शुभ, क्रमशः क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के लिये शुभ माना जायेगा। सभी बराबर जलें तो सभी के लिये शुभ होगा। फिर गड्ढे को भरने की प्रक्रिया वर्णित है। यदि मिट्टी शेष रहे तो श्री की प्राप्ति, न्यून हो तो हानि, सम हो तो न लाभ न हानि।

81 पद वास्तु बहुत शुभ माना जाता है। सभी प्रकार के वास्तु में इसका उपयोग होता है। 81 वास्तु पद में 45 देवता माने गये है। 13 अंदर और 32 बाहर। मत्स्य पुराण के अध्ययन 268 में वास्तु के विभिन्न वर्गों में किस देवता को क्या बलि देना है इसका वर्णन है। अध्याय 269 में मंदिर निर्माण के विभिन्न अनुपात दिये हैं। जैसे शोडष मार्गिक वास्तु[1] जिसमें वास्तु 16 भागों में गर्भगृह तथा शेष 12 भागों में दिवारें (गर्भगृह के चारों ओर)। मंदिर के चारों ओर चार द्वार, **चतुर्दिक्षु तु ततो ज्ञेयं निर्गम तु ततो बुधैः।** प्रमाण (perimetre) का 1/2 भाग दीवारों का प्रमाण तथा शिखर दीवारों से दुगना। इस मंदिर में प्रदक्षिणा, अंतराल, मंडप तथा मुख मंडप सभी हैं (चित्र) लिंगमान प्रासाद[2] यह लिंग के अनुपात के अनुसार बनता है। गर्भगृह के मध्य लिंग स्थापित होता है। लिंग की तिगुनी दीवार की ऊँचाई तथा छः गुनी शिखर की होती है। हमारे शोध के अनुसार लिंग के पांचगुना दीवार तथा फिर उसका दुगना शिखर होना चाहिये।

गर्भगृह के अनुपात के अनुसार प्रासाद[3]

इसमें गर्भगृह 9 भागों में होता है जिसके बीच में लिंग। इसमें कण्ठ, अमलसारक, अंडक, सभी होते थे। यह पत्रावलियों से भी विभूषित होता था। इसके अतिरिक्त त्रैवेद क्षेत्र प्रासाद में तल

---

1. मत्स्यपुराण 269, 1-6
2. वहीं 269, 7-13
3. वहीं 269, 15-20

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

योजना को तीन भागों में विभाजित करके उसके विभिन्न अनुपातों से जो प्रासाद बनता था उसे त्रैवेद क्षेत्र प्रासाद कहते थे।[1] इसमें रथांक व रचिका बिंब का भी वर्णन उपलब्ध होता है। जैसे हमें देवगढ़ में दिखता हैं। तल योजना के अनुसार चतुरस्रर (चौकोर) अष्टस्र (अष्टकोणीय) षोडशस्र (सोलह कोणीय, वर्तुल (गोल) तथा सर्वतोभद्र प्रासाद वर्णित हैं।[2]

इसके अतिरिक्त अन्य प्रासाद भी वर्णित हैं मेरु जिसमें 100 श्रृग, चारद्वार, सोलह भूमि और विचित्र शिखरों से युक्त होता है। मंदार 12 भूमिक और 45 हस्त, कैलाश 9 भूमिक और 40 हस्त, सर्वतीभद्र अनेक शिखरों से युक्त, पांचभूमियों और चित्रशाला से युक्त अनेक शिखरों वाला विमान छन्दक। सिंह के आकार वाला सिंह। गज के आकार वाला गज। कुम्भक में 9 भूमियाँ। समुद्गक पांच अंडक, वाला जिसमें दो चंद्रशालाएं और दो भूमियां हो मत्स्यपुराण में लौकिक स्थापत्या[3] में अनेक प्रकार के भवन वर्णित हैं। जैसे चतु:शाल भवन जिसके चारों ओर शाला हो और एक ही प्रकार से बना हो। यह देवताओं और राजा के लिये मंगल कारक होता है। जिस चतु: शाल भवन में पश्चिम दिशा में द्वार न हो वह नंद्यावर्त कहलाता है। जिसमें दक्षिण दिशा में द्वार न हो वह वर्धमान जिसमें पूर्व दिशा में द्वार न हो वह स्वस्तिक जिसमें उत्तर दिशा में द्वार न हो वह रुचक जिसमें केवल तीन ओर ही शाला हो वह त्रिशाल कहलाता है। यदि उत्तर दिशा में शाला न हो तो वह धान्यक गृह होता है। यह सर्वसाधारण के लिये कल्याणकारी होता है। यदि पूर्व में शाला न बनी हो तो सुक्षेत्र जो यश, दीर्घायु देने वाला और शोक मोह का नाश करने वाला होता है। यदि दक्षिण दिशा में शाला से विहीन हो तो यह त्रिशाल कुलक्षय, व्याधि तथा भय को देने वाला होता है। पश्चिम दिशा में शाला न हो तो पक्षघ्न जो मित्र बन्धुओं और पुत्रों का विनाश और भय देता है। जिस भवन में दक्षिण पश्चिम में ही शाला हो वह धन धान्यादि देने वाला पश्चिम और उत्तर में शाला हो तो वह यमसूर्य कहलाता है राजा के लिये अग्नि भय देने वाला पूर्व उत्तर में शाला हो तो दंडद्विशाल कहलाता है जो अकाल मृत्यु भय, शत्रु पक्ष से हानि देता है। पूर्व और दक्षिण की शालाओं से युक्त सर्व साधारण से शस्त्रभय, शत्रु से पराजय देता है। उत्तर दक्षिण की शालाओं से युक्त सर्वसाधारण से भय होता है यदि भवन में पूर्व पश्चिम में चूल्हा हो तो गृहपति की मृत्यु होती है।

राजा के भवन पांच प्रकार के वर्णित हैं। एक में 108 हाथ की चौड़ाई वर्णित है अन्य भवनों में आठ-आठ हाथ कम करके चौड़ाई का निर्धारण किया गया है। इन पांचो भवनों में चौड़ाई से सवाई लम्बाई होनी चाहिये। युवराज के भी पांच प्रकार के भवनों का वर्णन मिलता है। सबसे उत्तम 80 हाथ वाला। अन्य की चौड़ाई 6-6 हाथ कम। इन भवनों की चौड़ाई से तिहाई अधिक

---

1. वहीं 269, 21-26
2. वहीं 269, 28-30
3. मत्स्यपराण अध्याय 254

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

लम्बाई होनी चाहिये। सेनापति का भवन भी पांच प्रकार का वर्णित हैं। सबसे उत्तम को 64 हाथ चौड़ाई। अन्य चारों की 6-6 हाथ कम। लम्बाई चौड़ाई से छठे भाग अधिक होनी चाहिये। मंत्री के भी पांच प्रकार के भवन वर्णित हैं। सबसे उत्तम 60 हाथ का इसके बाद अन्य चार 4-4 हाथ कम करके बनाये जाते हैं। लम्बाई चौड़ाई से आठवें भाग अधिक वर्णित है। सामन्त एवं अमात्यो के भी पांच प्रकार के भवन वर्णित है। सबसे उत्तम 48 हाथ का तथा अन्य चार भवनों की चौडाई 4-4 हाथ कम करके निमार्ण किया जाता है। लम्बाई चौड़ाई की अपेक्षा सवाई अधिक होती है। शिल्पकारों, कंचुकी और वेश्याओं के भी पांच प्रकार के भवन वर्णित हैं। उत्तम भवन 24 हाथ का शेष 2-2 हाथ कम करके बनाये जाते हैं। लम्बाई चौड़ाई की अपेक्षा दुगुनी अधिक होनी चाहिये। ज्योतिषी, गुरू, वैद्य, पुरोहित के पांच प्रकारों में 40 हाथ। शेष चार 4-4 हाथ कम। ब्राह्मणों के घर की चौड़ाई 32 हाथ, क्षत्रियों की 24 हाथ, वैश्यों की 20 हाथ तथा शूद्रों की 16 हाथ, वर्णित है। अन्यजों की 16 हाथ से कम।

गरूड़ पुराण के इसके अनुसार[1] वास्तु पुरुष का सिर उत्तर पूर्व में, पैर दक्षिण पश्चिम में और हाथ दक्षिण पूर्व और उत्तर पश्चिम में होने चाहिए। वास्तु क्षेत्र के बाहर 22 तथा अन्दर 13 देवता होने चाहिये। निर्माण कार्य के प्रारम्भ में नायक-नायिका, शक्र व गंधर्व की पूजा करनी चाहिये। सामने बृहस्पति की मूर्ति रखनी चाहिये।

प्रासादों के प्रकार

वैराज (चौकोर) के 9 प्रकारों में मेरू, मंदर, विमान, भद्रक, सर्वतोभद्र, रूचक, नंदक, नंदीवर्धन और श्रीवत्स है। **पुष्पक** (आयताकार) के 9 प्रकारों में वलमी, गृहराज, शालागृह, मंदिर, विमान, ब्रह्म मंदिर, भुवन उत्तम, शिबिका एवं वेश्म। **कैलाश** (वृत्त) के 9 प्रकारों में वलय, दुदुभी, पद्म, महापद्म, मुकुली, उष्णीसी, शंख, कलश एवं गुवावृक्ष। **मालिका** (अंडाकार) के 9 प्रकारों में गज, वृषभ, हंस, गरूड़, सिंह, भूमक, भूधर, श्रीजय, पृथ्वीधर, **त्रिविष्टप** (अष्टकोणीय) के 9 प्रकारो में वज्र, चक्र, मुष्टिक, बभ्रू वक्र, स्वस्तिभंग, गदा, श्रीवृक्ष एवं विजय का वर्णन मिलता है। मंडपो के विषय में विभिन्न आकारों के विभिन्न फल दिये हैं।

त्रिकोणीय मंडप से राज्य प्राप्ति, पद्माकार से समृद्धि, चंद्राकार से दीर्घायु, चतुर्भुज से पुत्रप्राप्ति। अष्टभुजीय के दो भागों में मंडप से स्त्री समृद्धि तल विन्यास के अनुसार प्रासादों के विभिन्न प्रकार हैं षोडरामात्रिक प्रासाद, लिंगमान प्रासाद, त्रैवेदिक क्षेत्र, द्वारमान आदि प्रासाद, 64 पद वास्तु में बनते थे।

मेरू प्रासाद सबसे श्रेष्ठ माना गया है। इसमें चार मंडप, चार द्वार, 100 श्रृंग वर्णित है। विभिन्न देवताओं के लिए विभिन्न प्रासाद निर्धारित हैं। स्वायभुव देवताओं के लिए कोई नियम नहीं

---

1. गरूड़ पुराण 1.46

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

है। सामने वाहन के लिए छोटे मंडप वर्णित हैं। नाट्य शालाएँ भी हैं। प्रमुख द्वार के पास द्वारपाल भी वर्णित हैं। कर्मचारियों के लिए कुछ दूरी पर मठों का विधान होता था।

गरूड़ पुराण में लौकिक स्थापत्य

लौकिक स्थापत्य में रसोईघर दक्षिण पूर्व में वर्णित है जो छोटे रोशनदान के साथ है। सुगंध व पुष्प उत्तरपूर्व में, भंडार उत्तर में, गोशाला उत्तर पश्चिम में, जलकक्ष या प्रसाधन पश्चिम में, यज्ञ सामग्री दक्षिण पश्चिम में, अतिथि कक्ष पंलग, आसन्दी, पादुका, घड़े, दीपक एवं परिकर के साथ वर्णित है। घर में पांच रंग के पुष्प, केले के वृक्ष, जलकक्ष तथा "विष्णु आश्रम" के लिए उद्यान व आराम वर्णित है। वास्तु की राशि निकालने का भी विधान दिया है। विभिन्न राशियों के व्यक्तियों के लिए मुख्य द्वार विभिन्न दिशाओं में बनाना वर्णित है। सिंह, कन्या, तुला के लिए उत्तर में, वृश्चिक आदि के लिए लिए क्रमशः पूर्व, दक्षिण एवं पश्चिम द्वार शुभ माना गया है। अश्वत्थ, पलक्ष, न्यग्रोध और उदुम्बर पश्चिमादि क्रम में तथा शालमली उत्तरपूर्व में होकर यदि उनकी पूजा की जाय तो घर तथा प्रासाद के लिए शुभ होता है।

अग्निपुराण में वास्तु लक्षण में नगर के विभिन्न भागों में किन देवताओं की स्थापना करनी है यह विस्तार में दिया गया है।[1] ब्रह्मा का मंदिर नगर के मध्य भाग में, इन्द्र का पूर्व में, अग्नि और मातृकाओं का अग्निकोण में, भूतों और यम का दक्षिण में, चंडिका और पितर नैर्ऋत्यकोण में बनाना चाहिये।

इन विभिन्न देवताओं को विभिन्न द्रव्यों से प्रसन्न करने का विधान दिया गया है। नये मंदिर को पुराने से बहुत कम या अधिक नहीं बनाना चाहिये, यदि नया मंदिर बना रहे हो तो पुराने की ऊँचाई की दुगुनी दूरी पर बनाएँ। मंदिर के सामने की दीवार में शुक और बाहर की दीवार में देवता अंकित करने चाहिये। अग्नि पुराण में विभिन्न प्रकार के प्रासादों में 25 वर्ग वाला प्रासाद, 36 वर्ग वाले प्रासाद का वर्णन मिलता है। इस पुराण में विष्णु मंदिर का विस्तार में वर्णन है। मंदिर के द्वार के ऊपर उदुम्बर की शाखाएँ, उसके नीचे श्री विग्रह या श्री लक्ष्मी होनी चाहिये। मंदिर का प्राकार मंदिर का $\frac{1}{4}$ और गोपुर $\frac{3}{4}$ होना चाहिये। पांच हाथ लम्बी प्रतिमा की पिंडिका एक हाथ ऊँची होनी चाहिये। सामने गरूड़ मंडप का विधान है। आठ दिशाओं में विभिन्न अवतारों की प्रतिमाएँ इस प्रकार स्थापित होनी चाहिये कि उत्तर में हयग्रीव, ईशान में वासुदेव, पूर्व में वराह, दक्षिण पूर्व में अग्नि परशुराम, दक्षिण में नृसिंह, दक्षिण पश्चिम (नैर्ऋत्य) में राम, पश्चिम में श्रीधर एवं उत्तर पश्चिम वायव्य में वामन।

अग्निपुराण में लौकिक वास्तु का भी वर्णन हैं घर में 1, 2, 3, 4 या 8 कक्ष होने चाहिये। चार कमरों वाले घर में एक दक्षिण एक उत्तर एक पूर्व एक पश्चिम की ओर मुँह वाले होने चाहिये। क्षेत्र के दूसरे, तीसरे, चौथे, छठे, आठवें भाग या मध्य और अंत में बनाया गृह सर्वनाश

1. अग्निपुराण 39/10-13

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

का कारण होता है। क्षेत्र के नवम भाग में घर बनाना चाहिये। पाठशाला घर के दक्षिण पूर्व, शयन कक्ष और अस्त्रागार दक्षिण में, सुगन्धित द्रव्य पश्चिमी कक्ष में, पशु उत्तर में, दीक्षाग्रहण पूर्व में होने चाहिये। विभिन्न दिशाओं में कमरों से रहित घर के विभिन्न प्रभाव दिये हैं। विष्णुधर्मोत्तर पुराण अध्याय 93 में भूमि परीक्षा तथा सामान्य प्रासाद लक्षण वर्णित हैं। मंदिर में शुभ आकृतियाँ होनी चाहिये। इसी पुराण के अध्याय 86-88 में प्रासादलक्षण वर्णित हैं।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण में मंदिर के विभिन्न प्रकारों में हैं **माल्यवान**-दो भूमियाँ, **श्रृंगवान**-कूट में कोई तल नहीं, **वलमी**-कूट के स्थान पर वलभी। इसके ऊपर आमलक। आयताकार तल विन्यास होता है। अन्य मंदिर गरूड़ (आयताकार) एवं लिंग (गोल) वर्णित हैं। लक्ष्मी के लिये गृह पल्लव द्रौपदी रथ की भाँति वर्णित है। सर्वताभद्र मंदिर चौकोर जगती में वर्णित है। इसके प्राकार में 24 छोटे देवालय (गर्भगृह की भाँति) पूर्वी फाटक के पीछे सामान्य मंदिर जिसमें मंडप नहीं। दोनों ओर हिमवान मंदिर। प्रमुख मंदिर का चौकोर गर्भगृह जिसके चारों ओर मंडप। सभी के चार द्वार। गर्भगृह के चारों ओर चार छोटे देवालय जिनमें चार द्वार एवं कुल 9 शिखर होतें हैं। इसी क्रम में विष्णु धर्मोत्तर कुल 101 मन्दिरों का वर्णन करता है। अतः पुराणों में वास्तु विचार विभिन्न शिल्प शास्त्रों से लिया गया है। इसको लोकप्रिय ढंग से प्रचार और प्रसार करना उनका लक्ष्य था। यह एक प्रकार का जनजागरण था। समाज में सभी वर्गों और वर्णों के लिए पौराणिक "शिक्षा मिशन" की भाँति कार्य करते थे।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

देवालय एवं उनके भेद

डॉ॰ शैलजा पाण्डेय

भारतीय वास्तुशिल्प का चरमोत्कर्ष देवालय प्रकल्पन में प्रतिबिम्बित होता है। देवालय केवल देवों के अधिष्ठान मात्र ही नहीं, देवों के विग्रह भी होते हैं। जो देवालय जिस देवता को समर्पित होता है उसे उस देवता की मूर्ति के रूप में ग्रहण किया गया है। ईशान-शिव-गुरूदेव-पद्धति[1] में देवालय को शैवी मूर्ति, हयशीर्ष[2] में भास्करी तनु तथा अग्नि पुराण[3] में वासुदेव की मूर्ति कहा गया है। देवालय के अंगों का वर्णन देवों के अंग के रूप में किया गया है। इसके जंघा को देव की जांघ, प्रणाल को पायु एवं उपस्थ, शुकनास को नासिका, द्वार को मुख, गवाक्ष को नेत्र, कण्ठ को देव का कण्ठ, शिखर को शिरो भाग तथा प्रतिमा को देव रूप प्रसाद का जीव कहा गया है।[4] वास्तु ग्रन्थों एवं पुराणों में देवालय के देव-विग्रह भाव का विशद वर्णन प्राप्त होता है।

प्रासाद एवं विमान संस्कृत वाङ्मय में देवालय के लिये प्रायः प्रासाद शब्द का प्रयोग किया गया है। अमरकोशकार ने 'प्रासादो देवभूभुजाम्'[5] कहकर प्रासाद पद से देवालय एवं राजभवन दोनों अर्थ ग्रहण किया है। प्रासाद प्रथमतः देवालय का बोधक है किन्तु राजा को भी लोकपाल एवं देवतुल्य माना गया है अतः प्रासाद शब्द से राजभवन का भी बोध होता है। प्रासाद वह वास्तु है जहाँ देवता एवं मनुष्य दोनों का चित्त प्रसन्न होता है

देवादीनां नराणां च येषु रम्यतया चिरम्।
मनांसि च प्रसीदन्ति प्रासादास्तेन कीर्तिताः।।[6]

दक्षिण भारतीय वास्तु-परम्परा में देवालय के अर्थ में विमान शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है। इसमें प्रयुक्त मान शब्द मापन के अर्थ में गृहीत है। शिल्परत्न के अनुसार विमान पद का निर्वचन **'नानामानविधानत्वात् विमानम्'**[7] किया गया है। अतः विमान वह भवन-विशेष है जिसको

---

1. ईशान शिव गुरुदेव पद्धति, 3.12-16
2. हयशीर्ष पा श्चरात्र, द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल भारतीय स्थापत्य, पृ. 216
3. अग्निपुराण, 61.19
4. अग्निपुराण, 61.19-27, हयशीर्ष पा श्चरात्र-39 आदि
5. अमरकोश, 2.2.9
6. शिल्परत्न 6.1
7. शिल्परत्न, पूर्वभाग, 16.2

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

विशिष्ट विधि-विधान से निर्मित किया जाता है। विश्वकर्मवास्तुशास्त्र के अनुसार विमान वह संरचना है जो देवी-देवताओं एवं उनके सेवकों के रक्षणार्थ निर्मित होता है एवं उसे प्रतिलोम प्रक्रिया से स्थापित किया जाता है।

सर्वेषामपि देवानां देवीनामपि सेविनाम्।
गर्भगेहस्य मौलौ यत्कल्पनं रक्षणार्थकम्।।

तद्विमानमिति प्राहुशिल्पशास्त्रविशारदाः।
प्रतिलोमक्रियां तत्र स्थापयेच्छिल्पकोविदः।।[1]

देवालय की उत्पत्ति देवालय की उत्पत्ति के विषय में विविध मत प्राप्त होते हैं। प्रथमतः इसकी वेदमूलकता एवं दूसरे इसका लोकधर्म से जुड़ना। ये दोनों ही धारायें देवालय की उत्पत्ति से सम्बद्ध हैं। वैदिक काल में यज्ञ चिति का निर्माण देवों के आवाहन, उनको स्थान देने एवं उनके पूजार्थ यज्ञादिकों के निष्पादन हेतु किया जाता था, अतः यज्ञ-वेदियाँ एवं चितियाँ देवालय निर्माण की बीजभूता हैं। स्टेला क्रेमरिश महोदया के अनुसार मन्दिर की रचना में नीचे से लेकर शिखर तक वैदिक चिति विद्यमान हैं।[2] लोक में देवी-देवताओं की उपासना हेतु लतापत्रादि से मण्डप बनाकर पूजा करने का विधान आज भी प्राप्त होता है। इसे अस्थायी मन्दिर कहा जा सकता है। मन्दिर की जगती के स्थान पर चौकी रखकर उसे केले के पत्ते, लता पत्र तथा वस्त्र आदि से आच्छादित कर मन्दिर का रूप प्रदान किया जाता है। यह अस्थायी पूजागृह भी स्थायी देवालय प्रकल्पन का प्रारम्भिक स्वरूप हो सकता है।[3]

देवालय-प्रकल्पन की परिकल्पना में पर्वतों एवं गिरिकन्दराओं का भी योगदान माना जा सकता है। देवालयों की उच्छ्रिति, उन पर शिखर निर्माण तथा उनका मेरु, मन्दिर, कैलास आदि पर्वतों के आधार पर नामकरण इस दिशा में संकेत करते हैं। दूसरी ओर पर्वतों की गुफाओं से भी देव-प्रासाद का उखव माना जा सकता है। कई देवालय पर्वतों की गुफाओं में स्थित हैं, जैसे एलोरा का कैलास मन्दिर तथा जम्मू में त्रिकुटा की पहाड़ियों पर गुफा में स्थित मां वैष्णव देवी का मन्दिर आदि। समराङ्गणसूत्रधार में ऐसे मन्दिरों के लिये लयन, गुहाधर, गुहराज आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है।[4] विष्णुधर्मोत्तर पुराण में सुगुहाख्य प्रासाद का उल्लेख प्राप्त होता है।[5] देवालयों की उत्पत्ति के विषय में एक मत यह भी प्राप्त होता है कि विमानप्रासाद गगनचारी दवविमानों के आकृतियों की अनुकृति हैं। जो विमान जिस देवता से सम्बद्ध था, लोक में उस देवता से सम्बद्ध देवालय का वहीं, अभिधान बना।[6] इस प्रकार देवालय के प्रारम्भिक स्वरूप निर्माण में अनेक घटकों का योगदान

1. शिल्परत्न 75.1-2
2. स्टेला क्रेमरिश-हिन्दू टेम्पल, पृ. 150-154, द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल-भारतीय स्थापत्य, पृ. 239
3. द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल, वहीं, पृ. 239-242
4. वहीं, पृ. 245
5. विष्णुधर्मोत्तर, 3.86.124
6. समराङ्गण सूत्रधार, 55.10

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

विद्वानों ने स्वीकार किया है।

प्रासाद-निर्माण सामान्यतया प्रासाद निर्माण दो भागों में विभक्त होता है। तलच्छन्द तथा ऊर्ध्व छन्द। तलच्छन्द के अन्तर्गत मन्दिर का गर्भगृह अथवा मण्डोवर, अन्तराल (बरामदा), महामण्डप, गूढमण्डप या अर्धमण्डप तथा प्रवेश द्वार पर विचार किया जाता है। ऊर्ध्वछन्द में भवन के नीचे से ऊपर की ओर संरचना पर विचार किया जाता है। इसके अन्तर्गत जगती, गर्भगृह की भित्ति एवं शिखर आते हैं। गर्भ-गृह की भित्ति को जंघा कहते है। जंघा में गवाक्ष, उसका छाद्य एवं उसके अलंकरण आते हैं। जंघा के अन्त से शिखर का प्रारम्भ होता है। शिखर के मूल में स्कन्ध, उसके ऊपर ग्रीवा, आमलक, पद्म, कलश एवं नारिकेल निर्मित होते हैं। शिखर के चारों ओर शृंग, ऊरु शृंग, कर्ण शृंग तथा अन्तराल के ऊपर शुकनास होता है। सामान्यतया नागर प्रासाद का यही स्वरूप होता है। इसमें जो प्रासाद परिक्रमा-मार्ग से युक्त हैं उन्हें सान्धार-प्रासाद तथा परिक्रमा से रहित को निरन्धार-प्रसाद कहा जाता है।[1]

देवालयों के भेद वास्तुशास्त्र के अनुसार देवालयों के प्रमुख रूप से तीन भेद हैं नगर, द्राविड तथा बेसर। नागर देवालय उत्तर-भारतीय शिल्प-परम्परा से सम्बद्ध हैं। इस परम्परा के उद्भावक विश्वकर्मा कहे गये हैं। इन देवालयों को प्रासाद कहा गया है। दूसरी परम्परा द्राविड़ है। इसका सम्बन्ध दक्षिण भारतीय वास्तु-परम्परा से है। इसके प्रमुख आचार्य मय, मानसार आदि हैं। इस परम्परा के देवालयों को विमान कहा गया है। तीसरी विधा बेसर संज्ञक है। इस वास्तु में वृत्ताकृति की प्रधानता होती हैं। बेसर शैली के देवालय में दो कोण (द्वयस्र) होते हैं।[2] कुछ विद्वानों ने नाक के आभुषण बेसर की आकृति से इसका साम्य स्थापित किया है। जबकि मुझे अधिक तर्क संगत प्रतीत होता है कि इस शब्द के मूलार्थ को गुजराती शब्द बेसर से ग्रहण किया जाय। गुजराती भाषा में 'बे' शब्द का प्रयोग दो की संख्या के लिये किया जाता है। 'सर' शब्द संस्कृत के कोण वाची शब्द 'अस्र' के लिये किया जाता है, अतः बेसर शब्द का अर्थ द्वयस्र या दो कोण होता है। उन दोनों कोणों वाली आकृति को पूर्ण करने के लिये अर्धवृत्त का सहयोग लेना पड़ता है। इन तीनों भेदों का परिचय संक्षेप में इस प्रकार दिया जा सकता है कि नागरदेवालय चतुरस्र एवं प्रासाद पद से व्यवहृत होते हैं। द्रविड देवालय विमान संज्ञक एवं ग्रीवा से प्रारम्भ कर अष्टास्र होते हैं तथा बेसर देवालय कण्ठ से प्रारम्भ कर वृत्ताकार होते हैं।[3] अथवा नागर चतुरस्र, द्राविड अष्टास्र तथा बेसर वृत्ताकार होता है

---

1. प्रासाद मण्डन, 2.1-35 अपराजित पृच्छा, 105, 115, 160, 162 समराङ्गण, 56.18-44 श्रीनारायण चतुर्वेदी-नागर शैली के नये हिन्दू मन्दिर
2. द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल-भारतीय स्थापत्य, पृ. 269
3. सुप्रभेदागम, 31.38-39

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

नागरं चतुरस्र स्यादष्टास्र द्राविडं तथा।
वृत्तं च वेसरं प्रोक्तमेतत्पीठाकृतिस्तथा।।[1]

प्रासादों में भेद समराङ्गण सूत्रधार के अनुसार प्राचीन काल में ब्रह्मा ने देवों के लिये पाँच विमान बनाये। उन विमानों के नाम वैराज, कैलास, पुष्पक मणिक तथा त्रिविष्टप थे। इनमें वैराज, ब्रह्मा का, कैलास शिव का, पुष्पक कुबेर का, मणिक वरुण का तथा त्रिविष्टप इन्द्र का विमान था

पुरा ब्रह्मासृजत् पञ्च विमानान्यसुरद्विषाम्।
वियद्वर्त्मविचारीणि श्रीमन्ति च महन्ति च।।

तानि वैराजकैलासे पुष्पकं मणिकाभिधम्।
हैमानि मणिचित्राणि पञ्चमं च त्रिविष्टपम्।।

आत्मनः शूलहस्तस्य धनाध्यक्षस्य पाशिनः।
सुरेशिने च विश्वेशो विमानानि यथाक्रमम्।।[2]

इन व्योमचारी देवविमानों को आदर्श बनाकर उन्हीं की प्रतिकृति को शिला एवं पक्की ईटों के द्वारा प्रासाद रूप में नगर में शोभार्थ स्थापित किया गया है

प्रासादांश्च तदाकारान् शिलापक्वेश्टकादिभिः।
नगराणामलङ्कारहेतवे समकल्पयत्।।[3]

कीर्तितानि विमानानि यान्येव सुरवर्त्मनि।
तान्येव स्थावरत्वेन प्रासादा इति विश्रुताः।।[4]

पञ्चविध विमानों को आधार बनाकर पाँच प्रकार के प्रासादों का वर्णन अग्नि[5] तथा गरूड़[6] पुराण में प्राप्त होता है। इनकी आकृति का वर्णन इस प्रकार मिलता है

वैराजं चतुरस्रं स्याद् वृत्तं कैलाससंज्ञितम्।
चतुरस्रायताकारं विमानं पुष्पकं भवेत्।।
वृत्तायतं च मणिकमष्टास्रि स्यात् त्रिविष्टपम्।।[7]

1. मानसार, 53.53 (27)
2. समराङ्गण सूत्रधार 49/2-4
3. वहीं 49.5
4. वहीं 50/104, 105
5. अग्निपुराण, 104, 11-20
6. गरुड पुराण, 1.47.19-24
7. समराङ्गण 49.7.8

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

वैराज प्रसाद अग्नि एवं गरुड़ पुराण के अनुसार वैराज चतुरस्र होता है। इसके 9 भेद होते हैं मेरु, मन्दर, विमान, भद्र, सर्वतोभद्र, रुचक, नन्दक, नन्दिवर्धमान एवं श्रीवत्स।[1] गरुड़ पुराण में भी 9 भेदों का उल्लेख है एवं कुछेक नामों को छोड़कर शेष के नाम वहीं हैं।[2]

पुष्पक प्रासाद ये प्रासाद आयताकार होते हैं। इसके भी 9 भेद होते हैं। अग्नि[3] के अनुसार इनके नाम बलभी, गृहराज, शालागृह, मन्दिर, विशालचमस, ब्रह्ममन्दिर, भुवन, प्रभव एवं शिविका वेश्म कहे गये हैं। गरुड पुराण[4] में वर्णित 9 भेदों के नाम किञ्चित् अन्तर के साथ यही हैं।

कैलास प्रासाद वृत्ताकार इन प्रासादों के भी 9 भेद वलय, दुन्दुभि, पद्म, महापदक, वर्धनी, उष्णीष, शंख, कलश तथा खवृक्ष होते हैं।[5] गरुड पुराण ने भी किञ्चित् नाम के साथ इनके 9 भेदों का वर्णन किया है।[6]

मणिक प्रासाद वृत्ताकार आकार के ये प्रासाद अग्निपुराण में मणिक तथा गरुड पुराण में मालक कहे गये हैं। अग्नि के अनुसार इनके 9 भेद गज, वृषभ, हंस, गरुत्मान्, ऋक्षनायक, भूषण, भूधर, श्रीजय एवं पृथिवीधर कहे गये हैं।[7] किञ्चित् पार्थक्य के साथ गरुड पुराण में भी इनके 9 भेद वर्णित हैं।

त्रिविष्टप प्रासाद ये प्रासाद अष्टकोण होते हैं। इनके 9 भेद अग्नि पुराण के अनुसार इस प्रकार हैं वज्र, चक्र, स्वस्तिक, वज्रवस्तिक, चित्र, स्वस्तिकखड्ग, गदा, श्रीकण्ठ तथा विजय।[8] गरुड पुराण[9] में इसके 9 भेद थोड़े नाम पार्थक्य से वर्णित हैं।

इस प्रकार इन पाँचो प्रकार के प्रासादों के अपने भेदों के साथ 45 भेद प्राप्त होते हैं। किन्तु अन्य पुराणों में तथा वास्तुग्रन्थों में इनके भेद पृथक् हैं। स्कन्द पुराण में 25 प्रासाद,[10] विष्णु धर्मोत्तर पुराण में 23 प्रासाद,[11] तलों की दृष्टि एक भौम प्रासाद से लेकर एकादशभूमि प्रासादों का वर्णन,[12] आकृति के अनुसार प्रासाद भेद,[13] मण्डप एवं द्वारादि की दृष्टि से प्रासाद भेद प्राप्त होते हैं। प्रासादों

---

1. अग्निपुराण, 104.13
2. गरुडपुराण, 1.47.22-23
3. अग्निपुराण, 104, 14-15
4. गरुड, 1.47, 24
5. अग्निपुराण, 104.16-17
6. गरुडपुराण, 1.47.25
7. अग्नि, 104.17-18
8. वहीं, 104, 19-21
9. गरुड, 1.47.27
10. स्कन्द, 7.1.24.56-60
11. विष्णुधर्मोत्तर 3.86, 12-17, 21-28
12. वहीं, 3.86.91-97
13. वहीं, 3.86.98-127

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

के वर्गीकरण एवं भेदों का विशद वर्णन वास्तु-ग्रन्थों में प्राप्त होता है। समराङ्गण सूत्रधार में प्रथमतः वैराज, कैलासादि भेद तथा निर्माणरीति के अनुसार नागर, ललित, मिश्रक, सान्धार, निगूढ, द्रविड, वावाट तथा भूमिज प्रासाद वर्णित हैं।[1] अपराजितपृच्छा[2] तथा प्रासाद-मण्डन[3] में चौदह प्रकार के प्रासाद, शुक्रनीति[4] में सोलह प्रासाद तथा बृहत्संहिता[5] में बीस प्रासाद वर्णित हैं।

दक्षिण-भारतीय विमान संज्ञक देवालय विमान देवताओं का वर्गीकरण प्रायः उनके आकार, तल तथा ऊँचाई के आधार पर किया गया है। मय के अनुसार विमान का निर्माण चतुरस्त्र, आयत, वर्तुल, अष्टास्त्र, षडास्त्र, द्वयस्त्र अथवा वृत्ताकार होना चाहिये।[6] विश्वकर्मवास्तुशास्त्र में प्रकल्पन रीति के अनुसार देवालयों का वर्गीकरण कलिंग, द्राविड, शौरसेनिक तथा कौसल किया गया है **कालिङ्गं, द्रविड़ शौरसैनिकं कौसलन्त था।**[7] कलिङ्गं द्राविड़ का वर्णन लक्षण तथा उनके भेद समराङ्गण सूत्रधार[8] ईशान शिव गुरुदेव पद्धति तथा सुप्रभेदागम में अत्यन्त विस्तार से किया गया है। विमान देवालय के प्रधान वैशिष्ट्य गोपुर, भूमि या तल, प श्च-प्रकार, स्तूपिका, लुपा आदि हैं।

गोपुर गोपुर का निर्माण देवालय के द्वार, पुर के द्वार या विशाल मार्ग पर किया जाता है। इसको सात या नौ तल का भी बनाया जाता है

सप्तभौमं गोपुरं वा नवभौमयुतं तु वा।
देवालये पुरद्वारे क्वचिदन्यत्र वा बुधः।
विशालमार्गमिलितं स्थापत्येत्क्षेमसिद्धये।।[9]

इसे अलिन्द, स्तम्भ, आँगन, द्वार, सोपान आदि से युक्त निर्मित करना चाहिये।[10] इसके अलंकरण हेतु किन्नरी, सगुच्छ लता, कुम्भ, कमल, सुवर्ण मय या रजतमय हंस आदि का निर्माण होना चाहिये।[11] दक्षिण-भारतीय मन्दिरों में गोपुर के निदर्शन का श्रीपुरी के कामाक्षी मन्दिर, त्रिचना-पल्ली के श्रीरंग मन्दिर आदि में प्राप्त होते हैं।

---

1. समराङ्गण सूत्रधार, 49.2-8, 63.1-3, 56.9-22,61 आदि
2. अपराजित 106.1-40, 130.1-2
3. प्रासादमण्डन, 1.6, 7
4. शुक्रनीति 4.4.67-72
5. वृहत्संहिता 56.17-19
6. मयमत 11.1-2
7. विश्वकर्मावास्तु 75..17
8. समराङ्गवसूत्रधार अ. 61, 62
9. विश्वकर्मावास्तुशास्त्र 28.29
10. वहीं 28.15-17
11. वहीं 28.18-201

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

प्राकार विमान देवालय का दूसरा वैशिष्ट्य प्राकार-प्रकल्पन है। इसे देव परिवार हेतु, देवालय की शोभा हेतु तथा रक्षा हेतु निर्मित कराया जाता है। **बल्यर्थं परिवारार्थं शोभार्थं रक्षणार्थकम्।**[1] मानसार में पाँच प्राकारों की चर्चा की गई है। ये हैं अन्तर्मण्डल (आदि शाला), अन्तर्हारा, मध्यहारा, प्राकार तथा महा मर्यादा (पञ्चम शाला)। यथा

आदिशालां ततः कुर्यादन्तर्मण्डलमीरितम्।
द्वितीयमन्तर्हारा च मध्यहारा तृतीयकम्।।

प्राकारं तच्चतुर्थं च कथितं तन्मयादिकम्।
ततः पञ्चमशालां च महामर्यादामीरितम्।।

स्तूपिका नागर प्रासाद में शिखर पर जो स्थिति 'आमलक' की होती है, वही विमान में स्तूपिका की होती है। विमान के शिखर पर जहाँ स्तूपिका का निर्माण करना हो, वहाँ मूर्ध्नेष्टका रखकर शिखर भाग को स्वर्णादि से आच्छादित करना चाहिये। पुनः स्तूपी दण्ड स्थापित कर उस पर स्तूपीकुम्भ स्थापित किया जाता है।[3]

लुपा शिखर भाग का दूसरा विशिष्ट अंग लुपा है। आकृति में यह लम्बी पट्टियों के समान होता है। इन पट्टियों का ऊपरी छोर शिखर के कूट में प्रविष्ट होता है तथा निचला छोर लुपालम्ब से जुड़ता है। मानसार में आठ प्रकार की लुपाओं का वर्णन प्राप्त होता है।

अम्बरं च व्यय ज्योतिर्गगनं च विहायसी।
अनन्तं चान्तरिक्षं च पुष्कलं चाष्टधाः लुपाः।।[4]

'मयमत' में शिखर ढलान के मान को देखते हुये लुपा के पाञ्चाल, वैदेह, मगध, कौरव, कौशल, शौरसेन, गान्धर्व एवं आवन्तिक संज्ञक भेद वर्णित हैं।[5] अपने इन वैशिष्ट्यों से युक्त विमान-वास्तु का देवालयों में एक पृथक् स्थान है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि

1. देवालय देवों के अधिष्ठान मात्र ही नहीं, स्वयं देव-विग्रह भी होते हैं।
2. देवालय के यद्यपि कई भेद हैं किन्तु निर्माण-कला की दृष्टि से इनके दो प्रधान भेद हैं उत्तरभारतीय नागर देवालय तथा दक्षिण भारतीय द्राविड देवालय।
3. देवालय की उत्पत्ति एवं स्वरूप विकास में यज्ञ चिति, उत्तुङ्ग पर्वत तथा पर्वतों में स्थित गुफाओं का एवं लोक में पूजार्थ निर्मित लता-पत्र वस्त्रादि से निर्मित मण्डपों का योगदान

1. मानसार 31.1
2. मानसार 31.6-8
3. शिल्परत्न 36.1-6
4. मानसार 18.86,87
5. मयमत 18.10

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

रहा है। समराङ्गण सूत्रधार के अनुसार गगनचारी देव-विमान पृथिवी पर स्थित देवालयों क मानक आदर्श हैं।

4. दक्षिण भारतीय एवं उत्तर भारतीय देवालय परम्परा में प्रधान भेद शिखर भाग में परिलक्षि होता है। नागर देवताओं के शिखर पर आमलक, पद्म कलश एवं नारिकेल होता है त द्रविड देवालयों में मूर्ध्नेष्टका, स्तूपी दण्ड, स्तूपीकुम्भ तथा लुपायें होती हैं। इसके अतिरिक्त गोपुर एवं प्राकार भी दक्षिण भारतीय देवालयों को वैशिष्ट्य प्रदान करते हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सभी भारतीय शास्त्रों एवं विद्याओं का परम लक्ष परम तत्त्व की प्राप्ति है। देवों से सम्बद्ध होकर देवालय प्रकल्पन में वास्तुशास्त्र का अत्यन्त भव्य एवं प्राञ्जल रूप प्रकट होता है। देवों के प्रति उन्मुख होते ही भोग मोक्ष हो जाता है।, वास्तु देव-प्रासादों का प्रकल्पन करते-करते स्वयं देवार्पित प्रसाद बन जाता है।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

भूमि की गुणवत्ता एवं परीक्षण विधियाँ

प्रो॰ ओंकारनाथ चतुर्वेदी

वसन्त्यस्मिन् इति वास्तु जिस भवन या स्थान पर लोग निवास करते हैं, तथा जिस शास्त्र में मनुष्यों के निवास स्थान से सम्बन्धित सुख-सुविधा-सफलता एवं सुरक्षा के नियमों एवं प्रविधियों का वर्णन हो, उसे वास्तु-शास्त्र कहते हैं। प्राणीमात्र पाञ्जभौतिक शरीरधारी होता है। पञ्चमहाभूतों में 1. पृथ्वी 2. जल 3. तेज 4. वायु एवं 5. आकाश की गणना होती है। इन पञ्चमहाभूतों के सामञ्जस्य से ही मानवमात्र सुख-सुविधा-सुरक्षा-सफलता एवं सन्तुष्टि का अनुभव करता है। पृथ्वी तत्व सभी महाभूतों में गुणाधिक्य (पृथ्वी में रूप-रस-गन्ध-शब्द एवं स्पर्श सभी गुण विधमान रहते हैं) के कारण महत्वपूर्ण माना गया है। गृह-निर्माण में आधारभूत तत्व पृथ्वी ही है। पृथ्वी पर आवास निर्माण करते समय अन्य महाभूतों का सम्यक् सामञ्जस्य स्थापित करने हेतु वास्तुशास्त्र का प्रणयन हुआ है। आवासीय भूमि कैसी हो? भूमिका शुभाशुभत्व, भूखण्ड का आकार, भूमि का ढलान, मार्गवेध, मिट्टी की गुणवत्ता आदि माध्यमों से विचार किया जाता है। यहाँ पर भवन की सुदृढ़ता एवं चिरस्थायी निर्माण हेतु प्रमुख रूप से भूमि की गुणवत्ता का विचार किया जायेगा। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवनकाल में अपनेठ सामर्थ्य के अनुसार गृहनिर्माण करता है। गृहनिर्माण में भूमि से लेकर भवननिर्माण की सामग्री तक जितनी ठोस, चिकनी एवं भारी (वजनदार) होगी, भवन उतना ही सुदृढ़ एवं चिरस्थायी होगा। गृहनिर्माण की प्रशंसा में वास्तुराजवल्लभ ने इसे सभी पुण्यों में श्रेष्ठ बतलाया गया है।

स्त्रीपुत्रादिकभोगसौख्यजननं धर्मार्थकामप्रदम्।
जन्तूनामयनं सुखास्पदमिदं शीताम्बुघर्मापहम्।।

वापीदेवगृहादिपुण्यमखिलं गेहात्समुत्पद्यते।
गेहं पूर्वमुशन्तितेन विबुधाः श्रीविश्वकर्मादयः।।[1]

जिस प्रकार घास-फूँस आदि से बनी झौंपड़ी (पर्णकुटी) मिट्टी से निर्मित कच्चा घर, पक्की ईटों से बना मकान तथा पाषाण निर्मित भवन क्रमशः उत्तरोत्तर मजबूत एवं चिरस्थायी होते हैं। उसी प्रकार इनके निर्माण कर्ता (गृहस्वामी) को क्रमशः अधिकाधिक पुण्यशाली माना गया है। जैसा कि बृहद्वास्तुमाला में वर्णित है

1. वास्तुराजवल्लभ 1/5

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

कोटिघ्नं तृणजे पुण्यं मृण्मये दशसंगुणम्।
ऐष्टिके शतकोटिघ्नं शैलेऽनन्तं फलं गृहे।।[1]

भवननिर्माण में सामग्री के अतिरिक्त निर्माणयोग्य भूमि का शुभाशुभत्व वास्तुशास्त्र में उसके वर्ण-गन्ध-उर्वराशक्ति एवं स्वाद के आधार पर चार वर्गो में वर्गीकृत किया गया है। 1.ब्राह्मणी, 2. क्षत्रिया, 3. वैश्या, 4. शूद्रा। मिट्टी के रंग (वर्ण) के आधार पर श्वेत मिट्टी वाली भूमि को ब्राह्मणी, लालवर्ण की मिट्टी युक्त भूमि को क्षत्रिया, पीत अथवा हरिता मिट्टी वाली भूमि को वैश्या तथा काली मिट्टी की भूमि को शूद्रा संज्ञा दी गई है। यथा

शुक्ला मृत्स्ना च या भूमिब्राह्मणी सा प्रकीर्तिता।
क्षत्रिया रक्तमृत्स्ना च हरिद्वैश्या उदाहृता।।
कृष्णा भूमिर्भवेच्छूद्रा चतुर्धा परिकीर्तिता।[2]

महर्षिवसिष्ठ के शब्दों में

श्वेता शस्ता द्विजेन्द्राणां रक्ता भूमिर्महीभुजाम्।
विंशां पीता च शूद्राणां कृष्णान्येषां च विमिश्रिता।।[3]

ब्राह्मणी भूमि को ग्रन्थों में सर्वश्रेष्ठ, सभी प्रकार के सुख देने वाली कहा गया है। **ब्राह्मणी भूमि** ब्राह्मण कर्म करने वाले अर्थात् पुरोहित, अध्यापक, धर्मोपदेशक, विद्वान, वैज्ञानिक, एवं आध्यात्मिक एवं बुद्धिजीवी लोगों के निवास के लिये प्रशस्त मानी गई है। **क्षत्रिया भूमि** खिलाड़ी, सैनिक, पुलिस, रक्षाकर्मी शासनाधिकारी आदि के लिये आवास हेतु शुभ होती है। **वैश्याभूमि** व्यावसायिक संस्थानो, उद्योगिक संस्थानों, वित्तीय अथवा बैंकिंग संस्थानों, माल-हाट-दुकान अथवा इन कार्यो से जुड़े अन्य प्रकार के व्यापारियों के लिये श्रेष्ठफलदायक होती है। **शुद्रा भूमि** को बहुत शुभ नहीं माना जाता। ऐसी भूमि निम्नकार्य करने वाले अथवा विविध प्रकार के श्रमजीवी निर्धन वर्ग के लोगों के निवास हेतु कही गई है। अन्य आचार्य के मतानुसार भूमि पर उगने वाली वस्तुओं के आधार पर विभाजन इस प्रकार किया गया है। कुशायुक्तभूमि को ब्राह्मणी, शर (मूज) वाली को क्षत्रिया, कुश-कुश (कांस) वाली भूमि को वैश्या एवं सभी प्रकार के तृण-घास-खरपतवार वाली भूमि को शुद्रा कहा गया है।[4]

स्वाद के आधार पर जिस मिट्टी का स्वाद खट्टा हो वो वैश्या, तिक्त (तीरवा-मिर्च जैसा) स्वाद वाली शूद्रा, मधुर स्वाद वाली ब्राह्मणी एवं कसैले स्वाद की भूमि क्षत्रिया कहलाती

---

1. वृहद्वास्तुमाला 1/5
2. वहीं 1/27-28
3. वहीं 1/33
4. ब्राह्मणी भूः कुशोपेता क्षत्रिया स्याच्छराकुला।
कुशकाशाकुला वैश्या शूद्रा सर्वतृणाकुला।। वृहद्वास्तुमाला 1/29

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

है।[1] गन्ध के आधार पर सुगन्धितमिट्टी वाली ब्राह्मणी, रक्तगंध वाली क्षत्रिया, मधुरगन्ध की वैश्या तथा मद्य (मदिरा) जैसी गन्ध वाली भूमि को शूद्रा कहा गया है।[2]

नारद के मतानुसार घृतासृगन्नमद्यानां गन्धश्च क्रमशो भवेत्।[3] अर्थात् घृत के गन्ध वाली ब्राह्मणी, रक्तगन्ध वाली क्षत्रिया अन्नगन्धा वैश्या तथा मद्यके गन्ध वाली शूद्राभूमि होती है। इसका फल इस प्रकार है

ब्राह्मणी सर्वसुखदा क्षत्रिया राज्यदा भवेत्।
धनधान्यकरी वैश्या, शूद्रा तु निन्दिता भवेत्।।[4]

इससे विदित होता है, कि ब्राह्मणी भूमि सभी के लिये सभी प्रकार से सुख देने वाली, क्षत्रिया राज्याधिकारियों को विशेष सम्मान तथा अधिकार एवं प्रशासनिक पद देने वाली तथा धन-धान्यादि से समृद्ध करने वाली वैश्या भूमि होती है। शूद्रा भूमि को शुभ न मानकर निन्दित (अशुभ) बतलाया गया है। अर्थात् शूद्रा भूमि को सुख-सुविधा, सुरक्षा एवं सन्तुष्टि की दृष्टि से अधिक अनुकूल नहीं माना गया है। वहाँ पर निवास करने वाले लोगों का जीवन अस्थिर एवं संघर्षपूर्ण रहता है।

भूमि का प्लवत्व भूमि का भूखण्ड के प्लवत्व (ढ़लान) के आधार पर भी वर्गीकरण किया गया है। सामान्यतया पूर्व-उत्तर दिशा में ढ़लान तथा पश्चिम-दक्षिण दिशा में उठान (उच्च/ऊँची) वाली भूमि को शुभ माना गया है। यथा

पूर्वप्लवा वृद्धिकरी उत्तरा धनदा स्मृता।
अर्थक्षयकरी विद्यात् पश्चिमप्लवना ततः।।
दक्षिणप्लवना पृथ्वी नराणां मृतिदा भवेत्।[5]

वास्तुशास्त्र में अष्टदिक् (चार दिशा-चार विदिशा) प्लवत्व के आधार पर भूमि को अष्टवीथियों के नाम से वर्गीकृत किया गया है। इनमें पूर्व-उत्तर ढलान वाली वीथियाँ शुभ फलदायी है। दक्षिण-पश्चिम ढलान वाली अशुभ फलदायी हैं। पूर्वोत्तर दिशाओं से मिले हुए क्रमशः ईशान्य एवं वायव्यकोण के प्लव वाली वीथियाँ भी शुभ मानी गई हैं। इनका विस्तृत वर्णन बृहद् वास्तु माला में उपलब्ध है। संक्षेप मे उनके नाम एवं फल इस प्रकार हैं[1]

---

1. अम्ला भूमिर्भवेद्वैश्या तिक्ताशूद्रा प्रकीर्तिता।
   मधुराब्राह्मणीभूमिः कषाया क्षत्रिया मता।। वृहद्वास्तुमाला 1/29
2. सुगन्धा ब्राह्मणी भूमिः रक्तगन्धा तु क्षत्रिया।
   मधुगन्धा भवेद्वैश्या मद्यगन्धा च शूद्रिका।। वृहद्वास्तुमाला 1/30
3. वृहद्वास्तुमाला 1/34
4. वहीं 1/32
5. वृहद्वास्तुमाला 1/41-42

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

क्रम सं॰	वीथिनाम	नीचदिशा	उच्चदिशा	फल
1.	गोवीथि	पूर्व	पश्चिम	शुभ
2.	जलवीथि	पश्चिम	पूर्व	अशुभ
3.	यमवीथि	दक्षिण	उत्तर	अशुभ
4.	गजवीथि	उत्तर	दक्षिण	शुभ
5.	भूतवीथि	नैऋत्य	ईशान्य	अशुभ
6.	नागवीथि	वायव्य	अग्निकोण	अशुभ
7.	वैश्वानरी	अग्नि	वायव्य	शुभ
8.	धनवीथि	ईशान्य	नैऋत्य	शुभ

इसी तरह गजपृष्ठ-कूर्मपृष्ठ-दैत्यपृष्ठ एवं नागपृष्ठ नाम से भूमि को वर्गीकृत किया गया है। भूखण्ड के किसी हिस्से के उच्च होने पर उसका नामकरण किया गया है। इनमें गजपृष्ठ तथा कूर्मपृष्ठ वाले भूखण्डों को शुभ एवं दैत्यपृष्ठ व नागपृष्ठ वाले भूखण्डों को अशुभ बतलाया गया है। यथा[2]

गजपृष्ठ — **दक्षिणे पश्चिमे चैव नैर्ऋत्ये वायुकोणके।**
एभिरुच्चा यदा भूमिर्गजपृष्ठाभिधीयते।।

फल — **गजपृष्ठे भवेद्वासः स लक्ष्मीधनपूरितः।**
आयुवृद्धिकरो नित्यं जायते नात्र संशयः।।

कूर्मपृष्ठ — **मध्येऽत्युच्चं भवेद्यत्र नीचं चैव चतुर्दिशम्।**
कूर्मपृष्ठा भवेद् भूमिस्तंत्र वासो विधीयते।।

फल — **कूर्मपृष्ठे भवेद्वासो नित्योत्साहसुखप्रदः।**
धनधान्यं भवेत्तस्य निश्चितं विपुलं धनम्।।

---

1. वारुणोच्च समायुक्ता नीचमाहेन्द्रसंयुता।
गोवीथिरिति सा ज्ञेया ऐन्द्रोच्चा नीचवारुणा।
जलवीथिरिति प्रोक्ता वास्तुज्ञान विशारदैः।।
सोमोच्च यमनीचा च यमवीथीति कथ्यते।
यमोच्च सोमनीचा च गजवीथीति कथ्यते।।
ईशानोच्चं निर्ऋतौ नीचं भूतलं भूतवीथिकम्।
आग्नेयोच्चं वायुनीचं नागवीथिः प्रशस्यते।।
वायूच्चमग्निनीचं यद् वीथिं वैश्वानरीं विदुः।
निर्ऋत्युच्चमीशनीचं धनवीथीत्युदाहृता।। बृहद्वास्तुमाला 1/41-46

2. वृहद्वास्तुमाला 1/82-89

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

दैत्यपृष्ठ — पूर्वाग्निशम्भुकोणेषु उन्नतिश्च यदा भवेत्।
पश्चिमे च यदानीचं दैत्यपृष्ठोऽभिधीयते।।

फल — दैत्यपृष्ठे भवेद्वासो लक्ष्मीर्नायाति मन्दिरे।
धनपुत्रपशूनाञ्च हानिरेव न संशय।।

नागपृष्ठ — पूर्वपश्चिममोर्दीर्घो दक्षिणोत्तर उच्चकः।
नागपृष्ठं विजानीयात् कर्तुरुच्चाटनं भवेत्।।

फल — नागपृष्ठे यदा वासो मृत्युरेव न संशयः।
पत्नीहानिः पुत्रहानिः शत्रुवृद्धिः पदे पदे।।

नारायणभट्ट मुहूर्तमार्तण्ड कारके मतानुसार उत्तरदिशा में ढलान वाली भूमि ब्राह्मणों के लिये, पूर्व ढलान वाली क्षेत्रियों के लिये, दक्षिण ढलान वाली वैश्यों के लिये, तथा पश्चिम ढलान वाली भूमि अन्यों के लिये शुभ होती है। जहाँ जिस भूमि पर हृदय स्थिर हो, सन्तोष प्राप्त हो, वहीं निवास बनाना चाहिये। यथा

सौम्यादिप्लवभूतले विरचयेद्विप्रादिकोऽगग्रोऽखिले।
नान्येषां नियमोऽथ यत्र निखिलाः कुर्युर्गृहं हृत्स्थिरम्।।[1]

इस प्रसंग में बृहत्सहिता कार वराहमिहिर के वचन से ब्राह्मणादि क्रमशः उत्तर-पूर्व-दक्षिण-पश्चिम ढलान की भूमि पर गृहनिर्माण करावें किन्तु ब्राह्मण सभी दिशाओं की ढलान वाली भूमि पर गृहनिर्माण करा सकते हैं। अन्य लोग अपनी अभीष्ट दिशा वाली ढलान भूमि पर ही गृहनिर्माण करावें।[2] गर्ग के मतानुसार रंग-गन्ध-स्वाद-ढलान आदि से विभाजन इस प्रकार किया गया है।

मधुर दर्भसंयुक्ता घृतगन्धा च या मही।
उत्तरप्रवणा चेति ब्राह्मणानां तु सा शुभा।।

रक्तगन्धाकषाया च शरवीरेण संयुता।
रक्ता प्राक्प्रवणा ज्ञेया क्षत्रियाणाञ्च सा मही।।

दक्षिणप्रवणाभूमिर्याम्ला दूर्वाभिरन्विता।
अन्नगन्धा च वैश्यानां पीतवर्णा प्रशस्यते।।

पश्चिमप्रवणाकृष्णा विकुण्ठा काशसंयुता।
मद्यगन्धा मही धन्या शूद्राणां कटुका तथा।।[3]

1. वृहद्वास्तुमाला 1/40
2. वृहत्संहिता 53/91
3. वृहसंहिता 53/96-97, विमला टीका

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

भूखण्डों का आकार वास्तु शास्त्र के ग्रन्थों में भूखण्डों के आकारों का वर्णन प्राप्त होता है। कुल 24 प्रकार के आकारों के भूखण्डों के बारे में विस्तार से बतलाया गया है। जिनमें आयताकार-वर्गाकार-वृत्ताकार एवं भद्रासन आकार वाले भूखण्डों पर निवास हेतु गृहनिर्माण कराना प्रशस्त माना गया है।[1] यदि भूखण्ड उचित अर्थात् प्रशस्त न हो, तो उसे काट-छाँटकर अनुकूल आकृति का बनाकर ही उस पर गृहनिर्माण करना उचित होता है। शेष भूमि पर फुलवारी वाटिका तथा शुभवृक्षों को लगाकर उसका सदुपयोग किया जा सकता है। वास्तु के अनुसार गृह के समीप का वातावरण एवं वेधादि का विस्तृत वर्णन भी समुपलब्ध होता है। सार्वजनिक भीड़-भाड़ वाले-सिनेमा हाल- मन्दिर-मस्ज़िद पार्किंग-अस्पताल- कारावास-श्मशान आदि के समीप गृहनिर्माण वर्जित माना गया है। इनके समीप निवास करने वाले को शान्ति प्राप्त नहीं होती है।

निवास के सामने सीधी सड़क, मुख्यद्वार के सामने अन्य का द्वार, बिजली का खम्बा, पीपलादि का महावृक्ष, नदी आदि, गृह द्वारा का वेध भी वर्जित है। यहाँ विस्तारभय से संक्षेप में उल्लेख किया गया है। ग्रन्थों के अवलोकन एवं अभ्यास से सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया सकता है। पूर्वोक्त भूमि के वर्गीकरण के द्वारा भूमि के शुभाशुभत्व का वर्णन पर्याप्त रूप से किया जा चुका है। निवास योग्य भूमि का लक्षण वराहमिहिराचार्य ने बृहत्संहिता में इस प्रकार दिया है

शस्तौषधिद्रुमलता मधुरा सुगन्धा स्निग्धा समा न सुषिरा च महीनराणाम्।
अप्यध्वनि श्रमविनोदमुपागतानां, धत्ते श्रियं किमुत शास्वतमन्दिरेषु[2]।।

जहाँ पर प्रशस्त (मांगलिक) औषधियाँ, वृक्ष बेल उत्पन्न होते हों, मधुर सुगन्धवाली चिकनी एवं समतल भूमि हो, जहाँ पर पथिक लोग रास्ते के श्रम को दूरकर प्रसन्न तथा प्रफुल्लित हो, वह भूमि निरन्तर सुख-शान्ति-आनन्द एवं लक्ष्मी प्रदान करने वाली होती है। बृहद्वास्तु माला में गर्गादिऋषियों का मत उद्धृत है

मनसश्चक्षुषोर्यत्र सन्तोषो जायतेभुवि।
तस्यां कार्यं गृहं सर्वैरिति गर्गादिसम्मतम्।।[3]

संक्षेप में प्रशस्त भूमि का लक्षण इस प्रकार है

अनूषरा स्निग्धवती प्रशस्ता च बहूदका।
तृणोपलान्विता या सा मान्या वास्तुविधौ धरा।।[4]

---

1. वृहद्वास्तुमाला 1/90-92
2. वृहत्संहिता 53/88
3. वृहद्वास्तुमाला 1/93
4. वृहद्वास्तुमाला 1/94

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

वास्तु की दृष्टि से जो ऊषर (व ऊर) भूमि न हो, स्निग्ध कान्ति वाली या चिकनी मिट्टी युक्त हो, जिसमें जल की मात्रा अधिक हो, तृणयुक्त तथा पाषाणादि से ठोस हो, उस भूमि को गृहनिर्माण हेतु प्रशस्त माना गया है। तात्विकदृष्टि से ठोस, उपजाऊ, जलयुक्त, चिकनी आदि चिरस्थायी आधारवाली भूमि चिरस्थायी गृहनिर्माण के लिये शुभ मानी गई है। इसी प्रकार पोली, रेतीली, शुष्क जिसमें शल्य (हड्डी) आदि हो वह भूमित्याज्य मानी गई है। यथा

स्फुटिता च सशल्या च वल्मीकाऽऽरोहिणी तथा।
दूरतः परिहर्तव्या कर्तुरायुर्धनापहा।।[1]

इसका फल

स्फुटिता मरणं कुर्यादूषरा धननाशिनी।
सशल्या क्लेशदा नित्यं विषमा शत्रुवर्धिनी।।

चैत्ये भयं गृहकृतो वल्मीके स्वकुले विपत्।
गर्तायान्तु विनाशः स्यात्कूर्माकारे धनक्षयः।।[2]

भवन निर्माण हेतु भूमि का घनत्व मजबूत होना चाहिए। भूमि जितनी ठोस (घनीभूत) होगी, उस पर भवन निर्माण मजबूत एवं चिरस्थायी होगा। जो भूमि पोली, रेतीली होगी, वह उतनी ही अशुभ होगी। उस पर भवननिर्माण भी अस्थायी रहेगा। भूमि में खुदाई करते समय प्राप्त वस्तुओं से उसके घनत्व का परीक्षण किया जाता है। यथा

पिपीलकाषोडशपक्षनिद्रा भवन्ति चेत्तत्र वसेन्न कर्ता।
तुषास्थिचीराणि तथैव भस्मान्यण्डानि सर्वाः मरणप्रदाः स्युः।।

वराटिका दुःखकलिप्रदात्री कार्पास एवाति ददाति दुःखम्।
काष्ठं प्रदग्धं त्वतिरोगभीतिर्भवेत्कलिः खर्परदर्शनेन।।
लौहेन कर्तुर्मरणं निगद्यं विचार्य वास्तु प्रदिशन्ति धीराः।।[3]

अर्थात् भवननिर्माण की भूमि के मध्य खोदकर भूमि के घनत्व का परीक्षण करना चाहिए। जिस भूमि के अन्दर चींटी, मेढ़क, दीमक आदि हों अथवा उनके बिल हो, वहाँ पर गृहकर्ता को निवास नहीं करना चाहिए। भूसा, हड्डी, चिथड़े, राख, अण्डे ये सभी वस्तुऐं भी मृत्युदायक बतलायी गई हैं। कौड़ी, रूई आदि भी अशुभ तथा दुःख प्रदान करती हैं। जली लकड़ी से रोग, भस, खप्पर के मिलने से कलह आदि होता है। लौह मिलने पर गृहकर्ता की मृत्यु होने का भी

---

1. वृहद्वास्तुमाला 1/79
2. वृहद्वास्तुमाला 1/80-81
3. वहीं 1/114-116

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

संकेत प्राप्त होता है। इन सभी का विचार कर ही उस भूमि पर गृह निर्माण शुभ फलदायक होता है।

अन्य आचार्य के मत से भूमि पर खोदने पर यदि पाषाण (पत्थर) खण्ड मिले तो धन एवं आयु की वृद्धि होती है। ईट मिलने पर धनलाभ तथा हड्डी राख, केश (बाल) आदि प्राप्त होने पर गृहकर्ता व्याधियुक्त होता है। और भी

खाते यदाश्मा लभते हिरण्यं तथेष्टकायां च समृद्धिरत्र।
द्रव्यञ्च रम्याणि सुखानि धत्ते ताम्रादिधातुर्यदि तत्र वृद्धिः।।[1]

पत्थर प्राप्त होने पर सोने की प्राप्ति, ईंटें मिलने पर समृद्धि, द्रव्य (धनादि) मिलने पर अनेक सुख, तथा ताम्रादि धातु प्राप्त होने पर हर प्रकार की वृद्धि अर्थात् समृद्धि मिलती है। भूमि के शुभाशुभत्व परीक्षण के अनेक प्रकार वास्तु के ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। जिनमें से कुछ सरल प्रकार निम्नलिखित हैं

1. गृहस्वामी के हाथ की माप से एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा तथा एक हाथ गहरा गड्ढा खोदकर, पुनः उसकी निकली हुई मिट्टी से गड्ढे को भरें। गड्ढा भरने के बाद मिट्टी शेष रहे तो उत्तम, शेष न बचे और गड्ढा पूर्ण भर जाय तो भूमि मध्यम, मिट्टी से गड्ढा पूरा न भरे अर्थात् मिट्टी कम पड़ जाय तो भूमि को अधम अर्थात् अशुभ फल देने वाली समझनी चाहिए। यथा

खातं भूमि परीक्षणे करमितं तत्पूरयेत्तन्मृदा।
हीने हीनफलं समे समफलं लाभो रजो वर्द्धने।।[2]

2. एक हाथ लम्बाई-चौड़ाई एवं गहराई के गड्ढे की मिट्टी निकालकर उसमें जल भरकर सौ कदम दूर जाकर पुनः लौटकर गड्ढे के जल को देखें। यदि गड्ढे का जल यथावत् है, अर्थात् कम नहीं हुआ है, तो शुभ, चतुर्थांश (चौथाई) जल कम होने पर मध्यम तथा आधे से कम जल गड्ढे में शेष रहने पर नेष्टफल (अशुभ) वाली भूमि समझें। यथा

तत्कृत्वा जलपूर्णमाऽऽशतपदं गत्वा परीक्ष्यं पुनः।
पादोनाऽर्धविहीनकेऽवनिभृते मध्याधमेष्टाम्बुभिः।।[3]

3. एक अन्य प्रकार इस तरह बतलाया गया है। एकहाथ का गड्ढा खोदकर जल भरने के एक मुहूर्त (दोघटी=48 मिनट) पश्चात् परीक्षण करें। यदि जल सूखे नहीं, भरा रहे तो

---

1. वृहद्वास्तुमाला 1/113
2. वृहद्वास्तुमाला 1/106
3. वहीं 1/106

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

शुभ, जल यदि क्षणभर में सूखजाय तो अशुभ फल होता है। इतना ही नहीं, गड्ढे में जल भरते समय जल की गति से भी परिक्षण करें। जल की गति गड्ढे में दक्षिणावर्त्ती हो तो सुख, वामावर्ती हो तो कर्त्ता के लिये अनिष्टकारी भूमि सिद्ध होती है। यदि जल स्थिर रहे तो गृह को स्थिरता प्राप्त होती है। यथा

कर्तुश्च हस्तप्रमितं खनित्वा खातं पयोभिः परिपूरितं चेत्।
वसेत्सुखार्थी परिपूरितं स्याच्छुष्कं भवेत्तत्क्षणमेव नाशः।।

स्थिरे जले वै स्थिरता गृहस्य स्याद्दक्षिणावर्तजलेन सौख्यम्।
क्षिप्रं जलं शोषयतीह खातो मृत्युर्हि वामेन जलेन कर्तुः।।[1]

नारदमत के मतानुसार एक हाथ लम्बाई-चौड़ाई एवं गहराई का गड्ढा खोदकर रात्रि के प्रारम्भ में (सूर्यास्त के समय सायंकाल) जल से पूर्णकर प्रातः काल गड्ढे के जल को देखें। गड्ढे में जल शेष रहे, तो उत्तम अर्थात् वृद्धिदायक, जल सूखने तथा कीच रहने पर मध्यम, जल सूखकर गड्ढे में दरार दिखलाई दें, तो भूमि को हानिदायक समझें। यथा

श्वभ्रं हस्तमितं खनेदिह जलं पूर्णं निशास्ये न्यसेत्।
प्रातर्दृष्टजलं स्थलं सदजलं मध्यं त्वसस्फाटितम्।।[2]

4. भूमि परीक्षण का एक अन्य प्रकार भी उपलब्ध होता है। आवास वाली भूमि पर सभी प्रकार के धान्य (अनाज) मिलाकर बुबाई करें। यदि समस्त भूमि पर अंकुर निकलें तो आवास हेतु भूमि शुभ समझें। भूखण्ड के जिस भाग में अंकुरण न हो, तो उस भूभाग को त्यागकरके ही आवास बनावें। समस्त भूमि पर बीज अंकुरित न हो तो उस भूमि पर आवास निर्माण नहीं करना चाहिए। यथा

अथवा सर्वधान्यानि वापयेच्च समन्ततः।
यत्र नैव प्ररोहन्ति तां प्रयत्नेन वर्जयेत्।।[3]

5. वराहमिहिराचार्य के मतानुसार गड्ढे में बिना पके मिट्टी के चौमुखा दीपक में अथवा मिट्टी के (बिना पके) चार दीपकों में चार बत्ती डालकर दीपक जलाकर चारों दिशाओं में रख दें। जिस दिशा की बत्ती अधिक देर तक स्वच्छ लौ के साथ जलती रहे, उसी दिशा के वर्ण वालों को वह भूमि प्रशस्त बतलाई है। उत्तर दिशा-ब्राह्मण, पूर्ण दिशा-क्षत्रिय, दक्षिण दिशा वैश्य एवं पश्चिम दिशा शूद्रों के लिये समझें। यथा

---

1. वृहद्वास्तुमाला 1/108-109
2. वृहद्वास्तुमाला 1/111
3. वहीं 1/110

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

आमे वा मृत्पात्रे श्वभ्रस्थे दीपवर्तिरभ्यधिकम्।
ज्वलति दिशि यस्य शस्ता सा भूमिस्तस्य वर्णस्य।।[1]

6. एक अन्य प्रकार सांयकाल एक हस्त लम्बाई-चौड़ाई एवं गहराई वाले गड्ढे में चारों वर्णों के प्रतीक (ब्राह्मण-श्वेत, क्षत्रिय-लाल, वैश्व-पीला तथा शुद्र-काला) चार रंग के फूलों को रखकर, प्रातः काल जाकर पुष्पों को देखें। जिस वर्ण का पुष्प न्यूनतम मुरझाया हो, उस वर्ण वाले व्यक्ति के लिये उस भूमि पर गृहनिर्माण करना शुभ होता है। यथा

श्वभ्रोषितं न कुसुमं यस्य प्रम्लायतेऽनुवर्णसमम्।
तत्तस्य भवति शुभदं यस्य च यस्मिन्मनो रमते।।[2]

विशेषदृष्टि ज्योतिषशास्त्र में मेषादि द्वादश राशियों की ब्राह्मणादि संज्ञा निर्धारित है। वास्तु शास्त्र ज्यौतिषशास्त्र का ही अंग है। यदि पूर्वोक्त वर्णन में ब्राह्मणादिसंज्ञक वर्णों के स्थान पर ब्राह्मणादि राशि वाले लोगों का ग्रहण किया जाये तो आधुनिक युग में जब जाति व्यवस्था का विरोध हो रहा है और वास्तुशास्त्र की लोकप्रियता बढ़ रही है, तो वास्तुशास्त्र की आलोचना से बचा सकता है, और वास्तुशास्त्र की उपयोगिता भी सिद्ध होगी। विद्वानों , मनीषियों वास्तुविदों से अनुरोध है वे इस दृष्टि से भी विचार करें। मेरी दृष्टि में उचित होगा निर्णय अन्य विद्वद्जन करें। **"द्विजा झषालिकर्कटा स्ततो नृपा विशो..... इत्यादि** मुहूर्तचिन्तामणि[3] के प्रमाण से ब्राह्मणादि संज्ञक राशियाँ इस प्रकार हैं

वर्ण	**राशियाँ**		
ब्राह्मण	कर्क,	वृश्चिक,	मीन
क्षत्रिय	मेष,	सिंह,	धनु
वैश्य	वृष,	कन्या,	मकर
शूद्र	मिथुन,	तुला,	कुम्भ

निष्कर्ष उपर्युक्त विधियों से भलीभांति परीक्षण करने के पश्चात् ही भवन-निर्माण विधिवत् प्रारम्भ करना चाहिए। विशेषरूप से भूमि के घनत्व की परीक्षा आवश्यक है। यदि भूमि का घनत्व सन्तोषजनक न हो, अर्थात् भूमि पोली, रेतीली, चींटी-दीमक आदि के बिलों से युक्त हो, रूई, भूसा, राख, कोयला, हड्डी (शल्य) युक्त हो तो जल के भूमिगतस्रोत तक पत्थर की चट्टान अथवा पुरूष की लम्बाई पर्यन्त समस्त भूखण्ड की गहरी खुदाई करके अनावश्यक (त्याज्य) वस्तुओं के निष्काषन के पश्चात् उसमें चिकनी मिट्टी एवं पाषाणखण्डों से भराई के बाद ही निर्माण-कार्य प्रारम्भ करना चाहिए।

---

1. वृहसंहिता 53/95
2. वहीं 53/95
3. मुहूर्त्तचिन्तामनि 6/22

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

दिक् साधन

पं० कल्याणदत्त शर्मा

मानव की मूलभूत आवश्यकताओं में तीन वस्तुओं की अधिक चर्चा होती है, रोटी, कपड़ा और मकान। जीवित रहने के लिये भोजन, तन ढ़कने के लिये कपड़ा एवं आश्रय हेतु मकान होना परमावश्यक है। वास्तुशब्द पुर, दुर्ग, आवास, भवन एवं निवेश्य भूमि का वाचक है। वास्तुशास्त्र का क्षेत्र गृह भवन, नगर, दुर्ग, ग्राम, देवालय, कूप, तालाब, मूर्त्तिनिर्माण, मण्डप, यज्ञशाला, रथादिवाहन, म श्चादि का निर्माण-प्रतिष्ठा करना एवं जीर्णोद्धार आदि वास्तुशास्त्र का क्षेत्र है। वास्तुशास्त्र का ज्यौतिष से निकट का सम्बन्ध है। इसका भूगोल, एवं भूगर्भविज्ञान तथा गणित से घनिष्ठ सम्बन्ध है। ज्योतिर्विज्ञानवेधशाला, यज्ञयागादि कार्य में, यज्ञ मण्डप यज्ञकुण्डनिर्माणादि, भवन प्रासाद मन्दिर के निर्माण कार्यो में विशेष उपयोग होता है। प्रस्तुत प्रकरण में भवन निर्माण में वास्तुशास्त्र की चर्चा करनी है। भवननिर्माण में किस दिशा में पूजागृह, कोषागार, स्नानगृह, शौचालय, रसोईघर, शयन-स्वागत-अध्ययन-भोजन आदि कक्षादि का निर्माण श्रेयस्कर है, इसको प्राथमिकता दी गई है। अतः ज्यौतिर्विज्ञानशाला, यज्ञयागादिकर्म, भवननिर्माण में सर्वप्रथम दिक्शोधन करना परमावश्यक हो जाता है। इस प्रक्रिया को आधुनिक समय में हल्के-फुल्के घटिया किस्म के चुम्बकीय यन्त्रों द्वारा प्रायः सर्वत्र पूर्ण किया जाता है। निम्नस्तरीय कम्पासयन्त्र द्वारा जो दिशाज्ञान किया जाता है वह प्रायः अशुद्ध हो जाता है। इसका मूल कारण प्रबलशक्ति प्रदायक बिजली के तार व भूमिगत ऐसे पदार्थ है जो चुम्बक की स्थिरता में विघ्न उत्पन्न करते है। इस कारण दक्षिणोत्तर दिशा के निर्णय में त्रुटि हो जाने से उपर्युक्त तीनों कर्म, दिक्मूढ़ हो जाने से कल्याणप्रद नहीं होते। एतदर्थ भगवान् भास्कर देव के आधार पर किया हुआ दिक्शोधन वास्तविक होता है। भगवान् भास्कर यत्र-तत्र-सर्वत्र स्पष्टमध्याह्नकाल में याम्योत्तर रेखा पर आते हैं। याम्योत्तर रेखा पर आते ही धूपघड़ी (सूर्य घटिका) तथा पलभायन्त्र के अनुसार ठीक दिन के 12 बजे का ज्ञान होता है। यह स्थानीय 12 बजे के काल का द्योतक होता है किन्तु सर्वत्र धूपघड़ी की उपलब्धि नहीं होती है। अतः धूपघड़ी के 12 बजे का ज्ञान मध्यमान्तर व बेलान्तर के माध्यम से किया जाता है। भौगोलिक स्थिति अक्षांश व रेखांश से जानी जाती है। अक्षांश की गणना भूमध्य रेखा (विषुवत् रेखा) से तथा रेखांश की पूर्व व पश्चिम में ग्रिन्विच (लन्दन) इंग्लैण्ड से की जाती है तथा भारतीय परम्परा के अनुसार ध्रुवोन्नति के आधार से भी अक्षांश का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। मध्यमान्तर प्रमुख नगरों के पञ्चाङ्गों में भी उपलब्ध होते है। उनको जानने के लिये ही उपरोक्त गणित प्रक्रिया का दिग्दर्शन करवाया गया है। वेलान्तर की सारणी सभी स्थानों पर प्रतिदिन एक जैसी होती है जो सर्वत्र उपलब्ध है। मध्यमान्तर और

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

वेलान्तर का संस्कार बीजगणित की रीति से करने पर स्पष्टान्तर ज्ञात हो जाता है। यदि ये दोनों ऋणात्मक हों तो योग करने पर ऋणात्मक स्पष्टान्तर तथा दोनों धनात्मक हों तो योग करने पर धनात्मक, यदि दोनों में एक धनात्मक और दूसरा ऋणात्मक हो तो दोनों का अन्तर करने पर स्पष्टान्तर ज्ञात होगा, इसमें ऋणात्मक संख्या अधिक हो तो स्पष्टान्तर ऋण होगा और यदि धनात्मक संख्या अधिक हो तो स्पष्टान्तर धन होगा। अपने-अपने राष्ट्र की यान्त्रिक घड़ियों में स्पष्टान्तर का विपरीत संस्कार 12 बजे के समय में होने पर जो समय प्राप्त होगा वह समय स्थानीय धूपघड़ी के 12 बजे का होगा।

प्रत्येक राष्ट्र के नगरों में 1 लम्बरूपात्मक लोहे का ठोस डण्डा समतल भूमि में सुदृढ़ कर गाड़ देना चाहिये और अभीष्ट दिन के उपरोक्त प्रकार से प्राप्त स्पष्टान्तर का 12 बजे में विपरीत संस्कार करने पर जो यान्त्रिक स्थानीय घटी का समय होगा उस समय धूपघड़ी (स्थानीय) के 12 बजे का समय होगा। उस समय लट्ठे की छाया के मध्य भाग में सरल रेखा करने पर याम्योत्तर रेखा उपलब्ध होगी। उस याम्योत्तर रेखा पर विपरीत दिशा में लम्बरूपात्मक सरल रेखा करने पर पूर्वापरा दिशा ज्ञात हो जायेगी। अर्थात् स्थानीय स्टैण्डर्ड समय में स्पष्टान्तर का विपरीत संस्कार करने पर स्थानीय धूपघड़ी के 12 बजे का समय ज्ञात होता है। यह अकाट्य सिद्धान्त है। उस समय लम्ब रूप शंकु की छाया के अर्द्ध भाग पर सरल रेखा करने याम्योत्तर रेखा का सही ज्ञान हो जाता है। स्थानीय स्टैण्डर्ड समय रेडियो के समय से ज्ञातकर अपनी स्टैण्डर्ड समय सूचक घड़ी आगे पीछे हो तो सही कर लेनी चाहिये अन्यथा दिक्शोधन में त्रुटि आ जायेगी। सुविधा के लिये मध्यन्तर और वेलान्तर सारणी दोनों ही पञ्चाङ्गों में उपलब्ध हो जाती है। उनका संस्कार परस्पर में बीजगणित की रीति से करने पर स्पष्टान्तर सुलभता से ज्ञात हो जाता है। इस प्रकार अभीष्ट भूमि पर दिक्शोधन कर भवन के नक्शे के अनुसार भवन निर्माण करना शुभफलप्रद होता है।

शंकु यन्त्र को सिद्धान्तज्ञ ज्योतिर्विद् विद्वानों ने अत्यधिक महत्त्व देकर इसका उपयोग किया है। इसका ज्वलन्त उदाहरण सिद्धान्त-ग्रन्थों का त्रिप्रश्नाधिकार है। इस अध्याय में दिक्, देश व काल इन 3 पदार्थों का वर्णन किया है, इसलिए इसका नाम त्रिप्रश्नाध्याय रखा गया है। इन तीनों प्रश्नों का उत्तर केवल शंकुयन्त्र से ही दिया गया है। सिद्धान्त-ग्रन्थों के यन्त्राध्याय में गोल, नाडीवलय, चक्र, चापतुर्य, शंकुफलक यष्टि, ध्रुवयष्टि, धी आदि यन्त्रों का वर्णन है, जिसमें से केवल शंकुयन्त्र के आधार पर ही त्रिप्रश्नाध्याय लिखा गया है। इस अध्याय में पलभा, अक्षज्या, लम्बज्या, उन्नतांशज्या, नतांशशज्या, छाया, छायाकर्ण, अग्रा, नतांश, नतकाल, ठीक-ठीक पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दिशा-बिन्दुओं का ज्ञान आदि केवल शंकुयन्त्र से ही किया गया है। आधुनिक युग में षष्ठ्यंश व दूरदर्शक आदि आधुनिक यन्त्रों से उपर्युक्त पदार्थों का सूक्ष्मता से ज्ञान कर लिया जाता है। प्राचीन काल में इतने सूक्ष्म यन्त्रों के अभाव में स्थूल मान में जो ज्ञान शंकु आदि यन्त्रों से करने की प्रक्रिया ज्योतिर्विद् विद्वानों ने अपनायी है, वह उनकी कुशलता की द्योतक

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। प्राचीन यन्त्रों द्वारा प्राप्त मान आधुनिक यन्त्रों की अपेक्षा स्थूल तो है, किन्तु अधिक आसन्न है। आधुनिक युग में इस स्थूल मान को लम्बन, किरणवक्रीभवन, अक्षविचलन, कालसमीकरण, आदि संस्कारों से संस्कृत कर अर्वाचीन यन्त्रों के द्वारा प्राप्त मान के समकक्ष बना लिया जाता है। ठोस पदार्थ का लम्बरूप दण्ड, जिसका अग्रिम भाग अधिक से अधिक नुकीला हो, उस दण्ड को समतल भूमि में गाड़ दिया जाता है। उसकी छाया से सब काम लिया जाता है। इसी को शंकुयन्त्र कहा गया है। समतल भूमि जानने हेतु सबसे सुगम रीति यह है कि तल के किनारे चारों ओर गीली मिट्टी की दीवाल बनाकर उसमें एक या डेढ़ अंगुल गहरा जल भरकर किसी सींक को खड़ी करने भिन्न-भिन्न स्थलों को देखने पर सब जगह जल की गहराई एक ही हो तो समझना चाहिए कि स्थल समतल है। आजकल समतल का ज्ञान **स्पिरिट लेबल** द्वारा सुगमता से कर लिया जाता है।

दिशा ज्ञान स्पष्ट मध्याह्नकाल में सूर्य प्रतिदिन याम्योत्तरवृत का लंघन करता है, जो स्थानीय ठीक दोपहर का समय होता है, अर्थात् धूपघड़ी के समयानुसार उस समय ठीक 12 बजते हैं। उदय के बाद सूर्य दक्षिण दिशा की ओर खिसकता हुआ ऊँचा उठता दृष्टिगोचर होता है। इस ऊँचाई का नाम ही उन्नतांश होता है। यह ऊँचाई चाप रूप में होती है, उसको सरल रेखा में परिवर्तित होने का नाम ही उन्नतांशज्या कहलाती है। शंकु द्वारा अवगत होने से उन्नतांशज्या का नाम ही शंकु के नाम से व्यवहृत होता चला आ रहा है। सूर्य दक्षिण दिशा की ओर उठते हुये जब ठीक दक्षिण दिग्बिन्दु का स्पर्श करता है, तब शंकु की छाया विपरीत दिशा में पड़ने के कारण ठीक उत्तरबिन्दु को स्पर्श करती है। स्पर्श करते समय शंकु की छाया के ठीक मध्य में सरल रेखा खींचने पर याम्योत्तर रेखा का ज्ञान हो जाता है। इस याम्योत्तर रेखा पर पूर्व-पश्चिम की ओर लम्ब रूप में अन्य रेखा खींचने पर उस रेखा के दोनों छोर पर पूर्व व पश्चिम दिशा का बिन्दु होगा। तात्पर्य यह है कि समतल भूमि में गड़े हुए शंकु की छाया से ठीक दोपहर (धूपघड़ी के समयानुसार) 12 बजे दक्षिणोत्तर दिशा का ज्ञान हो जाता है। उस दक्षिणोत्तर दिशासूचक रेखा पर विपरीत दिशा में लम्बरूपात्मक रेखा बनाने पर ठीक पूर्व-पश्चिम दिशा का ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार दिशाओं का सही ज्ञान शंकु की मध्याह्नकालीन छाया से सुगम्य हो जाता है।

गणितज्ञ प्राचीनकाल में मध्याह्न के पूर्व शंकु की छाया की वृत्त के जिस बिन्दु को स्पर्श करे तथा मध्याह्नोत्तर वृत के जिस बिन्दु को स्पर्श कर बाहर निकले, उन दोनों बिन्दुओं से तिमि (मत्स्य) बनाकर उसके ठीक मध्य भाग में बनाई गई रेखा द्वारा याम्योत्तर दिशा का ज्ञान करते थे; किन्तु यह प्रक्रिया कठिन पड़ती है, इसलिए शंकु की छाया के मध्य भाग में स्पष्ट मध्याह्नकाल में सरल रेखा करने से ही याम्योत्तर दिशा का ज्ञान सुगमता से हो जाता है। आधुनिक काल में दिशासूचक यन्त्र (कुतुबनुमा, कम्पास) के माध्यम से चाहे जिस समय याम्योत्तर रेखा ज्ञात कर ली जाती है। इस दिशासूचक यन्त्र द्वारा निर्धारित याम्योत्तर रेखा सही है या गलत, इसका निर्णय स्पष्ट मध्याह्नकालिक शंकु की छाया के मध्य भाग पर की गई सरल रेखा से हो जाता है। अर्थात्

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

दिशासूचक यन्त्र द्वारा की गई रेखा पर ही शंकु की छाया का मध्य भाग स्पष्ट मध्याह्नकाल में पड़ेगा। तब ही दिशासूचक यन्त्र द्वारा की गई रेखा शुद्ध मानी जाएगी, अन्यथा नहीं। इस प्रकार शंकुयन्त्र द्वारा दिशा का ज्ञान कर आगे देश का ज्ञान करने की प्रक्रिया प्रदर्शित की जाती है। स्पष्टान्तर का ज्ञान करना परमावश्यक है। यह स्पष्टान्तर स्थानीय मध्यमान्तर में वेलान्तर का संस्कार करने पर ज्ञात हो जाता है।

जैसे 25 फरवरी को हरिद्वार में स्पष्टान्तर का ज्ञान करने के लिए, 25 फरवरी के वेलान्तर 13 मिनट 11 सेकेण्ड जो ऋणात्मक है उसे हरिद्वार के मध्यान्तर 17 मि. 28 से. ऋणात्मक में 30 मि. 39 से. ऋणात्मक स्पष्टान्तर प्राप्त हुआ। धूपघड़ी (सूर्यघटिका) और भारतीय स्टैण्डर्ड समय बतलाने वाली घटिकाएँ, जो प्रायः प्रत्येक व्यक्ति के पास होती हैं, उन दोनों का अन्तर ही 25 फरवरी को हरिद्वार में स्पष्टान्तर का द्योतक है। ऋणात्मक स्पष्टान्तर को 12 घण्टे में जोड़ने पर 12 बजकर 30 मिनट 39 सेकेण्ड भारतीय स्टैण्डर्ड समय पर स्पष्ट मध्याह्नकाल हरिद्वार में होगा। रेडियो से मिली हुई घटिका से ही यह प्रक्रिया करनी चाहिए। यदि आपकी घड़ी में आगे-पीछे कुछ मिनटों का अन्तर होगा, तो शंकु की स्पष्ट मध्याह्नकाल छाया का मध्यभाग आपकी घड़ी कितनी आगे-पीछे है, यह निर्णय कर देगा। प्राचीनकाल में जब यान्त्रिक घड़ियों का अभाव था, तब स्पष्ट मध्याह्नकाल का पता कैसे लगता होगा? इस शंका की निवृत्ति हेतु प्राचीन परिपाटी का दिग्दर्शन करते हैं। प्रातःकाल की शंकु की छाया का माप सबसे बड़ा व स्पष्ट मध्याह्नकाल की छाया का माप सबसे छोटा होता है, यह सर्वविदित है। अतः गणितज्ञ स्पष्ट मध्याह्नकाल के कुछ समय पूर्व की शंकु की छाया की घटत को देखने लगते थे और जिस क्षण में छाया का घटना बन्द होकर बढ़ाव का रूख देखते थे, तब ही छाया के मध्य भाग में छाया के मध्य भाग पर रेखा कर लेते थे और रात्रि में ठीक उसी रेखा पर ध्रुवयष्टिका रखकर ध्रुव को देखकर निर्णय कर लेते थे कि मध्याह्न में खींची गई रेखा ठीक याम्योत्तर रेखा ही है। दूसरा प्रकार यह है कि याम्योत्तर रेखा पर लम्ब रूप भित्ति में पश्चिम की ओर भित्ति के दक्षिण की तरफ शंकु स्थिर करने पर शंकु की छाया 12 बजकर 33 मिनट के बाद दृष्टिगोचर होती है, वह समय स्पष्ट मध्याह्न से 2 मिनट अधिक होता है। इस प्रकार भी स्पष्ट मध्याह्न ज्ञात कर लिया जाता था। इस प्रकार स्थिर की गई याम्योत्तर रेखा पर नलिका द्वारा ध्रुवदर्शन हो जाए, उसी जगह नलिका स्थिर कर उस नलिका के छिद्र में एक ठोस पदार्थ के लम्बरूपात्मक दण्ड का प्रवेश करने पर वह दण्ड पृथ्वी पर जहाँ स्पर्श करे, उस जगह जितने अंश का कोण बने, वह ही उस स्थान का अक्षांश होता है। इस प्रकार नलिका द्वारा यदि उत्तरी ध्रुव दिखाई देवे, तो हम उत्तर गोलार्द्ध वाले भाग में हैं, यदि दक्षिण ध्रुव के दर्शन हों, तो दक्षिण गोलार्द्ध में हैं, यह निर्णय हो जाता है। यह ध्रुवोन्नति जो अक्षांश नाम से पुकारी जाती है, शंकुयन्त्र द्वारा सुगमता से ज्ञात कर ली जाती है। **'मेषादिगे सायनभागसूर्ये दिनार्धभा पलभा या भवेत्सा'** इस पद्यांश का सारांक्ष यह है कि सायन मेष राशि पर सूर्य का संक्रमण आधुनिक काल में 21 मार्च को तथा सायन तुला राशि पर 23 सितम्बर को होता है और इस दिन सर्वत्र

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

ही दिन और रात्रि का मान बराबर होता है, अर्थात् 30 घटी का दिनमान एवं 30 घटी का रात्रिमान होता है, इसी प्रकार 22 जून को सूर्य का संक्रमण सायन कर्क राशि पर होता है और उस दिन सर्वत्र दिनमान वर्ष में सबसे अधिक होता है एवं 22 दिसम्बर को सायन मकर राशि में सूर्य का संक्रमण होता है, उस दिन सर्वत्र दिनमान सबसे छोटा है। निरक्ष देश अर्थात् पृथ्वी पर शून्य अक्षांश के धरातल पर, जिसे भूमध्य रेखा भी कहते हैं, वहाँ 21 मार्च व 23 दिसम्बर को समतल भूमिस्थ शंकु की छाया स्पष्ट मध्याह्नकाल में शून्य होती है। साक्ष देशों में इस दिन 12 अंगुल शंकु की छाया स्पष्ट मध्याह्न में अंगुलादि में प्राप्त होगी उस माप का मान ही पलभा नाम से जाना जाता है। 12 अंगुल माप के शंकु की छाया उपर्युक्त दोनों दिन सर्वत्र साक्ष देशों में अपनी-अपनी जगह पलभा के तुल्य होती है। प्राचीन आचार्यों ने 12 अंगुल के शंकु की कल्पना कर इस दिन की सबसे छोटी छाया का कितनी बारीकी से माप लिया है, यह उनकी बुद्धि की कुशलता का द्योतक है। सुगमता के लिये शंकु का माप 12 इञ्च, 12 फुट, 12 गज भी लिया जा सकता है, जिससे 21 मार्च व 23 सितम्बर को शंकु की छाया का माप स्पष्ट मध्याह्नकाल में इञ्च, फुट व गज के माप में सुगमता से ज्ञात किया जा सकता है। उस माप का परिणामन 12 अंगुल के शंकु में कर लेने पर प्राचीन आचार्यों ने जो पलभा का मान ज्ञात किया है, वही प्राप्त हो जाएगा। 12 अंगुल शंकु=कोटि। पलभा=भुज। पलकर्ण=कर्ण। इस प्रकार सायन तुलादि (23 सितम्बर) को हरिद्वार में 12 अंगुल शंकु की छाया का माप स्पष्ट मध्याह्नकाल में 6 अंगुल 55 व्यंगुल प्राप्त होता है। इसको आधुनिक प्रणाली (दशमलव-भिन्न) में परिवर्तित करने पर 6.918889 होता है। आधुनिक यान्त्रिक घड़ी, अर्थात् भारतीय स्टैण्डर्ड समय बतलाने वाली घड़ी के हिसाब से 21 मार्च को 12 बजकर 24 मिनट 49 सेकेण्ड पर शंकु की छाया का माप लेने पर तथा 23 सितम्बर को 12 बजकर 10 मिनट 00 सेकेण्ड पर शंकु की छाया का माप लेने पर जो अंगुलादि माप प्राप्त होता है, उस माप का मान 6.918889 ही पलभा नाम से विख्यात है।

12 फुट लम्बे लट्ठे की छाया 6.919 होती है तो 1 फुट = 1 अंगुल के हिसाब से 12 अंगुल लम्बे लट्ठे की छाया 6.919 होती है तो 1 फुट बराबर 1 अंगुल के हिसाब से 12 अंगुल लम्बे लट्ठे की छाया 6.919 अंगुल होगी अतः अनुपात द्वारा 6.919 में पूर्णाङ्क 6 बराबर 6 अंगुल के हो गया। शेष .919 को 60 से गुणा करने पर 55.14 अंगुल, पूर्णाङ्क 55 व्यंगुल हुआ शेष . 14 को 60 से गुणा करने पर 8.4 प्रति व्यंगुल प्राप्त हुआ, इस प्रकार हरिद्वार में 21 मार्च व 23 सितम्बर को 12 फुट लम्बे लट्ठे की छाया 6 अंगुल 55 व्यंगुल 8 प्रति व्यंगुल प्राप्त हुई इस माप को ही पलभा नाम से जाना जाता है। उपर्युक्त प्रक्रिया द्वारा प्रत्येक अभीष्ट नगर की पलभा का ज्ञान किया जा सकता है।

12 अंगुल कोटि, पलभा भुज इन दोनों के वर्गयोग का मूल लेने पर पलकर्ण ज्ञात होता है। 12 को 12 से गुणा करने पर 144 कोटि वर्ग 6.919 को 6.919 से गुणा करने पर 47. 872561 इन दोनों का योग 191.872561 इसका मूल 13.85180714 अंगुल पल कर्ण का मान

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

हुआ। पलभा में पल कर्णा का भाग देने पर अक्षज्या ज्ञात होती है, उस अक्षज्या का चाप ही अभीष्ट स्थान का अक्षांश होता है इस प्रकार देश का ज्ञान कर लिया जाता है। ज्यौतिष शास्त्र में अक्षांश ही नगर का नाम होता है जैसे हरिद्वार नगर का अक्षांश 29 अंश 58 कला है, इसको ज्यौतिष की भाषा में 29 अंश 58 कला का मापदण्ड जिन नगरों का है उनको हरिद्वार कह सकते हैं किन्तु रेखांश भी 78 अंश 8 कला पूर्व होना चाहिये जो हरिद्वार का रेखांश है। अभिप्राय यह है कि हरिद्वार के अक्षांश व रेखांश के बराबर जिन नगरों का अक्षांश व रेखांश बराबर हो वह सब ज्यौतिष की भाषा में हरिद्वार ही है। हरिद्वार की पलभा 6.919 में हरिद्वार के पलकर्णा 13.85181 का भाग देने पर हरिद्वार की अक्षज्या .49901509 इसका चाप 29.96702559 अंश अर्थात् 29 अंश 58 कला हरिद्वार का अक्षांश ज्ञात हुआ इस तरह देश का ज्ञान हो गया। दिग् और देश का ज्ञान तो हो गया केवल काल का ज्ञान करना है।

हरिद्वार की पलभा 6.91889792 (6.919) अंगुलात्मक पलभा के वर्ग में 12 अंगुल शंकु के वर्ग का योगकर मूल लेने पर पलकर्णा 13.852 अंगुलात्मक प्राप्त होता है। पलभा में पलकर्णा का भाग देने पर हरिद्वार के अक्षांश 29.966666666 की ज्या. .499496082 बराबर अक्षज्या का ज्ञान होता है। 90 अंश में हरिद्वार के अक्षांश 29.96666666 को घटाने पर 60.033333333 लम्बांश प्राप्त होते हैं यह लम्बांश की ज्या लम्बज्या अथवा अक्षकोटिज्या नाम से जानी जाती है जिसका मान .866316145 होता है। उपर्युक्त अक्षज्या का मान प्राप्त हुआ है उसमें अक्षकोटिज्या का भाग देने पर हरिद्वार के अक्षांशों की अक्षस्पर्शज्या .576574827 का ज्ञान होता है एवं अक्षकोटिज्या में अक्षज्या का भाग देने पर कोटि स्पर्शज्या 1.734380261 की भी जानकारी हो जाती है। अक्षस्पर्शज्या को 12 से गुणा करने पर पूर्वोक्त पलभा (6.919) ज्ञात होती है। 12 में पलकर्णा 13.85175615 का भाग देने पर अक्षकोटिज्या .866316145 का मान प्राप्त होता है।

शंकुवर्ग में छाया का वर्ग जोड़कर मूल लेने पर छाया कर्ण ज्ञात होता है। शंकु को नतांशस्पर्शज्या से गुणा करने पर अंगुलात्मक छाया प्राप्त होती है। क्रान्तिज्या में अक्षकोटिज्या का भाग देने पर अग्रा की प्राप्ति होती है। पलभा में शंकु का भाग देने पर अक्षस्पर्शज्या उपलब्ध होती है। पलभा में अक्षस्पर्शज्या का भाग देने पर शंकु ज्ञात होता है। उपर्युक्त सम्पूर्ण पदार्थों का ज्ञान केवल शङ्कुयन्त्र से ही होता है और समतल भूमि में सुदृढ़ लम्बरूपात्मक लट्ठे को ऊर्ध्वाधर रूप में स्थापित करने से शंकु यन्त्र का निर्माण हो जाता है। इस प्रकार सरलता से बने शंकु यन्त्र का आधुनिक गणितज्ञ उपयोग नहीं कर पाते यह महान कष्टप्रद प्रतीत होता है।

न्यूयार्क में 6 अगस्त 2001 ई. को दिक्शोधन करना है अतः वेलान्तर इस दिन 5 मि. 52 मि. ऋणात्मक तथा न्यूयार्क का मध्यमान्तर 4 मिनट धनात्मक है दोनों के चिन्ह भिन्न होने से अन्तर करने पर 1 मि. 52 से. ऋणात्मक शेष रहा इसका विपरीत संस्कार न्यूयार्क स्टैण्डर्ड समय में जिसे वहाँ की यान्त्रिक घड़ियाँ बतलाती हैं उसमें जोड़ने पर 12 बजकर 1 मि. 52 से. होगा

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

उस समय न्यूयार्क की धूपघड़ी के 12 बजे का समय होगा। समतल भूमि में सुदृढ़ किये गये किसी धातु के लट्ठे की छाया के मध्य भाग में 12 बजकर 1 मि. 52 सेकेण्ड पर एक सरल रेखा खींचने पर याम्योत्तरा रेखा बन जाएगी जो दक्षिण व उत्तर दिशा के बिन्दुओं की परिचायक होगी, उस रेखा पर विपरीत दिशा में लम्ब रूपात्मक सरल रेखा खींचने पर पूर्व पश्चिम बिन्दुओं का सही ज्ञान हो जाएगा। उस रेखा पर स्थापित कम्पास भी यदि दक्षिणोत्तर दिशा का संकेत करे तो वह कम्पास सही माना जाएगा अन्यथा नहीं। न्यूयार्क का मध्यमान्तर सारणी द्वारा प्राप्त कर लेवें।

सिडनी में 6 अगस्त 2001 ई. को दिक्शोधन करना हो तो सिडनी का मध्यमान्तर धनात्मक 4 मिनट 48 सेकेण्ड सारणी से प्राप्त कर ऋणात्मक 5 मि. 52 से. वेलान्तर में उसे घटाने पर ऋणात्मक 1 मि. 4 से. का सिडनी के स्टैण्डर्ड समय सूचक यान्त्रिक घड़ी के 12 बजे के समय में विपरीत संस्कार कर देने पर 12 बजकर 1 मि. 4 से. पर लट्ठे की छाया के मध्य भाग में सरल रेखा करने पर याम्योत्तर दिशा का ज्ञान हो जायेगा, उस पर विपरीत दिशा में सरल रेखा करने पर पूर्व पश्चिम दिशा की जानकारी प्राप्त होगी।

सैगोन (दक्षिण वियतनाम) सैगोन का मध्यमान्तर 53 मि. 16 से. ऋणात्मक और 6 अगस्त 2001 ई. को 5 मि. 52 से. ऋणात्मक वेलान्तर है, दोनों का योग करने पर ऋणात्मक 59 मि. 8 से. स्पष्टान्तर को सैगोन की स्टैण्डर्ड समय सूचक यान्त्रिक घड़ी में 12 बजे के समय में विपरीत संस्कार करने पर 12 बजकर 59 मि. 8 से. पर लट्ठे की छाया के मध्यभाग में सरल रेखा खींचने पर याम्योत्तर दिशा का तथा उस रेखा के विपरीत दिशा में सरल रेखा करने पर पूर्व पश्चिम दिशा का ज्ञान हो जायेगा।

टोरोन्टो (कनाडा) टोरोन्टो का मध्यमान्तर ऋणात्मक 17 मि. 32 से. 6 अगस्त 2001 ई. को वेलान्तर ऋणात्मक 5 मि. 52 से. दोनों का योग ऋणात्मक 23 मि. 24 से. से टोरोन्टो के स्टैण्डर्ड समय के 12 बजे में जोड़ने पर 12 बजकर 23 मि. 24 से. पर लट्ठे की छाया के मध्य भाग में रेखा खींचने पर याम्योत्तर दिशा का ज्ञान हो जाएगा। कुछ नगरों में नियत समयावधि में स्टैण्डर्ड समय को 1 घण्टे बढ़ा दिया जाता है तब स्टैण्डर्ड समय सूचक घड़ी में 1 घण्टा कम करके उपरोक्त प्रक्रिया करनी चाहिए। राष्ट्र के स्तम्भ के और नगर के रेखांश का परस्पर अन्तर करने पर शेष को 4 से गुणा करने पर उस नगर का मध्यमान्तर ज्ञात हो जाता है यह प्रक्रिया टोक्यो के विवरण में समझा दी गई है।

टोक्यो (जापान) इस नगर का पूर्व रेखांश 139 : 33 है तथा स्तम्भ (स्थिर रेखांश)+9 घण्टे अर्थात् 135 अंश पूर्व है। (139 : 33)-(135 : 00) = 4° : 33' दोनों का अन्तर है इस अन्तर को 4 से गुणा करने पर (16 मि./132 से.) अर्थात् 18 मि. 12 सेकेण्ड टोक्यो का मध्यमान्तर धनात्मक होगा। 6 अगस्त 2001 ई. को वेलान्तर 5 मि. 52 से. ऋणात्मक है जो समस्त विश्व में 6 अगस्त को एक सा ही है, यानि इस दिन सर्वत्र वेलान्तर 5 मि. 52 से. ऋणात्मक

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

है। मध्यमान्तर और वेलान्तर दोनों के चिह्न भिन्न होने से अन्तर करने पर 12 मि. 20 से. स्पष्टान्तर धनात्मक टोक्यो में है। इस स्पष्टान्तर का टोक्यो में (समय सूचक घड़ियों) यान्त्रिक घड़ी के स्टैण्डर्ड समय के दिन के 12 बजे में विपरीत संस्कार अर्थात् 12 मि. 20 से. को घटाने पर 11 बजकर 47 मि. 40 से. टोक्यो के स्टैण्डर्ड समय पर टोक्यो की धूपघड़ी के 12 बजे का समय होगा।

चूंकि धूपघड़ी के ठीक 12 बजे सर्वत्र सूर्य आकाश में ठीक दक्षिण बिन्दु को स्पर्श करता है। तथा समतल भूमि में लम्बरूपात्मक लट्ठे की छाया उस समय ठीक उत्तर दिशा में गिरती है अतः उस समय लट्ठे की छाया के ठीक मध्य भाग में सरलरेखा ठीक उत्तर दिशा में होगी। उस रेखा को आगे बढ़ाने पर उत्तर दिशा तथा पीछे बढ़ाने पर ठीक दक्षिण दिशा होगी। इस रेखा पर लम्बरूप में दूसरी रेखा करने पर ठीक पूर्व व पश्चिम बिन्दु का ज्ञान हो जाएगा। इस प्रकार टोक्यो की स्टैण्डर्ड समय सूचक घड़ियों के 11 बजकर 47 मि. 40 से. पर भूमिस्थ दृढ़ लट्ठे की छाया के मध्यभाग में सरल रेखा करने पर दक्षिणोत्तर दिशा का ज्ञान होता है जो यज्ञ कर्म निमित्त बने मण्डप व यज्ञकुण्ड आदि बनाने में त्रुटि नहीं होने देता है। भवन निर्माण व ज्यौतिष वेधशाला निर्माण एवं यज्ञमण्डप निर्माण में उपर्युक्त प्रक्रिया द्वारा दिक्शोधन करके ही उनका निर्माण करना चाहिये।

काल-ज्ञान किसी भी दिन की मध्याह्नकालिक समतल भूमि में गड़े हुए शंकु की छाया को, जिसे भुज भी कहते हैं, त्रिज्या से गुणाकार मध्याह्न के छायाकर्ण से भाग देने पर नतांशज्या प्राप्त होती है। उसका धनु बनाने पर मध्याह्नकालिक नतांश ज्ञात हो जाता है। सूर्य के दक्षिण गोल में रहने पर यह अक्षांश और उस दिन की क्रान्ति के योगतुल्य होते हैं। सूर्य के उत्तर गोले में रहने पर नतांश का मान क्रान्ति और अक्षांश के अत्तर तुल्य होता है। नतांश ज्ञात होते ही क्रान्ति का ज्ञान तत्काल हो जाता है। अक्षांश का ज्ञान तो पूर्वोक्त रीति से कर लिया गया है, जो उस स्थान का प्रतिदिन का स्थिर मान है। नतांश की कोटिज्या को ही उन्नतांश की ज्या कहते हैं और नतांशज्या को ही उन्नतांश की कोटिज्या कहते हैं। 12 अंगुल शंकु को नतांश की भुजज्या (शंकु द्वारा प्राप्त छाया की ज्या) से गुणाकर नतांश की कोटिज्या से भाग देने पर लब्धि मध्याह्नकाल की छाया मान होता है। आधुनिक काल में 12×स्पर्शज्या=छाया। शंकु/नतांश कोज्या=छायाकर्ण, इस मान को अभीष्ट त्रिज्या से गुणने पर अभीष्ट त्रिज्या के छाया व छायाकर्ण सिद्ध हो जाते हैं। उपर्युक्त प्रक्रिया को उदाहरण से स्पष्ट किया जाता है। यदि किसी दिन सूर्य की उत्तरा क्रान्ति 15 अंश 25 कला है, तो उस दिन हरिद्वार में मध्याह्नकाल में छाया और छायाकर्ण ज्ञात करना है। हरिद्वार का अक्षांश 29 अंश 58 कला है, उत्तरा क्रान्ति 15 अंश 25 कला है। उत्तरा क्रान्ति का तात्पर्य सूर्य उत्तरगोल में है, अतः 2 या 3 मई एवं 10 या 11 अगस्त को उत्तरा क्रान्ति 15 अंश 25 कला होती है। अतः यहाँ अक्षांश और क्रान्ति का अन्तर ही नतांश का मान होगा।

$29^0 58' - 15^0 25' = 14^0 33'$ नतांशमान मध्याह्न में हुआ सूर्य भगवान् उदय क्षितिज में उदय होकर आकाश में दक्षिण दिशा की तरफ ऊँचे उठते हुए खिसकते रहते हैं। क्षितिज से जितने

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अंश-कलादि ऊपर उठते हैं, उस मान को उन्नतांश चाप कहते हैं। उस उन्नतांश चाप की ज्या ही शंकु के नाम से प्रख्यात हैं। ज्यों-ज्यों सूर्य आकाश में चढ़ते जायेंगे, त्यों-त्यों उन्नतांशज्या, अर्थात् शंकु का मान बढ़ता चला जाएगा, अर्थात् सूर्य की अंशात्मक ऊँचाई की ज्या, जो सरलरेखात्मक होती है, वही उन्नतांश की ज्या, शंकु को नतांशकोटिज्या नाम से भी कहा जाता है। उपर्युक्त चर्चा मध्याह्नकालिक शंकु की छाया द्वारा विविध पदार्थों की प्राप्ति के सम्बन्ध में थी। अब इष्टकालीन शंकु की छाया से समय के ज्ञान अर्थात् शंकु-छाया से अभीष्ट समय में अभीष्ट स्थान पर क्या बजा है? अभीष्ट समय में शंकु की छाया से समय ज्ञात हो जाता है, वह वर्णन किया जा चुका है। अब कालज्ञान का उदाहरण दिया जाता है। 1 मई 2001 ई. को क्रान्ति किसी समय 15 अंश 9 कला है, और हरिद्वार में समतल भूमिस्थ शंकु की छाया 14.33 है, शंकु का मान 12 अंगुल है। इसके लिये छायामान में शंकु भाग देने पर 1.1941667 नतांश स्पर्शज्या का मान मिला इसका चाप बनाने पर 50.057058 = 50 अंश 3 कला इसकी कोटिज्या .642025 प्राप्त हुई। नतांश कोटिज्या में अक्षस्पर्शज्या गुणित क्रान्ति स्पर्शज्या घटाने पर .642025-(.577350 ×.270757) =.642025-.156322=.485703 नत काल कोटिज्या प्राप्त हुई, इसका चाप 29.05854 अंश बना इसको नतकाल चाप कहते हैं। इस नतकाल चाप को 4 से गुणा करने पर 116.24 मिनट अर्थात् 1 घण्टा 56 मिनट 15 सेकेण्ड नतकाल को 12 बजे में घटाने पर 10 घण्टे 3 मि. 45 से. धूपघड़ी का समय ज्ञात हुआ, इसमें 1 मई को हरिद्वार का ऋणात्मक 14 मि॰ 32 से॰ स्पष्टान्तर विपरीत संस्कार करने पर (10।3।45)+(14।32)=10 बजकर 18 मिनट 17 सेकेण्ड भारतीय स्टैण्डर्ड समय ज्ञात हुआ। इस प्रकार लट्ठे की छाया से अभीष्ट समय पर काल ज्ञान हो जाता है।

जिस दिन सूर्य विषुवद्वृत पर होता है, उस दिन अर्थात् सायन मेष या तुला संक्रान्ति के दिन (प्राय: 21 मार्च व 23 सितम्बर) मध्याह्न में शंकु की छाया साक्ष देशों में जितनी अंगुलात्मक उपलब्ध होती है, उसको विषुवद् भा, पलभा कहते हैं। उस छाया के अग्र भाग पर सटाकर पूर्वापर रेखा बनती है, उसको विषुवद् भाग्रगा रेखा कहते हैं। (अभीष्ट काल के शंकु के छायाग्र से विषुवद्भाग्रगा रेखा तक जो अन्तर होता है, वही अग्रज्या कहलाती है। और उत्तर बिन्दु से सूर्यबिम्ब तक दिगंश होते हैं) नतांशस्पर्शज्या× 12=छाया का मान होता है तथा शंकु (शंकु=छाया=उन्नतांशज्या) में नतांश की ज्या का भाग देने पर छायाकर्ण ज्ञात होता है। क्रान्तिज्या/अक्षांशकोज्या× इष्टछायाकर्ण=कर्णवृतीय अग्रा का मान होता है। कर्णवृत्तीय अग्रा में पलभा का योग व वियोग करने पर शंकु का भुजमान बनता है। यदि क्रान्ति दक्षिणा होगी, तब कर्णवृत्तीयाग्रा में पलभा का योग करने पर तथा उत्तरा क्रान्ति में वियोग करने पर भुजमान सिद्ध होता है। इसी प्रकार उपर्युक्त अनुपात से कर्णवृत्तीय अग्रा का मान ज्ञात कर उसमें गोलभेद से पलभा का योग-वियोग करने पर भुजमान अवगत हो जाता है। अतएव ज्योतिर्विद् आचार्यों ने शंकुयन्त्र को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया है।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

वास्तुशास्त्र एवं मुहूर्त्त

प० रामदेव झा

वास्तुशास्त्र की दो परम्पराएँ हमें ज्ञात हैं। इनमें उत्तरा पथप्रवर्तक विश्वकर्मा तथा दक्षिणापथ प्रवर्तक मय दानव हैं ऐसा आचार्यों का कथन है। प्राचीनकाल से वास्तुविद्या का उत्तरोत्तर पल्लवन होता चला आ रहा है। पाश्चात्य वैज्ञानिक भी इस विद्या को विज्ञान के आलोक में ही देखते हैं। वास्तु शब्द का अर्थ है निवास करने योग्य भूमि या भवन, गृह, गेह-वेश्म-सदम, निकेतन, निशान्त, वस्त्य, सदन-अगार, मन्दिर-निलय-आलय, वास, शाला-सभा आदि। सामान्यतया वास्तुनिर्माण के सिद्धान्तों का प्रतिपादक शास्त्र वास्तुशास्त्र है। इस शास्त्र के आधार पर वास्तु निर्माण की परम्परा प्राचीनकाल में ही विकसित हो चुकी थी। इसकी पुष्टि मत्स्य पुराण के निम्नलिखित वचनों से होती है। यथा

भृगुरत्रिर्वशिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा।
नारदो नग्नजिच्चैव विशालाक्षः पुरन्दरः।।

ब्रह्मा कुमारो नन्दीशः शौनको गर्ग एव च।
वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्रबृहस्पतीः।
अष्टादशैते विख्याताः शिल्पशास्त्रोपदेशकाः।।[1]

वास्तुशास्त्र के इन 18 आचार्यों में "विश्वकर्मा" तथा "मय" का नाम सर्वविदित है जैसा कि ऊपर मैंने चर्चा की है। 'विश्वकर्मा' देवता और मानवों के तथा 'मय' असुरों और दानवों के स्थपति (Chief Architect) माने जाते हैं। वास्तुशास्त्र के विकासक्रम में वास्तुविदों द्वारा अनेक प्रकार की शैलियों यथा नागर, द्रविड़, बेसर, भूमिज आदि का अनुकरण किया जाता है। दोनों परम्पराएँ (अर्थात् विश्वकर्मा और मय की) निकटतर होती गई। अतः अब विश्वकर्मा परम्परा नागर शैली तथा मय परम्परा द्रविडशैली के रूप में परिवर्तित मानी जाती हैं। आचार्य बराहमिहिर की "बृहत्संहिता" और भोज का "समराङ्गणसूत्रधार" विश्वकर्मापरम्परा का तथा "मयमतम्" और "मानसार" मय परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

यहाँ विशेषरुप से उल्लेखनीय है कि प्राचीनकाल में वास्तुशास्त्र का उपयोग राजभवनों एवं राजा द्वारा बसाए गए नगरों तथा देवमन्दिर आदि निर्माण के लिए ही होता था। सामान्य जन के लिए

1. मत्स्यपुराण 251/2-4

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

इसकी उपयोगिता किस प्रकार संभव हो सकती थी कहना कठिन है। क्योंकि वास्तुशास्त्रीय ज्ञान की उपयोगविधियाँ और प्रविधियाँ जिस प्रकार इस शास्त्र में वर्णित हैं ये सब के लिये आज के इस विकसित और विकासशील युग में भी संभव नहीं।

हमारे प्राचीन आचार्यों ने सिद्धान्त-होरा-संहिता के रूप में जो ज्योतिषशास्त्ररूपी दृष्टि दी है वह नित्य वर्तमान है। हम जानते हैं कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सभ्यता की विकास के आदिकाल में जैसी भी स्थिति रही हो हम इसकी चर्चा नहीं करने जा रहे हैं किन्तु इतना तो सत्य है कि वेद निघण्टु आदि में गृह शब्द के अनेक पर्यायवाची शब्द प्राप्त होते हैं। जैसे गयः, कृदरः, गतः, हर्म्यम्, अस्तम्, पस्त्यम्, दुरोणे, नलिम्, दुर्याः, स्वसराणि, अमा, दमे, कृत्तिः, योनिः, सद्म, शरणम्, वरूथम्, छर्दिः, छदिः, छाया, शर्म, अज्म, इति 22 नाम गृह के हैं।

वास्तु विचार में सर्वप्रथम समुचित काल ज्ञान आवश्यक है। पहले हमें काल क्या है इस सम्बन्ध में थोड़ी चर्चा कर लेनी आवश्यक है। अखिल विश्व में निखिलकार्य काल के अधीन है। कालभेद से ही फलभेद हुआ करता है। सूर्य और चन्द्रमा के भगोल संचार से ही काल भेद होता है। यदि सूर्य स्थिर होता तो काल में भेद नहीं होता। अतः "चक्रवत् परिवर्तेत कालः सूर्यवशात् सदा" सूर्य और चन्द्र की स्थिति से ही वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि आदि काल के अवयव प्रत्यक्ष होते हैं। आकाश में स्थित अन्य ग्रहों एवं नक्षत्रों की शुभ-अशुभ रश्मियों के सम्पर्क से, शीत, उष्ण, दिन-रात्रि, सुभिक्ष-दुर्भिक्ष, जन्तुओं में स्वास्थ्य अस्वास्थ्य फल होते रहते हैं।

कालपुरुष के कला-जाल में मृत्युलोकवासी मनुष्य कैसी-कैसी दशा प्राप्त करते हैं यह प्रत्यक्ष है। यह कभी तो राजा को रंक तथा रंक को राजा बनाता है। एक का सम्मान तो दूसरे का अपमान कराता है। इसके अनन्त उदर में क्या-क्या न उत्पन्न हुए और उसी में विलीन हो गये। कभी उपकार-अपकार हो जाते तो कभी अपकार ही उपकार मान लिए जाते हैं। एक ओर किसी का जन्म होता है, दूसरी ओर किसी का मरण। लोग निन्दा करें या प्रशंसा किन्तु काल का कार्य चलता रहता है। काल की घटना निश्चय ही बड़ी आश्चर्यजनक है। इस प्रसंग में भर्तृहरि का कथन कितना सत्य है

यत्रानेके क्वचिदपि गृहे तत्र तिष्ठत्यथैको
यत्राप्येकस्तदनु बहवस्तत्र नैकोऽपि।
इत्थं नेयौ रजनिदिवसौ दोलयन् द्वाविवाक्षौ
कालः कल्यां भुवनफलके क्रीडति प्राणिशारैः।।[1]

अर्थात् कहीं अनेक गृह हैं किन्तु उनमें कोई एक रहता है। जहाँ केवल एक है वहाँ रहने वाले अनेक हैं। अन्ततः एक भी नहीं रह पाता। और इस प्रकार विविध कलाओं से सम्पन्न कालपुरुष अपनी सहचरी काली के साथ रातदिन क्रीड़रत रहता है। परमात्मा की इच्छा और

1. वैराग्यशतक 42

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

क्रियाशक्ति का सम्मिलित रूप ही काल है ऐसा कहा जाता है। जो स्वयं प्रेरण, क्षेप, गति और संस्थान स्वरूप है। अर्थात् जो स्वयं गतिशील रहे, सबको प्रेरित करता रहे, चलाता रहे, किसी को स्थिर नहीं रहने दे उसे काल कहते हैं।

आश्रमधर्म पालन और पुरुषार्थ साधन के लिए गृह की आवश्यकता

हमें अपने जीवन को सार्थक करने के लिए आश्रम धर्म के अनुसार स्वधर्म पालन करने में अपने को यावज्जीवन लगाना है। तभी धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष रूपी चतुर्विध पुरुषार्थ साधन संभव है, किन्तु स्वधर्म पालन करने में अपने चित्त को अर्पित नहीं कर पाते। लगता है कि ऐसा भी काल के प्रभाव के कारण ही होता है। क्या स्वधर्म पालन के बिना सुख की संभावना हो सकती है? कथमपि नहीं। प्राणिमात्र के हृदय में यही लालसा बनी रहती है कि किस प्रकार निरन्तर सुख की प्राप्ति होती रहे और दुःख का रञ्चमात्र भी स्पर्श न हो, परन्तु लाख प्रयत्न करने पर भी वह वांछित सुख नहीं मिल पाता है। अस्तु, इतना अवश्य हमें जान और मान लेना चाहिए कि धर्माचरण के बिना सुखोपलब्धि का दूसरा उपाय ही नहीं है। धर्माचरण ही परमपुरुषार्थ है यही वास्तविकता है। कहा भी गया है **"धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः"**। अर्थात् धर्म के नाश होने पर व्यक्ति का नाश और धर्म रक्षा से उसकी रक्षा होती है जिससे इस लोक में सभी प्रकार से अभ्युदय तथा परलोक की सिद्धि हो उसे धर्म कहते हैं। मनु महाराज ने कहा है

इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं धृतिः क्षमा।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः।।[1]

अर्थात् यज्ञ, स्वाध्याय, दान, तपस्या, सत्य, धैर्य, क्षमा, अलोभ ये आठ प्रकार के धर्म हैं। इनका जीवन में चरितार्थ करना परमधर्म है। इनका पालन सभी आश्रमों का मूल गृहस्थाश्रम में ही संभव है। इसलिए गृह की अनिवार्य आवश्यकता बताई गई है।

कार्य विहितकाल में ही सफल होता है

अनादि और अनन्त काल के क्षण-मुहूर्त्त-दिनरात-सप्ताह-पक्ष-मास-ऋतु-अयन-वर्ष-युग-मन्वन्तर-कल्प-प्रलय तक के कालखण्डों में कब-कब क्या-क्या कर्त्तव्य कर्म के परिणाम शुभ-अशुभ रूप में हमें प्राप्त होंगे इन सबकी चर्चा श्रुतियों और स्मृतियों के आधार पर हम जानने का प्रयास करते हैं। इसमें हमें सफलताएँ और असफलताएँ भी मिलती हैं। सफलताएँ तो सही गणना कौशल से असफलताएँ अकुशलता के कारण मिलती हैं। प्रस्तुत प्रसंग में वास्तुशास्त्र के अनुसार किन विहित कालखण्डों में किन मास-तिथि-वार-नक्षत्र-योग-करण-राशि-लग्नों में किस दशा में वास निर्माण उचित है इस पर विचार करने का प्रयत्न किया गया है क्योंकि इस संसार में यह प्रयास है कि वर्षा ऋतु में बोए गए बीज निश्चित रूप से यथा समय अन्न बन कर अथवा

1. मनुस्मृति

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

पेड़-पौधों के रूप में आकार ग्रहण कर अपने-अपने गुण धर्म के अनुसार पुष्प-फल देते हैं ठीक उसी तरह ग्रीष्म ऋतु में बीजों के परिणाम नहीं दिखते। इसी तरह अनुकूल काल में किए गए कर्म के अपेक्षित फल पैदा हो सकते हैं, अन्यथा नहीं।

वास्तुनिर्माण में शुभ मुहूर्त्त की अनिवार्यता

मुहूर्त्त शब्द का पारिभाषिक अर्थ तो अहोरात्र का 15वाँ भाग है किन्तु इसका विशेष भाव यह है कि मुहूर्त उस कालखण्ड को कहते हैं जिसमें कोई कार्यविशेष किया जाए तो वह शुभ फलप्रद होता है। इसके लिए हमारे ऋषियों ने प्राचीन आचार्यों ने प्रकृति की विशाल प्रयोगशालाओं में अतीन्द्रियज्ञान सम्पन्न होकर प्रयोगशील रहे और परिणाम हमें बताए गए। अतएव ज्योतिषशास्त्रोपदेश के लिए संहिता तथा मुहूर्त ग्रन्थों में सर्वत्र वसिष्ठ-गर्ग-मनु-अंगिरा-कश्यप-नारद आदि ज्योतिषशास्त्र के प्रवर्तकों के प्रामाणिक वचनों से हमें काल की शुभाशुभता का ज्ञान प्राप्त होता है। महर्षि वशिष्ठ के वचन के अनुसार पूर्व में ब्रह्मा के द्वारा जिस वास्तुशास्त्र का ज्ञान उन्हें प्राप्त है तदनुसार-ग्राम-घर-नगर आदि निर्माण की प्रक्रिया के सम्बन्ध में कहा जाएगा।

गृह निर्माण की आवश्यकता क्यों है? इस सम्बन्ध में भविष्य पुराण का वचन हमें बताता है कि गृहस्थ की सभी क्रियाएँ गृह के बिना पूरी नहीं होतीं। जिसके कारण गृहारंभ और गृहप्रवेश के विहित मुहूर्त अर्थात् शुभ समय कहता हूँ। यहाँ कार्य-कारण ज्ञापक विचारों की पुष्टि के लिए वसिष्ठ का निम्नवचन उल्लेखनीय हैं। यथा

वास्तुज्ञानं प्रवक्ष्यामि तदुक्तं ब्रह्मणा पुरा।
ग्राम सद्मपुरादीनां निर्माणं वक्ष्यतेऽधुना।।[1]

इसी तरह भविष्य पुराण का वचन है

गृहस्थस्य क्रियाः सर्वाः न सिद्धयन्ति गृहं बिना।
यतः तस्माद् गृहारम्भ प्रवेशसमयौ ब्रुवे।।[2]

गृहारम्भ के लिए विहित मास

आचार्यों का कथन है कि (1) वैशाख, (2) सौर आषाढ़ (पशुबर्ज्ज) (3) श्रावण (4) कार्तिक (5) मार्गशीर्ष (6) फाल्गुन इन मासों में गृहारम्भ सम्बन्धी कार्य करना चाहिए तथा इन मासों के शुक्लपक्ष की प्रधानता है। कृष्णपक्ष की पञ्चमी तिथि तक ग्राह्य है। इससे काल बल प्राप्त होता है।

---

1. मुहूर्त्त चिन्तामणि प्र. 12, पीयूषधाराटीका पृ. 548
2. वहीं

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

विहित नक्षत्र वार-मास-लग्न

(1) अश्विनी (2) रोहिणी (3) उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ तथा उत्तरभाद्रपद (4) मृगशिरा (5) स्वाती (6) श्रवण (7) घनिष्ठा (8) शतभिषा (9) पुनर्वसु (10) पुष्य (11) हस्त (12) चित्रा (13) अनुराधा (14) मूल, इन नक्षत्रों में मंगल रवि वर्जितवारों में, वृष-कुंभ, सिंह-मीन-कन्या-मिथुन लग्नों में, श्रावण-आषाढ़-वैशाख-कार्तिक-फाल्गुन और मतान्तर से मार्गशीर्ष भी गृहनिर्माण के लिए शुभ हैं। तृण-काष्ठ के घर बनाने में घनिष्ठा, शतभिषा और रेवती वर्जित नक्षत्र माने गए हैं। यथा

रोहिण्यां श्रवणात्रयेऽदिति युगे हस्तत्रये मूलके,
रेवत्युत्तर फाल्गुनीन्दुतुरगे चित्रोत्तराषाढयोः।

शस्तं वास्तु कुजार्कवर्जितदिने गोकुंभसिंहेझषे,
कन्यायां मिथुने नमः शुचिसहोरार्धोर्जके फाल्गुने।[1]

गृहारंभ तथा गृह प्रवेश में सप्त सकार का महत्व

शनिवार, स्वातिनक्षत्र, सिंह लग्न, शुक्लपक्ष, सप्तमीतिथि, शुभ योग और श्रावण मास ये सात संयुक्त होने से सप्तयोग होता है। इनमें वास्तुनिर्माण एवं नूतन निर्मितवास में प्रवेशकार्य, धन-सम्पत्ति, विद्या-बुद्धि, विविध वाहन सहित गृहपति तथा उसका पुत्र भी जीवन भर प्रसन्नता का अनुभव करता है। यथा

शनौ स्वाती सिंह लग्ने शुक्लपक्षे च सप्तमी।
शुभयोगे श्रावणे च सकारः सप्तकीर्तितः।।
सप्तयोगे भवेद् वास्तु तत्पुत्रो धनिको भवेत्।
गजाश्वधनसम्पत्तिर्मेधा तिष्ठति सर्वदा।।[2]

गृहारंभ से पहले शुद्ध समय का विचार करना नितान्त आवश्यक है। पूर्वोक्त विहितमासों में गुरु-शुक्र का उदित होना परमावश्यक है। शुद्ध वृषवास्तु चक्र रहने पर तथा पृथ्वी शयन नक्षत्र रहित नक्षत्रों के रहने पर गृहारंभ करना चाहिए। गृहारंभ के लिए जिन नक्षत्रों को शुभ माना गया है, वह नक्षत्र गृहारम्भ के दिन यदि सूर्य नक्षत्र से सात नक्षत्रों तक में आता है तो अशुभ माना जाता है। यदि वह सात नक्षत्रों से आगे 18वें नक्षत्र तक में आता है तो शुभ माना गया है। इससे आगे 27वें नक्षत्र तक अशुभ माना गया है।

---

1. ज्योतिषचन्द्रिका मुहूर्तप्रकरण
2. वास्तुप्रदीप उद्धृत वृहद्दैज्ञरंजन 86/186-187

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

इसी प्रकार पृथ्वी शयन नक्षत्र के सम्बन्ध में विचार किया गया है। जैसे सूर्य नक्षत्र से 5, 7, 9, 12, 19, 26वाँ नक्षत्र यदि गृहारंभ दिन में आ पड़े और यदि वह शुभ नक्षत्र भी हो उसमें भूमि शयन नक्षत्र होने के कारण गृह बनाना और तालाब, कुआँ खोदना अच्छा नहीं है।

गृह प्रवेश

आश्लेषा, विशाखा, मघा, पूर्वात्रय, भरणी और रिक्ता (चतुर्थी-नवमी-चतुर्दशी) अमावस्या तिथियाँ रवि-मंगलवार इन सबको छोड़कर, वृष-सिंह, वृश्चिक, कुंभ इन लग्नों में तथा शुक्ल पक्ष में, गृहारंभ के लिए जो महीने कहे गए हैं, उन महीनों में गृह प्रवेश शुभ होता है। मिथुन-कन्या-धनु और मीन ये सभी लग्न मध्यम माने गए हैं। पूर्वमुख गृह के प्रवेश के समय जो लग्न हो, उससे जो अष्टम स्थान पड़े उससे पाँचवें स्थान में सूर्य के रहने से वाम रवि होता है। इसी क्रम से चारों दिशाओं में विचार करना चाहिए। यह गृहप्रवेश में शुभदायक होता है।

लग्न शुद्धि विचार

गृह प्रवेश से 9, 5 1, 4, 7, 10 अर्थात् त्रिकोण और केन्द्र में सभी शुभ ग्रह रहें तथा पाप ग्रह सब 3, 6, 11 इन स्थानों में रहें और स्थिर लग्न हो, चन्द्रबल श्रेष्ठ रहे, तब गृह प्रवेश करना चाहिए। गृह प्रवेश के पहले वास्तुपूजन, भूतबलि आदि करके वेद ध्वनि, शंखध्वनि करते हुए जलपूर्ण कलश आगे करके गृह प्रवेश शुभ दायक होता है।

सर्वारम्भ लग्न शुद्धि

जन्म राशि से उपचय 3, 6, 10, 11 राशि लग्न हो और लग्न से 12वाँ तथा 8वाँ स्थान शुद्ध हो अर्थात् ग्रहवर्जित हो, चन्द्रमा तीसरे, छठे, दसवें और ग्यारहवें इनमें से किसी स्थान में हो तब सब काम आरम्भ करना चाहिए।

व्याष्टशुद्धोपचये लग्नगे शुभदृग्युते।
चन्द्रे त्रिषड्दशायस्थे सर्वारम्भः प्रसिद्धयति।।[1]

शुभ लग्न में और शुभ राशि के नवमांश में तथा पाप ग्रह 3, 6, 11 में रहें, शुभ ग्रह केन्द्र 1, 4, 7, 10 और त्रिकोण 5, 9 में रहें तब सब कार्यारम्भ शुभ होते हैं।

गृहारम्भ के लिए कुछ विशेष योग

यदि गुरु उत्तरात्रय, पुष्य, मृगशीर्ष, श्रवण, आश्लेषा, पूर्वाषाढ़ा इनमें से किसी एक नक्षत्र में हो और गुरुवार हो, उस दिन गृहपति द्वारा किया गया गृहारंभ कार्य पुत्र और राज्य प्रदान करता है। मुहूर्त चिन्तामणि वास्तु प्रकरण के 26वें श्लोक से यह तथ्य सिद्ध होता है। जहाँ पीयूषधारा टीका में महर्षि वसिष्ठ के वचन द्वारा उपर्युक्त कथन की पुष्टि की गई है। यथा

1. मुहूर्त्तचिन्तामणि 2/44

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

इज्योत्तरात्रयाहीन्दुविष्णुधातृजलोडुषु ।
गुरुणा सहितेष्वेषु कृतं गेहं श्रिया युतम्।।[1]

गुरुयुत नक्षत्र एवं गुरुवार की विशेषता के साथ इस योग में गृहारंभ, राज्य लक्ष्मी प्राप्त कारक है। इसी तरह विशाखा, अश्विनी, चित्रा, धनिष्ठा, शतभिषा, आर्द्रा, इन नक्षत्रों में से किसी में शुक्र हो और शुक्रवार हो तब यदि विहित लग्न में गृहारंभ किया जाए तो धनधान्य सुवर्ण आदि लाभ होते हैं। जैसा कि वसिष्ठ का कथन है

द्विदैवत्वाराष्ट्रवारेंश रुद्रादित्य वसूडुषु।
शुक्रेण सहितेष्वेषु कृतं धान्यं प्रदं गृहम्।।[2]

इसका समर्थन नारद ने भी किया है

अश्विनी शततारासु विशाखाभाद्रचित्रके।
धनिष्ठादिति संयुक्ते तथा वै शुक्रवासरे।।

गृहं नाटकशालाख्यं देवागारं कृतं शुभम्।
तद्वेश्मनि प्रजातस्तु कुवेरसदृशो भवेत्।।[3]

यद्यपि उपर्युक्त वसिष्ठ-नारद द्वारा संपुष्ट मुहूर्तचिन्तामणि का वचन अपने ही इससे पूर्व कथित वचन से मेल नहीं खाता है। किन्तु इन आचार्यों के वचन प्रमाण हैं, इसलिए विशेष महत्वपूर्ण मान लिए गए हैं। जैसा कि इस प्रसंग में पीयूषधारा टीकाकार का विचार है।

वर्तमान नागरिक जीवन तथा ग्रामीण जन सामान्यों का जीवन अधिक क्या सामान्य रूप से भी सुखदायक नहीं है। यदि गृह निर्माण की बात हो तो अपेक्षित भूमि का चुनाव, विहित दिशा, वास्तुशास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार निर्माण कार्य सबके लिए आसान नहीं है। तथापि यथा संभव प्रयत्नपूर्वक विहित मास-नक्षत्र-वार-लग्न-दिशा का विचार अवश्य करना चाहिए।

शिलान्यास

भोज का कथन है देश का राजा का जन्म जिस लग्न में हुआ हो उसके लग्नेश की जो दिशा हो उस दिशा में वास्तु का आरंभ करे। यथा

यल्लग्नं जायते राजा तस्य लग्नस्य यः पतिः।
या दिक् तस्य नृपः तस्यां वास्त्वारंभं समाचरेत्।।

---

1. मुहूर्तचिन्तामणि 12/26 पीयूषधारा टीका
2. मुहूर्तचिन्तामणि 12/26 पीयूषधारा टीका
3. वहीं

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

हाँ, इतना अवश्य ध्यान रखें कि चुनी गई वास्तुभूमि उषर-बालुका नमीयुक्त, तिकोनी, वर्तुल, लम्बी, यवाकार, चौड़ी मुखवाली, डमरू आकार वाली, छिन्न-भिन्न, तिराहा-चौराहा आदि न हो। किन्तु यदि वह चतुरस्त्र (चौकोर) तुल्य लम्बाई-चौड़ाई वाली, उपर्युक्त ऊषरादि दोषमुक्त भूमि हो तो वह शुभ मानी गई है।

बृहत्संहिता के वास्तुविद्याध्याय के अनुसार भटटोत्पलटीका के आधार पर शिलान्यास सम्बन्धी विचार इस प्रकार किया जा सकता है। यथा

दक्षिणपूर्वे कोणे कृत्वा पूजां शिलां न्यसेत् प्रथमम्।
शेषाः प्रदक्षिणेन स्तम्भाश्चैवं समुत्थाप्याः।।

छत्रस्रगम्बरयुतः कृतधूपविलेपनः समुत्थाप्यः।
स्तम्भस्तथैव कार्यो द्वारोच्छायः प्रयत्नेन।।[1]

इसका अर्थ है परीक्षित वास्तुभूमि पर विहित-मास-तिथि-वार नक्षत्र राशि-लग्नादि विचार कर जो शुभ मुहूर्त स्थिर किया गया है। तद्नुसार सर्वप्रथम पूर्व दक्षिण कोण में अर्थात् अग्निकोण में पुष्पमाला सुगन्धित द्रव्यादि युक्त और पूजित शिला का स्थापन करें। तत्पश्चात् प्रदक्षिण क्रम से शिलाओं का स्थापन करें। जैसे अग्निकोण के बाद दक्षिण में, इसके बाद दक्षिण-पश्चिम (नैर्ऋत्य) कोण में फिर पश्चिम में तदन्तर पश्चिम उत्तर के वायव्यकोण में इसके बाद उत्तर दिशा में तदन्तर उत्तर-पूर्व के कोण में क्रमशः शिलाओं का न्यास करें। किसी आचार्य के मत से पहले उत्तर-पूर्व ईशान कोण में शिलास्थापन करें। पश्चात् पूर्व में फिर पूर्व-दक्षिण के आग्नेयकोण में फिर दक्षिण में इसके अनन्तर दक्षिण-पश्चिम के नैर्ऋत्यकोण में, पश्चात् पश्चिम में इसके बाद पश्चिम-उत्तर कोण वायव्य में तत्पश्चात् उत्तर और उत्तरपूर्व के कोण ईशान में पूजित शिलाओं का न्यास अर्थात् स्थापन करें। इसी प्रकार स्तम्भों की स्थापना भी प्रदक्षिण क्रम से की जानी चाहिए। सभी शिलाओं को विधिवत् पूजन करने माला-चन्दन वस्त्रधूपदीपनैवेद्यादि अर्पित करते हुए उपर्युक्त प्रकार से आग्नेयकोण से आरम्भ कर अथवा ईशान कोण से आरम्भ कर प्रदक्षिण क्रम से शिलान्यास करने का विधान है। शिलान्यास का कार्य वास्तु विद्या विधानज्ञ द्वारा ही करना चाहिए। ईशान की अपेक्षा आग्नेयकोण ही अधिक प्रामाणिक है अतः अग्निकोण में ही शिलान्यास करना चाहिए।

---

1. वृहत्संहिता 53/110-111

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

पिण्डानयन एवं आयादि विचार

प्रो॰ उमाशङ्कर शुक्ल

वास्तुविद्या बहुत प्राचीन विद्या है। विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ 'ऋग्वेद' में भी इसका उल्लेख मिलता है। इस विद्या के अधिकांश ग्रन्थ लुप्त हो चुके हैं, जो मिलते है, उनमें अनेक स्थलों पर परस्पर मतभेद है। वास्तु-विद्या के गृह-वास्तु, प्रासाद-वास्तु, नगर-वास्तु, पुर-वास्तु, दुर्ग-वास्तु आदि अनेक भेद हैं। प्रस्तुत लेख में गृह-वास्तु के निर्धारित अंश पर विचार किया जा सकता है। मुख्य रूप से पिण्डानयन की आवश्यकता और आयादि विचार पर हम लोग अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे। घर बनाते समय ग्राम (स्थान) की अनुकूलता; दिशा का विचार, भूमि का विचार करने के पश्चात् पिण्ड, आय, वार, नक्षत्र आदि का विचार शास्त्रानुसार किया जाता है

ग्रामादेरनुकूलत्वं दिशो भूतग्रहस्य च
गृहधिष्ण्यादिकं शुद्धं वीक्ष्यायव्ययमंशकान्।।
सुगेहं रचयेद् धीमान् वास्तुशास्त्रानुसारतः।।[1]

दशा वर्गविचार पिण्ड साधन से पहले दशा एवं वर्ग के अनुसार 'गृहेश' (गृहकर्ता) का विचार किया जाता है।

गजशरर्तुयुगाश्वमहीगुणा द्विसहिता मधवादिदिशि क्रमात्।
गृपतेरभिधापुरदिङ्मिता वसुहृता भवनस्य दशाभवेत्।।[2]

दिशा	ध्रुवांक	वर्गाः
पूर्व	8 (गज)	अ
अग्निकोण	5 (शर)	क
दक्षिण	6 (ऋतु)	च
नैर्ऋत्य	4 (युग)	ट
पश्चिम	7 (अश्व)	त
वायव्य	1 (मही)	प

1. वास्तुरत्नाकर 1/11
2. वहीं 1/41

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

उत्तर	3 (गुण)	य
ईशान	2 (द्वि)	श

गृहपति, ग्राम और दिशा तीनों के स्वरीकों को जोड़कर 9 का भाग देने पर जो शेष बचे उसमें से 1, 2, 3, 4..... के क्रम से सूर्यादिग्रहों (आ.चं.कु.रा.जी.,श.बु.के.शु) की दशा होती हैं। शुभ ग्रहों की (च.बु.बृ.शु.) दशा ही ग्राह्यय है। दशा क्रम में विंशोन्तरी दशा ही मान्य है। गृह निर्माण के लिये दिग्दशा समीप के कूप, स्थायी वोरिंग, अपने घर, दुकान, तालाब और बगीचे से ली जाती है।

जिस प्रकार लड़के-लड़की के विवाह में दोनों के नक्षत्रों से "गुण" का विचार किया जाता है, उसी प्रकार गृह-वास्तु में गृहेश नक्षत्र तथा गृहनक्षत्र से मेपालापक का विचार होता है। विवाह में लड़के-लड़की की 'नाडी' भिन्न होती है, परन्तु गृहनिर्माण के मेलापक में दोनों की नाडी एक ही होती है। **'सर्वं विवाहवत् ज्ञेयं विपरीता तु नाडिका'**।[1]

गृह में नाडीविचार

नाडी	नक्षत्र								
आदि	अश्विनी	आर्द्रा	पुनर्वसु	उ०फा०	हस्त	ज्येष्ठा	मूल	शत.	पू.भा.
मध्य	भरणी	मृगाशिरा	पुष्प	पू.फा.	चित्रा	अनुरा.	पू.षा.	धनि.	उ.भा.
अन्त्य	कृत्तिका	रोहिणी	आश्ले.	मघा	स्वाती	विशा.	उ.षा.	श्रवण	रेवती

इस प्रकार आदि, मध्य, और अन्त्य नाडी में दोनों (गृह-गृहेश) का नक्षत्र होना शुभद है। जिस प्रकार गृहमैत्री एवं नाडी शुभद होने पर विवाह अनुकूल माना जाता है, उसी प्रकार गृह-गृहेश की गणना में गृहमैत्री एवं नाडी एक होने पर गृहमेलापक उत्तम माना जाता है।

सेव्यसेवकयोश्चैव गृहतत्स्वामिनोरपि।
परस्परं मित्रयोश्च एका नाडी प्रशस्यते।।[2]

सेव्य सेवक (मालिक नौकर), गृह-गृहेश की एक नाडी हो और इनके राशीशो में परस्पर मैत्री हो तो उत्तम होता है।

---

1. वृहद्दैवज्ञरंजन
2. मुहूर्त्तचिन्तामणि 12/3-4 चन्द्रिकाटीका

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

आय के नाम

ध्वजो धूमोऽथ सिंहं श्वा सौरभेयः खरो गजः।
उष्ट्रश्चेति क्रमेणैतदायाष्टकमुदाहृतम्।।

कीर्तिः शोको जयो वैरं धनं निर्धनता सुखम्।
रोगश्चेति गृहारम्भे ध्वजादीनां फलं क्रमात्।।[1]

नाम एवं अर्थ चक्र से स्पष्ट है। यथा

1	*2*	*3*	*4*	*5*	*6*	*7*	*8*	*संख्या*
ध्वज	धूम	सिंह	श्वान	वृष	खर	गज	उष्ट्र	आय नाम
कीर्ति	शोक	जय	शत्रुता	धन	द्ररिद्रता	सुख	रोग	फल

पिण्डानयन

'विश्वनाथ' का नाम नक्षत्र रोहिणी गृहनक्षत्र स्वाती से 23 गुण आते हैं, गणना उत्तम है, यहाँ इष्ट आय 7 कल्पना किया।

एकोनितेष्टर्क्षहता द्वितिथ्यो रूपोनितेष्टायहतेन्दुनागैः।
युक्ता घनैश्चापि युता विभक्ता भूपाश्विभिः शेषमितो हि पिण्डः।
स्वेष्टायनक्षत्रभवोऽथ दैर्घ्यहतस्याद्विस्तृतिर्विस्तृतिविहृच्च दीर्घता।।[2]

'इष्टनक्षत्र' की संख्या में 1 घटाकर 152 से गुणा करें एवं 'इष्ट' आय में 1 घटाकर 81 से गुणा करें। दोनों गुणनफलों में 16 जोड़कर 216 से भाग दें, जो शेष बचे वही पिण्ड होता है, पिण्ड छोटा होने पर 216 जोड़कर अभीष्ट पिण्ड प्राप्त किया जा सकता है।

उदाहरणार्थ 'विश्वनाथ' को 'कटवरियासराय' में गृहनिर्माण करना है तो विश्वनाथ का 3 ध्रुवांक और य वर्ग, कटवारिया का 5 ध्रुवांक और क वर्ग जलस्थान से वायव्य दिशा में घर बनाना है। वायव्य का ध्रुवांक 01 है। अतः इनके (नाम, स्थान एवं दिशा) ध्रुवांकों का योग 3+5+1=9 होता है। 9 में 9 का भाग देने पर 0 शेष रहेगा, शून्य के शेष रहने पर शुक्र की दशा होगी इसलिए यहाँ शुक्र की दशा हुई जो उत्तम फलदायी है।

गृहेश-विश्वनाथ का नक्षत्र रोहिणी, राशि-वृष, राशिस्वामी शुक्र, गण-मनुष्य एवं नाडी अन्त्य हुई। इसी प्रकार गृह का नक्षत्र स्वाती, राशि, तुला, स्वामी शुक्र, गण-देव एवं नाडी अन्त्य हुई। गृह एवं गृहेश भी नाडी एक ही है अतः शुभ हुआ। एकोनितेष्टर्क्षहता इत्यादि सूत्रानुसार

1. वास्तुरत्नाकर 5/22-23
2. वहीं 5/01

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

पिण्डानयन प्रकार नक्षत्र सं. 15−1=14×152=2128, आय 7−1=6×81=486, योग 2128+486+17=2631 में 216 का भाग देने पर 12 लब्धि एवं 39 शेष हुआ। शेष ही पिण्ड होगा। अत: पिण्ड 39 हुआ बहुत न्यून होने के कारण इसमें 216 को जोड़ते जाए तो अभीष्ट पिण्ड होगा। यहाँ पर 216 को तीन बार जोड़ा (39+216+216+216=687) तो पिण्ड 687 हुआ। इसमें विस्तार (चौड़ाई) को निश्चित करें उससे भाग देंगे तो दैर्घ्य (लम्बाई) प्राप्त होगा। आचार्यो ने गृहपिण्ड की चौड़ाई का पूर्णांक तथा लम्बाई को हाथ, अंगुल, यव में माना है। इसी के अनुसार लम्बाई चौड़ाई का निर्धारण करना चाहिए।

अभीष्ट पिण्ड 687 को 9, 9, 6, 8, 3, 8, 8, 4, 8 से गुणा करके क्रमश: 8, 7, 9, 12, 8, 27, 15, 27, 120 का भाग देने से शेष आय, वार, अंश, द्रव्य, नक्षत्र, तिथि, योग, आयु होती है। यथा

(१) $\frac{687\times9}{8}=\frac{6182}{8}=772\frac{7}{8}$ अर्थात् शेष 7 गज आय।

(२) $\frac{687\times9}{7}=\frac{6183}{7}=883\frac{2}{7}$ अर्थात् शेष 2 सोमवार।

(३) $\frac{687\times6}{9}=\frac{4122}{9}=457\frac{9}{9}$ अर्थात् शेष 9 अंश।*

(४) $\frac{687\times8}{12}=\frac{5496}{12}=457\frac{12}{12}$ अर्थात् शेष 12 द्रव्य।*

(५) $\frac{687\times3}{8}=\frac{2061}{8}=257\frac{5}{2}$ अर्थात् शेष 5 ऋण।

(६) $\frac{687\times8}{27}=\frac{5496}{27}=203\frac{15}{27}$ अर्थात् शेष 15 नक्षत्र।

(७) $\frac{687\times8}{15}=\frac{5496}{15}=366\frac{6}{15}$ अर्थात् शेष 6 तिथि।

(८) $\frac{687\times4}{27}=\frac{2748}{27}=101\frac{21}{27}$ अर्थात् शेष 21 योग।

(९) $\frac{687\times8}{120}=\frac{5416}{120}=45\frac{96}{120}$ अर्थात् शेष 96 वर्ष आयु।

---

*. यहाँ पर शेष शून्य है परन्तु शून्य की जगह क्रमश 9, 12 ग्रहण किया है। जो कि किया ही जाता है।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

इस प्रकार गृह निर्माण में पिण्ड विचार का विशेष महत्व है। प्राचान आचार्यो ने समृद्धि, सौख्य सन्तान तथा कीर्ति वृद्धि के लिये पिण्ड विचार का विधान किया है। जिसका वर्णन प्राचीन ग्रन्थों और परम्परागत आचार्यो में लेखों से प्राप्त होता है।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

वास्तुपदविन्यास संकल्पना

प्रो॰ सच्चिदानन्द मिश्र

पदविन्यास का अर्थ है, वास्तु में क्षेत्र एवं मण्डल के अन्तर्गत देव विन्यास। यह एक जीवन्त एवं भूपृष्ठस्थ दिव्य संकल्पना का मानवीकृत रूप का पार्थिव प्रतिनिधि है। बृहत्संहिता में सर्व प्रथम आगम प्रदर्शन के अन्तर्गत ब्रह्मा जी से प्रवर्त्तित यह वास्तुपदविन्यास का विविध विज्ञान, कैसे ऋषिपरम्परा से वराह के समय तक प्रवर्तित होकर निष्कर्षतः संहिता स्कन्ध के अन्तर्गत एक स्वतन्त्र विद्या के रूप में प्रकट हुआ, एतदर्थ वराह की बृहत्संहिता प्रमाणरूप है।[1] ब्रह्माण्ड में सभी पिण्ड द्युलोकीय सत्ता के अस्तित्व मे आने के बाद तप्त, दिव्य, तैजस युक्त, स्वप्रकाश विरल तथा तरल पिण्ड के रूप में अग्नि, सोम, प्राण तथा वाक् के त्रिगुणात्मक एवं पञ्चभूतात्मक परिप्रेक्ष्य में थे। दृढ़ धरातलीय पिण्ड तथा परप्रकाश पिण्डों का अस्तित्व नहीं था।[2]

वैदिक काल विज्ञान, अनन्त महाब्रह्माण्डीय क्रम तथा आधुनिक महाकाशविज्ञान से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है।[3] मूल संकेत द्युलोक के रोदसि भाग में एक दैत्याकार पुरुषात्मक गोलीय स्वरूप प्रकट हुआ।[4] उसने पृथ्वी से द्युलोक तक को आच्छादित कर दिया। सहसा देवतागण उस पुरुषात्मक दैत्य (द्युलोक के रोदसी भाग में उत्पन्न वृहद विकरित दिव्य तेज) को अधोमुख कर दिया। अधोमुख स्थापना से उसका जो भाग पृथ्वी पर सामने पड़ा, उससे अग्निगर्भा पृथ्वी पर दृढ़ता आयी तथा ऊपरी सतह द्रव्यात्मक लावा के ऊपर स्तरात्मक भूखण्ड के रूप में प्रकट हुआ। द्युलोकीय रोदसी खण्ड में उत्पन्न शक्ति प्रभाव के जिस भाग पर पड़ने से वह पुरुष अधोमुख हुआ, वहां भूपृष्ठीय वास्तुपुरुष संकल्पना में वास्तुपुरुष के उस अंग विशेष पर उस देव की संकल्पना की गयी, तथा उस देव शक्तिपुञ्ज की विधाता ने वास्तुपुरुष संज्ञा की।[5] अतः उसे सदेव पूजन क्रम का प्रवर्त्तन प्रथम मानवीय वास्तु के साथ सभी वैदिक एवं पौराणिक वास्तु विधानों में किसी रूप में प्रचलित है। रोदसी भाग, क्रन्दसी भाग, इत्यादि सौरमण्डल एवं द्युलोक सम्बन्धी क्षेत्रांश विशेष का विधिवत् निरूपण विज्ञानविद्युत्, ब्रह्मसिद्धान्त आदि विद्यावाचस्पति मधुसूदन ओझा के समीक्षा

---

1. बृ. सं. अ.53 श्लो. 1
2. विज्ञानविद्युत्-मधुसूदन ओझा
3. ज्योतिर्विज्ञानम्-अर्कसोमयाजि
4. विज्ञानविद्युत्-मधुसूदन ओझा
5. बृ. सं. -दिव्यादि प्रभाव-वराह

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

से गम्य हैं।[1] इस तथ्य को वराहादि पौरुषग्रन्थकारों ने वैदिकविज्ञान के पौराणिक प्रतीकों को अग्रसारित कर अद्वितीय कार्य किया।[2] यद् ब्रह्माण्डे तत्पिण्डेऽपि का सिद्धान्त योगशास्त्रीय मानवीय रूप "यत्पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे"[3] के स्वरूप को भी प्रकट करता है। यथा

किमपि किल भूतमभवद्बुन्धानं रोदसी शरीरेण।
तदमरगणेन सहसा विनिगृह्याधोमुखं न्यस्तम्।।

यत्र च येन गृहीतं विबुधेनाधिष्ठितः स तत्रैव।
तदमरमयं विधाता वास्तुनरं कल्पयामास।।[4]

अग्निगोलात्मक भूपिण्ड पर कैसे रोदसी द्युलोकीय खण्ड में उत्पन्न महादैत्य के देवसंहित टक्कर से पृथ्वी तथा अन्य पिण्डों के उपरी स्तर पर दृढ़ता आयी तथा उस विकट शरीरधारी के जिस अंग को जो जहां पकड़े, उस देव विशेष की पूजा पृथ्वी पर वास्तुपुरूष के उसी अंग में करने का संकेत, ब्रह्मा द्वारा की गयी, देवमय वास्तुपुरुष संज्ञा के रूप में प्रवर्त्तन की परम्परा अग्रसारण विशिष्टवैज्ञानिक संकेत एवं विशिष्ट वैज्ञानिक प्रक्रिया का संकेत है। दिव्यत्व एवं देवत्व के निवेश से आधिदैविक तथा भूसंयोग से आधिभौतिक तथा आत्मतत्त्वाधिष्ठित मानव के बोधगम्यता की सम्बद्धता से आध्यात्मिक तथा गृह एवं देवालय के आरम्भ, प्रवेश एवं उत्पात मात्र में प्रयुक्त वास्तुशान्ति विधान निरूपण से सम्बद्ध होने से याज्ञिक एवं निगमागम सम्मत है। पदविन्यास में मण्डलीय क्रम से युक्त कर देव ऋषि एवं पितर के संयोग से वास्तु मात्र जीवन्त संकल्पना हो जाती है। इसके महत्व को समझे बिना असंस्कृत वास्तु तथा निर्माण मात्र, आत्महीन, केन्द्रहीन तथा लक्ष्यहीन, तृणकाष्ठ, प्रस्तर एवं लौह निर्मित बेढंगे कंक्रीट का जंगल मात्र होता है। जिसमें प ञ्चमहाभूतों की अनुकूलता तथा पर्यावरण रक्षण का अभाव एवं वातावरण तथा सार्वभौमिक प्रदूषण की पराकाष्ठा को उत्पन्न करता है। अतः वास्तुपुरुष की धारणा सामान्य कर्मकाण्ड तक सीमित नहीं है। इसके त्रिगोलीय सापेक्षता में हर काण्ड को समझने की जरूरत को देखते हुए वराह ने इसे संहिता भाग में स्थान प्रदान किया।

गृहस्तर के भेद एवं आकृति भेद

राष्ट्रीय सुरक्षा एवं प्रशासनिक व्यवस्था को नियन्त्रित करने वाले, विभिन्न स्तरीय नृपों, सेनाध्यक्षों, मन्त्रियों, युवराज, प्रान्तीय राजपुरुष एवं प्रधान राजपुरुष, अधिकारीगण, राज ज्योतिषी, बौधिक वर्ग, सुरक्षात्मक वर्ग, धनाढ्य एवं व्यवसायिक वर्ग तथा विभिन्न रूपक शिल्पी एवं श्रमिक भेद से, स्तर भेद से, गृहों की लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई, रक्षाव्यवस्था, प ञ्चमहाभूतों का समुचित

1. कादम्बिनीमेघमाला-वि.वा. मधुसूदन ओझा, पिण्डप्रभाकर-म.म. सुधाकर द्विवेदी
2. बृहत्संहिता अ. 53तः 60
3. पातं जलयोगप्रदीप-पतंजलि
4. वृहत्संहिता 53/2-3

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

प्रबन्धन, कोषागार के विभिन्न रूप तथा स्तर, राजपुरुषों के गृहप्रमाण, पारशव, सन्यासी तथा पशुगृह आदि का प्रमाण गृह में अलिन्द (बरामदा) का प्रमाण, वर्णभेद से गृहप्रमाण तथा अलिन्द्र प्रमाण, वीथिका (मार्ग) प्रमाण तथा मार्गभेद से वास्तु स्थान का नाम, तथा संज्ञा, सभी प्रकार के भवनों की ऊँचाई, पत्थर, ईंट तथा लकड़ी के घर में भीत्ति का प्रमाण, प्रधान द्वार की ऊँचाई तथा व्यास, वर्णभेद से द्वारप्रमाण, शाखा उदुम्बर की मोटाई का प्रमाण, स्तम्भ के अग्रमूल का प्रमाण, स्तम्भों के नाम, स्तम्भ के ऊपर तथा नीचे की रचना, भारतुला, तुला और उपतुला का प्रमाण आदि विषय बृहत्संहिता में विधिवत् प्रदर्शित किये गये हैं।[1] ये नृपादि शब्दों के प्रयोग उपलक्षण मात्र हैं। समर्थ पुरुष से प्रारम्भ कर अतिसामान्य भेद से ये समस्त प्रमाण आज भी प्रयोजनीय हैं।

अतिप्रधान वास्तुमण्डल

क्षेत्रभेद से पद विन्यास से पूर्व क्षेत्रभेद के अतिरिक्त अतिविशिष्ट क्षेत्रभेद के अन्तर्गत सर्वतोभद्र, नन्द्यावर्त्त, वर्धमान, स्वस्तिक तथा रुचक ये पांच भेद अति प्रशस्त होते हैं।[2]

1. **सर्वतोभद्र** चारो दिशा में द्वार-आयताकार-राजा एवं राजमन्त्री के लिए शुभ।
2. **नन्द्यावर्त** तीन दिशाओं में द्वार-पश्चिम में द्वार का अभाव-सभी के लिए शुभ।
3. **वर्धमान** तीन दिशाओं में द्वार- दक्षिण में द्वार का अभाव और सभी के लिए शुभ।
4. **स्वस्तिक्** पूर्वद्वार-केवल, सभी के लिए मध्यम।
5. **रूचक** तीन दिशाओं में द्वार, उत्तरम में द्वार का अभाव और सभी के लिए मध्यम।

इसी प्रकार अन्य वास्तुगृहभेद भी पद भेद के रूप में प्राप्त हैं। यदि चारों तरफ से घर तथा मध्य में प्रांगण हो तो चतु-शाल, तीन तरफ से गृह होने पर त्रिशाल, दो तरफ से घर हो तो द्विशाल, तथा एक तरफ से घर होने पर एक शालगृह के भेद प्राप्त होते हैं।[3] इनके विस्तृत प्रमाण के प्राचीन शिल्प एवं वास्तु के ग्रन्थों में मिलते हैं।

क्षेत्र एवं प्रमाण मण्डल को वास्तु पद कहते हैं। इसका अद्वितीय महत्व है। मानवीय वास के लिए 81 पद विभाग तथा दैवीवास्तु में 64 पद विभाग कर अन्तर्भाग में 13 तथा बाह्यभाग में 32 कुल 45 देवताओं का विन्यास करते हैं। यथा

एकाशीति विभागे दश-दश पूर्वोत्तरायता रेखाः।
अन्तस्त्रयोदश सुरा द्वात्रिंशद्बाह्यकोणस्थाः।।[4]

1. वृहत्संहिता 53/4-30
2. वहीं 53/31-36
3. वहीं 53/37-41
4. वृहत्संहिता 53/42

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

81 पदात्मक चक्र

ईशान पूर्व अग्नि

शिखि	पर्जन्य	जयन्त	इन्द्र	सूर्य	सत्य	भृश	अन्तरिक्ष	अनिल
दिति	आप	जयन्त	इन्द्र	सूर्य	सत्य	भृश	सवित्र	पूषा
अदिति	अदिति	आपवत्स	अर्यमा	अर्यमा	अर्यमा	सविता	विराथ	वितथ
भुजंग	भुजग	पृथ्वीधर	ब्रह्मा	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विवस्वान	बृहत्क्षा	बृहत्क्षत
सोम	सोम	पृथ्वीधर	ब्रह्मा	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विवस्वान	यम	यम
भल्लाट	भल्लाट	पृथ्वीधर	ब्रह्मा	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विवस्वान	गन्धर्व	गन्धर्व
मुख्य	मुख्य	राजयक्ष्मा	मित्र	मित्र	मित्र	इन्द्र	भृंग राज	भृंगराज
अहि	रूद्र	शोष	असुर	वरु	पुष्पदन्त	सुग्रीव	जय	मृग
रोगः	पापयक्ष्मा	शोष	असुर	वरु	पुष्प दन्त	सुग्रीव	दौर्वारिक	पितर

उत्तर दक्षिण

वायव्य पश्चिम नैर्ऋत्य

पूर्व में ईशान कोण से प्रारम्भकर अग्नि तक क्रम से 8 देवता स्थापित करें। दक्षिण में अग्नि कोण से प्रारम्भ कर तक आठ देवताओं को स्थापित करें। पश्चिम में नैर्ऋत्यकोण से प्रारम्भ कर वायव्य तक 8 देवता स्थापित करें। उत्तर में वायव्य कोण से प्रारम्भ कर ईशान तक 8 देवों को स्थापित करें। ये चारों दिशाओं में देवता हैं। ये वृत्त, आयत या चतुष्कोण क्षेत्र के चारों ओर स्थापित 32 देवता हैं। इन देवों की उत्पत्ति का इतिहास एवं प्रभाव का वर्णन पुराणों में मिलता हैं। यहां स्थापन क्रम ही मात्र दर्शाया गया है।

अन्तर्गृह में तेरह देवताओं के पदन्यास

तेरह देवता आभ्यन्तर भाग में विराजमान किये जाते हैं। मध्य के नौ कोष्ठकों में ब्रह्मपद विन्यास करना चाहिये। ब्रह्म से पूर्व में प्रदक्षिणा क्रम से आर्यमा से आपवत्स पर्यन्त दिशा एवं कोण दिशा क्रम से तीन 3 एवं दो-2 कोष्ठकों में 8 देवों का पदन्यास करना चाहिये। 16 कोष्ठकों में आठ देव अर्यमा, सविता, विवस्यान्, इन्द्र, मित्र, राजयक्ष्मा, पृथ्वीधर तथा आपवत्स न्यस्त किये जाते हैं। अब एक पंक्ति चारो तरफ बाह्यपंक्ति के भीतर $6 \times 4=24$ कोष्ठकात्मक रह गयी। इनमें प्रथमतः ईशान कोण से प्रदक्षिण क्रम से चारों कोण में आप, सविता, जय तथा रूद्र स्थापित करें। इस तरह दिति, अग्नि, पर्यन्य, आप, आपवत्स ये 5 देव ब्रह्मा के ईशान कोण में व्यवस्थित हो जाते हैं। ये सभी देव एक-2 पदाधिकारी हैं। इस तरह प्रत्येक कोण में पांच-2 देवता एक-2 पदाधिपति स्थापित किये जाते हैं। अग्निकोण में अन्तरिक्ष, अनिल वा अनल, पूषा, सवित्र तथा

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सविता ये पांच देव एक-एक पदाधिपति हैं।

कोणस्थ पदों में देव न्यास

नैऋत्य कोण में मृग, पितर, दौवारिक, जय तथा इन्द्र ये पांच देवता, एक-2 पदाधिपति हैं। इस प्रकार वायव्य कोण में पापयक्ष्मा, रोग, सर्प, रूद्र तथा राजयक्ष्मा ये पांच देवता एक-2 पदाधिपति हैं। यहां ध्यातव्य हैं कि वस्तुतः इनमें बाह्यकोणस्थ चार-2 देव एक-2 पद के अधिपति तथा अन्तः कोणस्थ ब्रह्मा के चारों कोण पर सन्निहित एवं चारो पूर्वादि दिशाओं में अवस्थित अर्यमा, विवस्वान, मित्र तथा पृथ्वीधर त्रिपदाधिपति एवं ईशानादि कोण दिशाओं में प्रदक्षिणक्रम से आपवत्स, सविता, इन्द्र, राजयक्ष्मा आदि एक-2 पदाधिपति देव हैं। इस 81 पद वास्तु में 20 देवता द्विपदिक, अर्यमा, विवस्वान, मित्र तथा पृथ्वीधर त्रिपदिक एवं ब्रह्मा नवदिक स्थापित किये जाते हैं। यथा वराह

बाह्य 32 कोष्ठकों (पदों) में देवों के नाम

शिखिपर्जन्यजयन्तेन्द्रसूर्यसत्याभृशोऽन्तरिक्षश्च।
ऐशान्यादिक्रमशो दक्षिणपूर्वेऽनिलः कोणे।।

पूषा वितथबृहत्क्षतयमगन्धर्वाख्यभृङ्गराजमृगाः।
पितृदौर्वारिकसुग्रीवकुसुमदन्ताम्बुपत्यसुराः।।

शोषोऽथ पापक्ष्मा रोगः कोणे ततोऽहिमुख्यौ च।
भल्लाटसोमभुजगास्ततोऽदितिर्दितिरिति क्रमशः।।[1]

यह ईशान से अग्नि, अग्नि से नैऋत्य, नैऋत्य से वायव्य, तथा वायव्य से ईशान तक 8 × 4 = 32 देव प्रथमतः एक-2 पद में न्यस्त किये जाते हैं।

अन्तर्गर्भगृह के पदों में देवों का न्यास

मध्ये ब्रह्मा नवकोष्ठकाधिपोऽस्यार्यमा प्राच्याम्।
एकान्तरात् प्रदक्षिणमस्मात् सविता विवस्वांश्च।।

विवुधाधिपतिस्तस्मान्मित्रोऽन्यो राजयक्ष्मनामा च।
पृथिवीधरापत्सावित्येते ब्रह्मणः परिधौ।।[2]

यह नव पदात्मक ब्रह्मा के चारों ओर त्रिपदिक चार देव अर्यमादि तथा कोणस्थित एक पदिक आपवत्सान्त 16 पदात्मक चक्रों से आवृत्त कर व्यवस्थित हैं। इस प्रकार 9 पद+4×3+4=25

1. वृहत्संहिता 53/43-45
2. वहीं 53/46-47

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

पदों में नौ देवतापद न्यस्त हैं।

कोणस्थ एक पदिक चार देवों के न्यास

आपो नामैशाने कोणे हौताशने च सवित्रः।
जय इति च नैर्ऋते रूद्र अनिलेऽभ्यन्तरपदेषु।।[1]

कोणस्थ देव पदन्यास

आपस्तथापवत्सः पर्जन्योऽग्निर्दितिश्च वर्गोऽयम्।
एवं कोणे-कोणे पदिकाः स्युः पञ्च-पञ्च सुराः।।[2]

इससे ईशानादि प्रदक्षिण क्रम से ईशान में आप, अग्निकोण में सवित्र, नैर्ऋत्य में जय तथा वायव्य में रूद्र स्थापित करने पर प्रत्येक कोण में एकपदिक चार-4 देव न्यस्त किये जाते हैं। ब्रह्मा के चारों ओर चारों आभ्यन्तरस्थ ईशानादि कोणों के एक-2 देवों के साथ आपवत्सादि प्रदक्षिण क्रम से प्रतिकोणस्थ पांच-2 देव एवं 20 देव=5×4 व्यवस्थित है। इनके पद 4×4=16, 16+4×1=16+4=20 पदों को व्याप्त करते हैं।

शेष 20=5×4 पदों में न्यास क्रम

बाह्या द्विपदाः शेषास्ते विबुधा विंशति समाख्याताः।
शेषाश्चत्वारोऽन्ये त्रिपदा दिक्ष्वर्यमाद्यास्ते।।[3]

बाहर परिधि के 3, 4, 5, 6, 7 संख्यक 5 देव प्रति दिशा पूर्वादि भेद से 5 ×4=20 द्वितीय परिधिस्थ स्व-2 संमुख पद के अधिपति होते हैं। शेष 16 कोष्ठकों 3×4=12 में तीन कोष्ठकात्मक पदों में अर्यमादि चारदेव ब्रह्मा के चारों ओर पूर्वादिक्रम से अवस्थित होते हैं। इन्हें त्रिपदि कहते हैं। एवं प्रति दिशा में 4×6=24 देव कोणदिशाओं में 5×4=20 देव तथा मध्य में ब्रह्मा सहित 45 मुख्य देव पूजित किये जाते हैं। इनमें भी सामान्य पूजन में 33 देव गृहित किये जाते हैं। वराह ने पराशर के आधार पर वास्तु के अन्दर ब्रह्माण्डीय देव क्रम को दिव्यलोक की सापेक्षता से भूमण्डल तक सत्यकेन्द्ररथ ब्रह्मा से सप्तमलोकस्थ पृथ्वी तक के दैवी वर्गीकरण को वास्तुमण्डल में उतारना "यद् ब्रह्माण्डे तद् पिण्डेऽपि" का व्यक्त महाविज्ञान है। काश्यप से द्युलोकीय प्रवर्त्तन से प्रारम्भ कर द्वापरान्तीय पराशर तक के क्रम को वराह ने भले संक्षिप्त में निबद्ध किया लेकिन विद्यावाचस्पति मधुसूदन ओझा जी के वैदिक यज्ञविज्ञान ने नवीन उद्घाटन तथा म. म. गोपीनाथ कविराज के आगमोक्त विधानों का उद्घाटन, म.म. सुधाकर द्विवेदी के ज्योतिषादि तत्त्वोद्घाटन, नवीन महाकाशीय विज्ञान तथा भूविज्ञान के आलोक में देव पदविन्यास इन महाविज्ञानों

1. वृहत्संहिता 53/48
2. वहीं 53/49
3. वहीं 53/50

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

के योग के बिना सजीव संकल्पना नहीं की जा सकती। अतः सम्बद्ध विशेषज्ञों के लिए वास्तुपुरुष की उत्पत्ति तथा दैवग्रहणाख्यान सम्बद्ध सार्वभौमवास्तु से स्वक्षेत्रवास्तु न्यास तक में प्रयोग अन्वेषण गम्य है।

वास्तुपुरुष के अङ्ग विभागों में देवन्यास[1]

ईशानकोण में शिर करके वास्तुपुरुष स्थित है। इसके शिर पर अग्नि तत्त्वात्मक अग्नि, मुख पर अपस् तत्त्वात्मक आप, स्तनभाग पर अर्यमा, छाती पर आपवत्स अवस्थित है। बाह्य कोष्ठास्थित पर्जन्यादि देवता स्थित हैं जैसे नेत्र में पर्जन्य, कान में जयन्त, छाती में इन्द्र, तथा कन्धे पर सूर्य अवस्थित है। इसके भुजा पर सत्य, भृश, अन्तरिक्ष, अनिल (वायु) तथा पूषा (सूर्य विशेष) अवस्थित हैं। इस महाकाशीय वास्तुपुरुष के हाथ में बितथ तथा बृहत्क्षत अवस्थित हैं पेट पर विवस्वान तथा ऊरू भाग पर यम अवस्थित हैं। जानु में गन्धर्व, जंघा में भृङ्गराज, कुल्हें में मृग अवस्थित है। ये सभी देवता दक्षिण अंग के हैं। वास्तुपुरुष का सिर ईशान में तथा पैर नैऋत्य में स्थित है।

दक्षिण की तरह ही वास्तुपुरुष के वामाङ्गों पर भी क्रम से स्तन पर पृथ्वीधर, नेत्र पर दिति, कर्ण पर अदिति, छाती पर भुजग, कन्धे पर सोम, भुज पर भल्लाट, मुख्य, अहि, रोग और पापयक्ष्मा हैं। हाथ में रूद्र और राजयक्ष्मा, कुक्षि पर शोष और असुर, ऊरू में वरूण, जानु में कुसुमदन्त, जंघा पर सुग्रीव तथा कुल्हे पर दौवारिक स्थित है। लिङ्ग में शक्र और जयन्त, हृदय में ब्रह्मा स्थित है। पांव में पिता (पितर) स्थित है। यह वास्तुपुरुष का अंग विभाग रूप है। गृह, ग्राम, नगर आदि के सम्बन्ध में वास्तुपुरुष के अङ्गों का विभाजन करना चाहिए।

टिप्पणी कालनर पुरुष निरयण अश्विन्यादि से रेवत्यन्त अर्थात् निरयण मेषादि से मीनान्त राशिपु ञ्ज के प्रमाण से भी विचारित होते हैं। समग्र मानवीय तथा भूगोलीय प्रमाण निर्धारण में जातक होरा एवं संहिता में यह कालपर विशेष प्रयोजनीय है। वास्तुपुरुष विन्यास में अग्नि से पितर तक का देवप्रमाण नक्षत्राधिपत्य दैवत से सम्बद्ध है। अतः "नक्षत्राणि वै देवगृहाणीति तैत्तिरीय संहिता के प्रमाण से देवमय वास्तु पुरुष के गृहादि में पद विन्यास से जीवन्तता की संकल्पना पूर्ण वैज्ञानिक है। मानवीय वास्तु में एकाशीतिपदचक्र विमर्शणीय है, वहां देव प्रासाद एवं देव मन्दिर में चौंसठ पद के क्षेत्र और उनमें देवताओं का चतुरस्त्र की तरह वृत्त तथा त्रिभुज में भी एकाशीति पद चक्र मानव के लिए तथा चौसठ पद वाली वास्तु नर स्थापना देव मन्दिरादि के लिए वास्तु ग्रन्थों में वर्णित है। इनके प्रयोग से मर्म विभाग, कोण से कोण तक सूत्र नियम, पीड़ित मर्म का निर्धारण एवं प्रभाव, पदविन्यास में सूत्राङ्कन काल में शल्यज्ञान, शल्यों के विभाग एवं प्रभाव, विकल वास्तु के दोष एवं अविकल वास्तु में सुख, ग्राम एवं नगर में वास्तु नर विभाग, वर्ण भेद से वास्तु योग्य स्थान निर्धारण, पद विन्यास से गृहमण्डल के $8 \times 4=32$ द्वार भेद एवं इनके प्रभाव, द्वारवेध, मार्गवेध, कोणवास

1. वृहत्संहिता 53/51-54

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

आदि समस्त विधान तथा इनके शुभाशुभ प्रभाव निर्धारण में यह चक्र विन्यास महत्वपूर्ण है।

चौंसठ पदात्मक क्षेत्र में देवन्यास

चौंसठ पद का क्षेत्र बनावे (नव पूर्वापरा और नव दक्षिणोत्तरा रेखा खींचकर फिर इसके चारों कोनों में कर्णाकार दो-दो रेखायें खींचने से यह क्षेत्र बन जायगा। इस क्षेत्र में मध्यस्थ चार पदों का स्वामी ब्रह्मा और ब्रह्मा के चारों कोनों में आठ देवता (आप, आपवत्स, सविता, सवित्र, इन्द्र, जयन्त, राजयक्ष्मा और रुद्र) और बाहर के चारों कोनों में आठ देवता (शिखी, अन्तरिक्ष, अनिल वा अनल, मृग, पिता, पापयक्ष्मा, रोग और दिति) अर्धपदीय हैं। इनके दोनों तरफ पर्जन्य, भृश, पूषा, भृङ्गराज, दौवारिक, शोष, नाग और अदिति सार्धपदीय (डेढ़ पद के स्वामी) हैं। शेष बीस पद के देवता (जयन्त, इन्द्र, सूर्य, सत्य, वितय, बृहत्क्षत, यम, गन्धर्व, सुग्रीव, कुसुमदन्त, वरुण, असुर, मुख्य, भल्लाट, सोम, भुजग, अर्यमा, विवस्वान्, मित्र पृथ्वीधर ये बीस देवता) द्विपदीय हैं। यथा

अष्टाष्टकपदमथवा कृत्वा रेखाश्च कोणगास्तिर्यक्।
ब्रह्मा चतुष्पदोऽस्मिन्नर्धपदा ब्रह्मकोणस्थाः।।

अष्टौ च बहिष्कोणेष्वर्धपदास्तदुभयस्थिताः सार्धाः।
उक्तेभ्यो ये शेषास्ते द्विपदा विंशतिस्ते हि।।[1]

विशेष यहाँ पर केवल चतुरस्त्र क्षेत्र में वास्तु नर का प्रदर्शन किया है, किन्तु वृत्त, त्रिकोण, षट्कोण आदि आकृति वाले भी गृह, ग्राम, नगर आदि देखे जाते हैं। अतः वृत्त, त्रिभुज आदि में किस तरह वास्तु नर का स्थापन करना चाहिये, उन्हें ग्रन्थान्तर प्रमाण से यहाँ लिख रहा हूँ।

वृत्त में इक्यासी पद वाले वास्तु नर का स्थापन क्रम

इक्यासी पद वाले वृत्त क्षेत्र में पांच वृत्त बनावे, उन में बाहर के दो वृत्तों में बत्तीस-2 पद, तीसरे में बारह पद, चौथे में चार पद और पांचवे में केवल एक पद बनावे। यहां मध्य के पांच पद में ब्रह्मा बाहर के दोनों वृत्तों में दो-2 पद वाले शिखी आदि बत्तीस देवता और अर्यमा आदि चार देवता तीन-तीन पदों में लिखे। इस तरह वृत्त क्षेत्र में इक्यासी पद के वास्तु नर का स्थापन हो जाएगा। यथा

एकाशीतिपदे क्षेत्रे कर्तव्यं वृत्तपञ्चकम्।
बाह्ये वृत्तद्वयं यत्तत्पदद्वात्रिंशता युतम्।।

तृतीयं द्वादशपदं चतुर्थं तु चतुष्पदम्।
केवलं पञ्चमं कार्यं ब्रह्मा पञ्चस्ववस्थितः।।

शिख्यादयस्तु द्विपदा बहिविष्कम्भसंस्थिताः।[2]

1. वृहत्संहिता 53/55-56
2. वृहत्संहिता 53/55-56, विमला टीका

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

त्रिभुज में इक्यासी पद वाले वास्तु नर का स्थापन क्रम

इक्यासी पद वाले त्रिभुजाकार वास्तु नर क्षेत्र में पांच त्रिभुज बनावे। उसके प्रथम भाग में दोनों कोनों को छोड़कर पूर्व दिशा के भुजा के आठ भाग करें और अन्य दो भुजाओं के बारह-बारह भाग करें। तीनों कोणो में दिति, वायु और वरुण का स्थापन करे। फिर प्रथम भाग के शेष पदों में शिखी आदि देवताओं का स्थापन करे। इसी तरह द्वितीय भाग के पदों में भी पूर्वोक्त शिखी आदि देवताओं की स्थापन करें, तथा इस भाग के तीनों कोनों पर भी प्रथम कोणस्थित देवताओं की स्थापन करे और शेष पदों में वास्तु कोष्ठ स्थित शेष देवताओं की स्थापन करें। तृतीय भाग में तीनों दिशाओं में चार-चार पद बनाकर उनमें प्रदक्षिण क्रम से आर्यमा, सवित्र, सविता, विवस्वान्, इन्द्र, मित्र, जय, हर, राजयक्ष्मा, भूमिधर, आप और आपवत्स का स्थापन करें। चतुर्थ (मध्य) भाग के पाँच पदों में ब्रह्मा का स्थापन करें। इस तरह त्रिभुज क्षेत्र में इक्यासी पद के वास्तु नर का स्थापन हो जायेगा। यथा

त्र्यस्त्राणि पञ्चक्षेत्राणि त्रिकोणे परिकल्पयेत्।
प्राची दिगष्टधा कार्या कोणवर्ज्या ततः परे।।

रविभागविभक्ते ते वास्तुद्वाराणि तानि तु।
दितिं वायुं जलपतिं कोणेषु त्रिषु विन्यसेत्।।

ततः शिख्यादिकान् सर्वान् शेषेषु विनिवेशयेत्।
द्वितीये पूर्ववद्भागाः षोडशद्विगुणास्ततः।।

तत्रापि कोणत्रितये पूर्वोक्तान् विबुधान् न्यसेत्।
शेषेषु वास्तुकोष्टस्थान् सुरांश्च विनिवेशयेत्।।

क्षेत्रे तृतीये चत्वारि सर्वशाखासु कारयेत्।
प्राग्गतिर्यमयावित्रौ सविता च ततः परम्।।

विवस्वानिन्द्रमित्रौ च जयश्चैव हरस्तथा।
राजयक्ष्मा भूमिधर आपो वत्सयुतः स च।।

चतुर्थे पञ्चभिर्भागैः कृत्वा तन्मध्यगस्तथा।
पितामहो विनिर्दिष्टस्त्र्यस्त्रक्षेत्रेऽप्ययं विधिः।।[1]

वृत्त में चौंसठ पद वाले वास्तु नर का स्थापन क्रम

चौंसठ पद वाले वृत्ताकार वास्तु नर क्षेत्र में समानान्तर चार वृत्त बनाकर प्रथम वृत्त के बत्तीस, द्वितीय के सोलह, तृतीय के बारह और चतुर्थ के चार भाग बनावे। इसके बाद प्रथम वृत्त

1. वृहत्संहिता 53/55-59, विमला टीका

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

में शिखी आदि बत्तीस देवता एकपदीय, द्वितीयवृत्त में अर्यमा आदि आठ देवता द्विपदीय, तृतीय वृत्त में आप आदि चार देवता त्रिपदीय और चतुर्थ वृत्त में ब्रह्मा चतुस्पदीय स्थापित करें।

यथा

वृत्तानि चत्वारि समानि कृत्वा वास्तो श्चतुःषष्टिपदस्य सम्यक्।
अधस्तदर्धेन च सूर्यवेदैर्विभज्यते वृत्तचतुष्टयं च।।

शिख्यादयश्चैकपदे निविष्टाः पदद्वये चार्यमकादयश्च।
आपादयश्च त्रिपदाः प्रतिष्ठाश्चतुष्पदश्चात्र पितामहः स्यात्।।[1]

मर्म विभाग एवं शुभाशुभ ज्ञान

पदों के ठीक-ठीक मध्य स्थान में वंशों (कोण से कोण गत सुत्रों) का परस्पर जो सम्पात हो उसको मध्यस्थ मर्म स्थान कहते हैं। बुद्धिमान् पुरुष इन मर्म स्थानों को पीड़ित न करें। यथा

सम्पाता वंशानां मध्यानि समानि यानि च पदानाम्।
मर्माणि तानि विन्द्यान्न तानि परिपीडयेत्प्राज्ञः।।[2]

पीड़ित मर्म स्थान का कुप्रभाव

ये मर्म स्थान अपवित्र भाण्ड आदि वस्तु, कील, खम्भा, आदि (पाषाण आदि) और शस्त्रों से पीड़ित होने पर तत्तुल्य अङ्ग में गृह स्वामी को पीड़ा होती है। अर्थात् पीड़ित मर्म स्थान वास्तु नर के जिस अङ्ग मे पड़े तत्तुल्य अङ्ग में गृहस्वामी की पीड़ा होती है। यथा

तान्यशुचिभाण्डकीलस्तम्भाद्यैः पीडितानि शल्यैश्च।
गृहभर्त्तुस्तत्तुल्ये पीडामङ्गे प्रयच्छन्ति।।[3]

शल्यज्ञान प्रकार

हवन काल या प्रश्न काल में गृह का स्वामी जिस अङ्ग को खुजलावे, वास्तु नर के उस अङ्ग स्थान में शल्य कहना चाहिये। अथवा जिस देवता की आहुति देने के समय अशुभ निमित्त (छीक, रोना, चिल्लाना, पादना, या अशुभ शब्द श्रवण) हो या अग्नि में विकार (विस्फुलिङ्ग, शब्द के साथ दुर्गन्ध) उत्पन्न हो तो उस देवता के स्थान में शल्य कहना चाहिये।[4]

---

1. वृहत्संहिता 53/55-56, विमला टीका
2. वहीं 53/57
3. वहीं 53/58
4. वहीं 53/59

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

शल्यों के विभाग से प्रभाव

काष्ठ का शल्य हो तो धन हानि, हड्डी का शल्य हो तो पशुओं को पीड़ा, और रोगभय, लोहे का शल्य हो तो शस्त्र का भय, कपाल या केश का शल्य हो तो मृत्यु, कोयले का शल्य हो तो चोर भय और भस्म का शल्य हो तो सदा अग्नि भय होता है। तथा सोना और चाँदी के अतिरिक्त कोई अन्य शल्य वास्तुपुरुष के मर्म स्थान स्थित हो तो अत्यन्त अशुभ होता है। यदि धान्यों की भूसी मर्म स्थान या किसी अन्य स्थान मे हो तो धन के आगमन को रोकता है। तथा नागदन्त मर्म स्थान में हो तो दोष पैदा करने वाला होता है। पर मर्म स्थान के अतिरिक्त स्थान में हो तो यह शुभ होता है।[1]

कोणसूत्र नियम

रोग से वायु तक, पिता से शिखी तक, वितथ से शोष तक, मुख्य से भृश तक, जयन्त से भृङ्ग तक और अदिति से सुग्रीव तक पद क्रम से सूत्र बांधे। इन सूत्रों के परस्पर (नौ) नव सम्पात स्थान वास्तुपुरुष के अतिमर्म स्थान हैं। तथा एक पद में अष्टमांश तुल्य मर्म स्थान का परिणाम होता है।[2]

वंश और शिरा का प्रमाण

पूर्व कथित 6 सूत्रों की वंश संज्ञा है तथा वास्तु विभाग के लिये जो पूर्वापरा तथा दक्षिणोत्तरा दश-दश रेखा किये गये हैं उनकी शिरा संज्ञा होती है। वास्तु में एक पाद का विस्तार जितने हाथ हो, उतने अङ्गुल एक वंश का विस्तार और विस्तार से ड्योढा शिरा का विस्तार होता है।[3]

वास्तु संयम से दुःखनाश

सुख को चाहने वाले स्वामी घरे के मध्य में स्थित ब्रह्मा जी की यत्न पूर्वक रक्षा करें। उनके ऊपर उच्छिष्ट (जूठ) आदि (अपवित्र वस्तु) को रखने से गृह स्वामी को पीड़ा होती है। यथा

सुखमिच्छन् ब्रह्माणं यत्नाद्रक्षेद् गृहान्तःस्थम्।
उच्छिष्टाद्युपघाताद्गृहपतिरुपतप्यते तस्मिन्।।[4]

विकल एवं अविकल वास्तु के प्रभाव

यदि वास्तुपुरुष के दक्षिण भुजा हीन हो तो धन नाश और स्त्री कृत दोष होता है। वाम भुजा होन हो तो धन-धान्यों का नाश, शिर हीन हो तो, धन, आरोग्य आदि सब गुणों का नाश तथा चरण हीन हो तो स्त्री दोष, पुत्र की मृत्यु और दासत्त्व होता है। यदि वास्तुपुरुष के सब अङ्ग पूर्ण हो तो

1. वृहत्संहिता 53/60-62
2. वृहत्संहिता 53/63-64
3. वृहत्संहिता 53/65
4. वृहत्संहिता 53/66

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

उस स्थान में निवास करने वाले मनुष्य को मान और धन से युत सुख मिलता है।[1]

नगरादि में वास्तुपुरुष विचार

गृह, नगर, और ग्रामों में इसी प्रकार सभी देवता विराजमान हैं। उन नगर और ग्रामों में ब्राह्मण आदि वर्णों को यथाक्रम निवास करना चाहिये। यथा

गृहनगरग्रामेषु च सर्वत्रैवं प्रतिष्ठिता देवाः।
तेषु च यथानुरूपं वर्ण विप्रादयो वास्याः।।[2]

ब्राह्मण आदि वर्ण क्रम से उत्तर आदि दिशा में वासगृह बनावें। जैसे ब्राह्मण उत्तर में, क्षत्रिय पूर्व में, वैश्य दक्षिण में और शूद्र पश्चिम में निवास स्थान बनावे। गृह इस तरह बनाना चाहिये जिससे कि आङ्गन में प्रवेश करते समय वे गृह दक्षिण तरफ पड़े। जैसे पूर्व मुख वाले गृह के आङ्गन का द्वार उत्तर में, दक्षिण मुख वाले गृह के आङ्गन का द्वार पूर्व में, पश्चिम मुख वाले गृह के आङ्गन का द्वार दक्षिण में, और उत्तर मुख वाले गृह के आङ्गन का द्वार पश्चिम में बनाना चाहिये।[3]

चारों दिशाओं में बत्तीस द्वार एवं उनके प्रभाव

एक्यासी पद में नवगुणित सूत्र से और चौंसठ पद में अष्टगुणित सूत्र से विभक्त होकर जो अनल आदि बत्तीस द्वार बने हैं। क्रम से उनके फल का प्रदर्शन कर रहे हैं।

पूर्वद्वार शिखी से लेकर अन्तरिक्ष तक आठ देवता पूर्व में हैं। उन में शिखी के ऊपर द्वार हो तो अग्नि भय, पर्य्यन्य के ऊपर द्वारा हो तो कन्या जन्म, जयन्त के ऊपर द्वार हो तो धन, इन्द्र के ऊपर द्वार हो तो राजा की प्रसन्नता, सूर्य के ऊपर द्वार हो तो क्रोधी स्वभाव, सत्य के ऊपर हो तो असत्य भाषण, भृश के ऊपर द्वार हो तो क्रूरता और अन्तरिक्ष के ऊपर द्वार हो तो तस्करत्व आता है।[4]

दक्षिण द्वार अनिल से लेकर मृग तक आठ देवता दक्षिण में हैं। उन में अनिल के ऊपर द्वार हो तो अल्प पुत्र, पौष्ण के ऊपर दासत्व, वितथ के ऊपर नीचता, बृहत्क्षत के ऊपर भोजन, पानवस्तु और पुत्रों की वृद्धि, याम्य के ऊपर अशुभ, गन्धर्व के ऊपर कृतघ्नता, भृङ्गराज के ऊपर निर्धनता और मृग के ऊपर द्वार हो तो पुत्र के बल की हानि होती है।[5]

---

1. वृहत्संहिता 53/67-68
2. वृहत्संहिता53/69
3. वृहत्संहिता 53/70
4. वृहत्संहिता 53/71-72
5. वृहत्संहिता 53/73

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

पश्चिम द्वार पिता से लेकर पापयक्ष्मा तक आठ देवता पश्चिम में हैं। उन में पिता के ऊपर द्वार हो तो पुत्रों को पीड़ा, दौवारिक के ऊपर शत्रु की वृद्धि, सुग्रीव के ऊपर पुत्र और धन का लाभ, कुसुमदन्त के ऊपर पुत्र और धन सम्पत्ति की प्राप्ति, वारुण के ऊपर धन सम्पत्ति, असुर के ऊपर राजभय, शोष के ऊपर धननाश तथा पापयक्ष्मा के ऊपर द्वार होने पर रोग होता है।[1]

उत्तर द्वार रोग से लेकर दिति तक आठ देवता उत्तर में हैं। उन में रोग के ऊपर द्वार हो तो मृत्यु और बन्धन, सर्प के ऊपर द्वार हो तो शत्रु की वृद्धि, मुख्य के ऊपर द्वार हो तो पुत्र और धन का लाभ, भल्लाट के ऊपर द्वार हो तो सम्पूर्ण शौर्यादि गुणों की सम्पत्ति, सोम के ऊपर द्वार हो तो पुत्र से द्वेष, अदिति के ऊपर द्वार हो तो स्त्री के द्वारा दोष तथा दिति के ऊपर द्वार हो तो निर्धनता होती है।[2]

द्वार वेध का प्रभाव

यदि मार्ग, वृक्ष, दूसरे घर का कोना, कूप, खम्भा या भ्रम (जल निकलने की मोरी) से गृह विद्ध होता है अर्थात् ये सब द्वार के सम्मुख हो तो अशुभ है। यथा

दर्घ्यं नवांशात्पदमत्रसव्याद् द्वार शुभ प्राक्न्ति चतुर्थभागे।
चतुर्थषष्ठेदिशि दक्षिमस्यां पश्चाच्चक्षुः पञ्चमके तथोदक्।।[3]

गृहद्वार की ऊँचाई से द्विगुणित भूमि को छोड़कर आगे वेध करते हुए भी इन मार्गादि का रहना दोषद नहीं हैं। यथा

मार्गतरुकोणकूपस्तम्भभ्रमविद्धमशुभदं द्वारम्।
उच्छ्रायाद्द्विगुणमितां त्यक्ता भूमिं न दोषाय।।[4]

विषय भेद से द्वारवेध का प्रभाव

यदि गृह द्वार मार्ग से वेधित हो तो गृह स्वामी की मृत्यु, वृक्ष से वेधित हो तो बालकों में दोष, पङ्क (कीचड़) से वेधित हो तो शोक, मोरी से वेधित हो तो व्यर्थ खर्च, कूप से वेधित हो तो मृगी रोग की उत्पत्ति, देवता की प्रतिमा से वेधित हो तो गृहस्वामी का नाश, स्तम्भ से वेधित हो तो स्त्रियों में दोष और ब्रह्मा के सम्मुख हो तो कुल का नाश होता है।[5]

---

1. वृहत्संहिता 53/74
2. वृहत्संहिता 53/75
3. वास्तुरत्नाकर श्लो. 21, पृ. 86
4. वृहत्संहिता 53/76
5. वहीं 53/77-78

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

द्वार कपाट एवं प्रमाण से शुभाशुभत्व

जिस गृह के द्वार का किवाड़ बिना खोले ही खुल जाए तब, उसमें रहने वाले को उन्माद, अपने आप बन्द हो जाय तो कुल का नाश, पूर्व कथित परिणाम से अधिक द्वार का परिणाम हो तो राजभय, और प्रमाण से अल्प हो तो चोर भय और दु:ख होता है। यदि एक घर के द्वार पर दूसरे खण्ड का द्वार पड़े तो शुभ नहीं होता है। जिस द्वार की मोटाई अल्प हो, वह भी शुभ नहीं होता है। मृदङ्ग की आकृति वाला अति विपुल द्वार क्षुधा भय करता है और कुबड़ा द्वार कुल का नाश करता है। यदि उपरी काण्ठ आदि के भार से दबा हुआ द्वार हो तो गृह स्वामी को पीड़ा करता है। भीतर की ओर झुका हुआ द्वार हो तो गृह स्वामी की मृत्यु होती है, बाहर की ओर झुका हुआ द्वार गृह स्वामी को प्रवासी बनाता है और दिग्भ्रान्त (जिस दिशा का द्वार हो उस से भिन्न दिशा को देखता) हो तो गृह स्वामी को चोरों से पीड़ित करता है।[1] जितने सुन्दरता से मुख्य द्वार की रचना की गई हो, उसी तरह अन्य द्वार की रचना नहीं करनी चाहिये। कलश, श्रीफल, पत्र आदि से मुख्य द्वार की शोभा बढानी चाहिये।[2] गृह के बाहर ईशान आदि चारों कोनों में क्रम से चर की, विदारिका, पूतना और राक्षसी निवास करती है। पुर, भवन और ग्रामों के जो कोने हों उनमें निवास करने वाले को दोष होता है। किन्तु श्वपच (चाण्डाल आदि), अन्त्यज आदि की कोणों में निवास करने से उन्नति होती है।[3]

गृह समीप अन्य गृह का प्रभाव

गृह के समीप में मंत्री का घर हो तो धन नाश, धूर्त्त का गृह हो तो पुत्र नाश, देवता का गृह हो तो चित्त में खेद, चौराहा हो तो अकीर्ति और चैत्य (प्रधान) वृक्ष हो तो ग्रहों का भय होता है। दीमक (बांबी=दिवाड़) युत या पोली भूमि के समीप हो तो गृह स्वामी के ऊपर आपत्ति आती है। गृह के समीप गङ्गा हो तो प्यास का रोग और कछुए के समान आकृति वाली भूमि गृह के समीप हो तो धन नाश होता है।[4]

इस प्रकार 81 पद चक्र तथा 64 पद चक्र अधिकाधिक महत्वपूर्ण हैं। इसमें बृहत्संहिता को प्रमाण मानकर विश्लेषण किया गया। सभी वास्तुग्रन्थ इन प्रमाणों को प्रदर्शित करते हैं।

---

1. वहीं 53/79-81
2. वृहत्संहिता 53/82
3. वहीं 53/83-84
4. वृहत्संहिता 53/89-90

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

बहुमंजिले भवन एवं आवास

प्रो॰ वासुदेव शर्मा

वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान् स्वावेशो अनमीवो भवा नः।
यत्त्वेमहे प्रतितन्नो जुषस्व शन्नो भवद्विपदे शं चतुष्पदे।।[1]

भारतीय वास्तुशास्त्र की वैदिक और पौराणिक परम्परा के मूल पुरुष वास्तुपुरुष (वास्तोष्पति) की वैदिक प्रार्थना के साथ हमें वास्तुशास्त्र और शिल्पशास्त्र के पौराणिक स्वरूप का दर्शन वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों, शिल्पशास्त्रीय विधि विधानों, नियमों एवं यत्र तत्र विकीर्ण साहित्य में सम्यक्तया होता हैं। इसके साथ ही वास्तुशास्त्र के सहयोगी के रूप में शिल्पशास्त्र का उद्भव अथवा वास्तुशास्त्र के शिल्पशास्त्र में बदलते हुए स्वरूप का संकेत भी प्राप्त होता है। यदि हम कहें कि वास्तुशास्त्र प्रशस्तभूमि के लक्षण से प्रारम्भ कर भूमि के आकार प्रकार, प्लवत्व, उच्चत्व, नीचत्व, भूमिशोधन भूमिलक्षण, गृहारम्भ विधि, द्वारस्थापन विधि, गृहप्रवेशादि के विधानार्थ शुभाशुभ काल का निर्णय करता हैं तथा भवननिर्माणार्थ उपयुक्त भूखण्ड का चयन करने में हमारी सहायता करता है, और साथ ही आस-पास के वातावरण का अध्ययन कर भवननिर्माण का मार्ग प्रशस्त करता है। शिल्पशास्त्र के द्वारा हम भवननिर्माण की विभिन्न विधियों, विभिन्न प्रकार के अनेक विधशाल लक्षणों से युक्त, अनेक मंजिलों से युक्त भवनों का निर्माण करने हेतु भवननिर्माण सामग्री के साथ भवन की लम्बाई चौड़ाई और स्तम्भों के आधार पर भवननिर्माण विधि के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं। हम यहाँ वास्तुशास्त्र की दृष्टि में बहुमंजिलें भवन और आवास निर्माण हेतु आवश्यक भूमि चयन, भूमिलक्षण और भूशोधन की विधि से लेकर बहुमंजिलें भवननिर्माणोपयोगी विधि और निषेध का वर्णन करते हुए वास्तुशास्त्र की एक विशेष दृष्टि का विवेचन करेंगे। निम्न विवेचनीय विषयानुक्रमणी के द्वारा बहुमंजिले भवन और आवास के विषय में वास्तुशास्त्र के सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। जैसे 1. प्रशस्त भूमि का लक्षण। 2. भूमि के अष्टदिक् प्लवत्व का विचार। 3. भूमि का अष्टदिक् उन्नति का विचार। 4. वीथियों का विचार। 5. गजपृष्ठ आदि भूमि लक्षणों की बहुमंजिले भवनों में उपयोगिता। 6. भूमि के आकार और प्रकार का प्रभाव। 7. अष्टादश वास्तुभेदों का आवासीय इकाइयों पर सूक्ष्म प्रभाव। 8. बहुमंजिले भवन हेतु शिलान्यास, स्तम्भस्थापन और स्तम्भोच्छ्रायविधि। 9. 'उपर्युपरि भूमिका कल्पननियम'। 10. पिण्ड से बाहर की भित्ति का

1. ऋग्वेद 7/54/1

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

निर्माण। 11. बहुमंजिले भवनों में जलव्यवस्था। 12. जलाशय (स्वीमिंग पूल) निर्माण हेतु आवश्यक ज्ञातव्य। 13. मुख्यद्वार और अन्य द्वारों की स्थापना। 14. सीढ़ी, लिफ्ट आदि की व्यवस्था। 15. आसपास वृक्ष, वाटिका, बगीचा, वाटर फॉल आदि की व्यवस्था।

1. प्रशस्त भूमि का लक्षण

आचार्य वराहमिहिर ने प्रशस्त भूमि का लक्षण बताते हुए लिखा है कि जिस भूमि पर उत्तम औषधि, वृक्ष, लता उत्पन्न होते हैं, मिट्टी मधुर (मीठी) हो, सुगन्धित हो, चिकनी (स्निग्धा) हो, समतल हो, गर्त्त से रहित हो, जहाँ के वातावरण और भूखण्ड में परिश्रम से थके हुए प्राणी के शरीर को सुखशान्ति देने का सामर्थ्य हो ऐसे भूखण्ड पर ही बहुमंजिलें आवासीय निर्माण का आदेश वास्तुविद् को देना चाहिए क्योंकि ऐसा प्रशस्त भूमिलक्षण युक्त भूखण्ड ही वास्तुशास्त्र के अनुसार वहाँ निवास करने वाले को धन (श्री), सुख और शान्ति दे सकता है। जिस भूमि पर अनेक आवास निर्माण की सामूहिक योजना हो उस भूखण्ड का परीक्षण उसके लक्षण, आकार प्रकार, उच्चत्व, नीचत्व (प्लवत्व), पृष्ठत्व आदि के आधार पर कर लेना प्रथम आवश्यकता है, तथा मन को सन्तोष देने वाली भूमि ही ग्राह्य है। अतः वराहमिहिर और गर्ग आदि ऋषियों ने प्रथम दृष्ट्या प्रशस्त भूमि के लक्षणों के विषय में कहा है

शस्तौषधिद्रुमलता मधुरा सुगन्धा
स्निग्धा समा न सुषिरा च महि नराणाम्।
अप्यध्वनि श्रमविनोदमुपागतानां
धत्ते श्रियं किमुत शाश्वतमन्दिरेषु।।[1]

मनसश्चक्षुर्षो यत्र सन्तोषो जायते भुवि।
तस्याङ्कार्यम् गृहं सर्वैरिति गर्गादिसम्मतम्।।[2]

एक व्यक्ति को घर बनाने हेतु वास्तुशास्त्र भूमि परिक्षण का निर्देश देता है, इससे यह स्वतः सिद्ध है कि जिस भूमि पर सामूहिक बहुमंजिले आवासीय भवनों का निर्माण करना है, वहाँ भूमि का परीक्षण प्रथमतया करना अनिवार्य है।

2. भूमि के अष्टदिक् प्लवत्व का विचार

वास्तुशास्त्र में भूखण्ड का ऊँचा नीचा होना विशेष रूप से विचारणीय है अतः आठों दिशाओं में प्लवत्व का विचार सर्वप्रथम करना चाहिये क्योंकि कहा है **"विदध्यादचिरेणैव पूर्वादि प्लवतो मही"**। पूर्वादि दिशाओं में प्लवत्व का फल अति शीघ्र होता है अतः वास्तुशास्त्र

---

1. वृहत्संहिता 53/88
2. वास्तुसारसंग्रह 3/12

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

का स्वष्ट वचन है।

श्रियं दाहं तथा मृत्युं धनहानिं सुतक्षयम्।
प्रवासं धनलाभं च विद्या लाभं क्रमेण च।।

विदध्यादचिरेणैव पूर्वादिप्लवतो मही।
मध्यप्लवा मही नेष्टा न शुभा प्लवतत्परा।।[1]

इसको और स्पष्ट करते हुए लिखा है

शम्भुकोणे प्लवा भूमिः कर्तुः श्री सुखदायिनी।
पूर्वप्लवा वृद्धिकरी धनदा तूत्तरप्लवा।।

मृत्युशोकप्रदा नित्यमाग्नेयी दक्षिणप्लवा।
गृहक्षयकरी सा च भूमिर्यानिऋतिप्लवा।।

धनहानिकरी चैव कीर्त्तिदा वरूणप्लवा।
वायुप्लवा तथा भूमिर्नित्यमुद्वेगकारिणी।।[2]

जिस प्रकार भूमि का प्लवत्व शीघ्र ही आवास बनाने वाले और उस पर निवास करने वाले गृहस्वामी को शुभाशुभ प्रभाव से प्रभावित करता है उसी प्रकार सूक्ष्मदृष्टया आठ दिशाओं में भूमि की उन्नति भी प्रभावित करती है। यद्यपि उन्नति भी प्लवत्व सापेक्ष्य है तथापि विशेष उन्नति का पृथक् विचार करते हुए वास्तुविद्या में आवास निर्माणार्थ भूमि के उच्चत्व का विचार इस प्रकार किया गया है।

3. भूमि की अष्टदिक् उन्नति का विचार

इन्द्रोन्नतं पुत्रनाशं वह्न्युन्नतमथार्थदम्।
अग्निनीचोऽर्थनाशः स्यात् याम्योन्नतमरोगकृत।।

निऋत्युच्चे श्रियो लाभ पुत्रद वारूणोन्नतम्।
वायून्नतं द्रव्यनाशं सोम्योन्नतमथागदम्।।
ईशानोच्चं महाक्लेशं वास्तुविद्यादिति क्रमात्।।[3]

जिस प्रकार ईशान, पूर्व और उत्तर प्लव भूमि ही शुभ है उसी प्रकार अग्निकोण, दक्षिण, नैऋत्य, और पश्चिम में उन्नतियुक्त भूमि ही बहुमंजिले आवासीय निर्माणार्थ शुभ हो सकती है। यह

---

1. वृहद्वास्तुमाला, भूमिलक्षण श्लो. 35-36
2. वहीं श्लो. 37-39
3. वृहद्वास्तुमाला, भूमिलक्षण श्लो. 69-70

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

उच्चत्व और प्लवत्व यदि आमने-सामने की दिशाओं के सापेक्ष हो तो भूखण्ड की गोवीथि, जलवीथि, यमवीथि, गजवीथि, भूतवीथि, नागवीथि, वैश्वानरी वीथि, धनवीथि के रूप में परीक्षा कर प्रभाव का निरूपण वास्तुशास्त्र में किया गया है।

4. वीथियों का विचार

बहुमंजिले आवासीय भवनों का निर्माण जिस भूमि पर अभीष्ट हो उस भूखण्ड के उच्चत्व और प्लवत्व का विचार आमने-सामने की दिशाओं के सापेक्ष जब सूक्ष्मता से किया जाये तो भूमि का लक्षण गोवीथ्यादि अष्ट वीथियों के रूप में किया जाता हैं। वास्तुज्ञान के विशारदों ने कहा है

वारूणोच्चसमायुक्ता नीचमाहेन्द्रसंयुता।।
सा गोवीथिरिति ज्ञेया ऐन्द्रोच्चा नीच वारूणा।।
जलवीथिरिति प्रोक्ता वास्तुज्ञान विशारदैः।।[1]

सोमोच्चयमनीचा च यमवीथीति कथ्यते।
यमोच्चसोमनीचा च गजवीथीति कथ्यते।।
ईशोच्चं निर्ऋतौ नीचं भूतलं भूतवीथिकम्।।

आग्नेयोच्चं वायुनीचं नागवीथिति प्रशस्यते।
वायूच्चमग्निनीचं यद्वीथिं वैश्वानरीं विदुः।।
निर्ऋत्युच्चमीशनीचं धनवीथीत्युदाहृता।।[2]

इन वीथियो में गोवीथि, गजवीथी और धनवीथि ये तीन विथियां ही शुभ हैं। जब यह उच्चत्व और नीचत्व (प्लवत्व) परस्पर आमने-सामने की दिशा या विदिशा के सापेक्ष्य न हो अपितु दिशा-विदिशा के मध्य स्थान में उच्चत्व और नीचत्व आमने-सामने हो तथा एक या दो से अधिक परस्पर संल्लग्न दिशाओं में ऊंची तथा किसी एक दिशा या विदिशा में नीची भूमि हो तो इस प्रकार के लक्षणों से युक्त भूमि के वास्तुशास्त्र में 18 भेद मिलते हैं जैसे 1. पितामह, 2. सुपथ, 3. दीर्घायु, 4. पुण्यक, 5. अपथ, 6. रोगकृत, 7. अर्गल, 8. श्मशान, 9. श्येनक, 10. श्वमुख, 11. ब्रह्महन, 12. स्थावर, 13. स्थण्डिल, 14. शाण्डुल, 15. सुस्थान, 16. सुतल, 17. चर, 18. श्वमुख वास्तु। यहाँ इन 18 भेदों का प्रतिपादन करते हुए विचार किया गया है। इन पितामहादि वास्तु लक्षणयुक्त भूखण्डों पर बहुमंजिले भवन या सामूहिक आवासीय इकाइयों के निर्माण हेतु ब्राह्मणादि वर्ण भेद से सामूहिक आवास के निर्माण में उचित भूखण्ड का चयन करने में विशेष सहायता मिलती है।

---

1. वहीं श्लो. 42-43
2. वहीं श्लोक, 44-46

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

5. गजपृष्ठ आदि भूमिलक्षणों की बहुमंजिलें भवनों में उपयोगिता

सामुहिक आवासीय इकाइयों के निर्माण में एक साथ कई दिशाओं में ऊंचे और नीचे भूखण्डों का विचार और उन पर वास का परिणाम देखकर ही बहुमंजिलें भवनों का निर्माण करना चाहिये। निम्न चक्र से स्पष्ट है

नाम		लक्षण	वास परिणाम
गजपृष्ठ	-	दक्षिण पश्चिम नैऋत्य एवं वायव्य में उच्च	लक्ष्मी एवं आयु के लिये शुभ है।
कूर्मपृष्ठ	-	मध्य में उच्च एवं चारों ओर नीची	नित्योत्साह धन धान्य एवं विपुलता
दैत्यपृष्ठ	-	पूर्व, अग्नि एवं ईशान में ऊंची पश्चिम में नीची	लक्ष्मी, धन, पुत्र हानि एवं शुत्रुवृद्धि।

6. भूमि के आकार और प्रकार का प्रभाव

वास्तुशास्त्र में 16 प्रकार की भूखण्ड की आकृतियों का वर्णन है। जिनका भली प्रकार विचार करना बहुमंजिले भवनों के निर्माण के लिए आवश्यक है। भवननिर्माण हेतु भूमि की प्रशस्त आकृति आयताकार एवं चौकोर होती है। कहीं-कहीं चौकोर (सम-चतुरस्र) भूमि को प्रशस्त नहीं माना गया है। आयताकार भूमि की सर्वत्र प्रशंसा की गयी है। इनके अतिरिक्त भद्रासन एवं वृत्ताकार भूमि की भी प्रशंसा प्राप्त होती है।

आयते सिद्धयः सर्वाश्चतुरसो धनागमः।
भद्रासने कृतार्थत्वं वृत्ते पुष्टिविवर्धनम्।।[1]

आयताकार भूमि सभी सिद्धियों को प्रदान करने वाली, चौकोर भूमि धन प्रदान करने वाली, भद्रासन भूमि अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाली एवं वृत्ताकार भूमि पुष्टि प्रदान करने वाली होती है। इनके अतिरिक्त भूमि की आकृतियाँ चक्राकार, विषमबाहु, त्रिकोण, शकटाकृति, दण्ड, पणवाकृति, मुरज, बृहन्मुख, व्यजन, कूर्मपृष्ठ, धनुषाकृति एवं सर्वाकृति होती है। ये सभी आकृतियाँ त्याज्य है। जैसा कि में वर्णित है

आयते सिद्धयस्सर्वाश्चतुरस्रे धनागमः।
वृत्ते तु बुद्धिवृद्धिः स्याद्भद्रंभद्रासने भवेत्।।

1. वास्तुसौख्य 7/224

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

चक्रे दारिद्रयमित्याहुर्विषमे शोकलक्षणम्।
राजभीस्त्रिकोणे स्याच्छकटे तु धनक्षयः।

दण्डे पशु क्षयं प्राहुः शूर्पे वासे गवां क्षयः।
कूर्मे तु बन्धनं पीडा धनुः क्षेत्रे भयं महत्।

कुम्भाकारे कुष्ठरोगो भवत्येन न संशयः।
पवने नश्यति नेत्रं मुरजे बन्धुविनाशनम्।[1]

7. वास्तुभेदों का आवासीय इकाइयों पर सूक्ष्म प्रभाव[2]

1. पैतामह वास्तु – इन्द्राग्न्यन्तरमुच्चं स्यान्नीचं वरुणवातयोः
वास्तु पैतामहं विद्यान्नराणां कुरुते शुभम्।।

2. सुपथ वास्तु – याम्याग्न्यन्तरमुच्चं स्यान्नीचं मारुत सोमयोः।
सुपथं नाम तद्वास्तु प्रशस्तं सर्वकर्मणि।।

3. दीर्घायु वास्तु – सोमेशानन्तरं नीचमुच्चं निर्ऋतिकालयोः।
दीर्घायुर्नाम तद्वास्तु प्रशस्तं कुलवर्धनम्।।

4. पुण्यक वास्तु – ईशानेन्द्रानन्तरं नीचमुच्चं वरुणरक्षसोः।
पुण्यकं नाम तद्वास्तु द्विजानां शुभावहम्।

5. अपथ वास्तु – इन्द्राग्न्योरन्तरं नीचम् उच्चं वायुजलेशयोः।
अपथं नाम तद्वास्तु वेराय कलहाय च।।

6. रोगकृत् वास्तु – कालाग्न्योरन्तरं नीचमुच्चं स्याद्वायुसोमयोः।
रोगकृन्नाम तद्वास्तु नराणां रोगवृद्धिकृत्।।

7. अर्गल वास्तु – निर्ऋत्यन्तकयोर्नीचमुच्चं सोमशिवान्तरम्।
अर्गलं नाम तद्वास्तु ब्रह्महत्यादिनाशकृत्।।

8. श्मशान वास्तु – रुद्रेन्द्रान्तरमुच्चं स्यान्नीचं वरुणरक्षसोः।
श्मशानं नाम तद्वास्तु केवलं कुलनाशनम्।।

9. श्येनक वास्तु – नीचमग्नौ भवेदुच्चं निर्ऋतीशानवायुषु।
श्येनकं नाम तद्वास्तु नाशाय मरणाय च।।

---

1. वास्तुसंग्रह 3/14-17
2. वृहद्वास्तुमाला भूमिलक्षण श्लो. 47-64

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

10. श्वमुख वास्तु - (प्रथमभेद)
रुद्राग्निवरुणेषूच्चं नीचं स्यान्निर्ऋतौ तथा।
श्वमुखं नाम तद्वास्तु दारिद्रयं कारयेत्फलम्।।

11. ब्रह्मघ्न वास्तु -
नैर्ऋत्याग्निशिवेषूच्चं नीचं वह्नीन्द्रयोस्तथा।
ब्रह्मघ्नं नाम तद्वास्तु नेष्टं प्राणभृतां सदा।।

12. स्थावर वास्तु -
अग्नौ यदि भवेदुच्चं नीचं निर्ऋतिरुद्रयोः।
वातनिम्नं च तद्वास्तु स्थावरं नाम शोभनम्।।

13. स्थण्डिल वास्तु -
उच्चं निर्ऋति भागे स्यान्नीचं ज्वलनवातयोः।
रूद्रनिम्नं च तद्वास्तु स्थण्डिलं नाम शोभनम्।।

14. शाण्डुल वास्तु -
रुद्रोच्चं यदि निम्नं स्याद्वह्नौ निर्ऋतिवातयोः।
शाण्डुलं नाम तद्वास्तु प्रापयत्यशुभं सदा।।

15. सुस्थान वास्तु -
नैर्ऋत्याग्निशिवेषूच्चं नीचं चन्द्रमसंप्रति।
द्विजेन्द्राणान्तु सुस्थानमवनी समुदाहृता।।

16. सुतल वास्तु -
नीचमिन्द्रे भवेदुच्चं निर्ऋत्यां पश्चिमानिले।
सुतलं नाम तद्वास्तु राजराष्ट्रविवर्धनम्।।

17. चर वास्तु -
सौम्येशपवनेषूच्चं नीचं भवति चेद्यमे।
नाम्ना वास्तु चरं यत्स्याद्वैश्यानां तदभीष्टदम्।।

18. श्वमुख वास्तु - (द्वितीय भेद)
नीचं वारुणमुच्चं चेदीशानेन्द्राग्निसु क्रमात्।
श्वमुखं नाम तद्वास्तु शूद्राणां तदभीष्टदम्।।

8. बहुमंजिल भवन हेतु शिलान्यास स्तम्भस्थापन और स्तम्भोच्छ्रायविधि

सामान्यगृह निर्माण में शिलान्यास और स्तम्भस्थापन का नियम कश्यप के **"सूत्रभित्ति शिलान्यास स्तम्भस्यारोपणम् तथा पूर्वदक्षिणयोर्मध्ये कुर्यादित्याह कश्यपः"** इस वचनानुसार अग्निकोण में ही करने का ही नियम है। आचार्य शार्ङ्गधर के मत में भी प्रासाद (राजभवन), हर्म्य=धनिकों के बहुमंजिल आवास, अन्य बहुमंजिल आवासीय व्यावसायिक गृह (शापिंग काम्प्लेक्य, माल्य) चिकित्सालय तथा अन्य कार्यालयो में भी प्रथम स्तम्भ (पिलर) का स्थापन अग्निकोण में ही करना चाहिये। यथा

प्रासादेषु च हर्म्येषु गृहेष्वन्येषु सर्वदा।
आग्नेम्याम् प्रथमम् स्तम्भं स्थापयेद्विधानतः।।[1]

1. वृहद्वास्तुमाला शिलायास श्लोक 125

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

पुनः अन्य स्तम्भों की स्थापना प्रदक्षिण क्रम से करनी चाहिये। बृहद्वास्तुमाला में प्रथमप्रकरण में शिलान्यास विधि की चर्चा करते हुए लिखा है

दक्षिणपूर्वे कोणे कृत्वा पूजां शिलां न्यसेत् प्रथमाम्।
शेषाः प्रदक्षिणेन स्तम्भांश्चैव प्रतिष्णथाः।।[1]

मंजिलों के आधार पर बहुमंजिले आवासों का भार प्रमाण सहने के क्रम में 5 प्रकार के स्तम्भ ही शुभ कहे गये हैं। उनके नाम, कोणमान, आकृति और स्तम्भ के नवधाभाग कर स्तम्भ के ऊपर-नीचे की रचना के विषय में आचार्य वराहमिहिर कहते हैं

समचतुरस्रो रुचको वज्रोऽष्टास्त्रिर्द्विवज्रको द्विगुणः।
द्वात्रिंशता तु मध्ये प्रलीनको वृत्त इति वृत्त।।[2]

इस प्रकार चार समान कोण वाला समचतुरस्रस्तम्भ रुचक कहलाता है। अधिकांश बहुमंजिले भवनों में इस ही प्रकार के स्तम्भों का प्रयोग होता है। आठ कोण वाला स्तम्भ वज्र, 16 कोण वाला द्विवज्र 32 कोण वाला स्तम्भ प्रलीनक होता है। इन चार प्रकार के स्तम्भों के अतिरिक्त गोलाकार (वृत्ताकार) स्तम्भ वृत्त कहलाता है। वृत्ताकार स्तम्भ का प्रयोग नदियों के पुल बनानें में प्रायः किया जाता है। बहुमंजिले आकार में ऊंचाई के मान को 9 से गुणा कर 80 से भाग देने पर जो लब्धि मिले तत्तुल्य स्तम्भ के मूल की पृथुता (मोटाई) होनी चाहिये, इस पृथुता (मोटाई) का दशमांश हीन स्तम्भ का अग्रभाग (ऊपर स्तम्भ समाप्ति का भाग) होना चाहिये। **"उच्छ्रायात् नवगुणितेऽशीत्यंशः स्तम्भस्य (पृथुत्वम्), दशांश हीनोऽग्रभागः"** यह नियम स्तम्भ निर्माण का है। स्थापित स्तम्भ के नवधा भाग करके उनके नाम वराहमिहिर ने इस प्रकार लिखे हैं

स्तम्भं विभज्य नवधा वहनं भागो घटोऽस्त भागोऽन्यः।
पद्मं तथोत्तरोष्ठं कुर्याद्भागेन भागेन।।[3]

तात्पर्य यह है स्तम्भ के नौ भागों में प्रथम (भूमि के अन्दर का) भाग 'वहन', द्वितीय भाग 'घट' तृतीय भाग 'पद्म' चतुर्थ भाग उत्तरोष्ठ पुनः इसी प्रकार वहन-घट-पद्म-उत्तरोष्ठ तथा नवम भाग पुनः वहन रूप में कल्पना करें। स्तम्भ स्थापना के समय छत्र, माला, वस्त्र, धूप आदि से पूजन कर स्तम्भोच्छ्राय विधि सम्पन्न करनी चाहिये।

9. उपर्युपरि भूमिका कल्पन नियम

वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों में बहुमंजिलें भवन बनाने का निर्देश आचार्य वराहमिहिर के बृहत्संहिता ग्रन्थ के वास्तुविद्याध्याय में इस प्रकार मिलता है

1. वहीं श्लो. 124
2. वृहत्संहिता 53/28
3. वहीं 53/26-27

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

विस्तारषोडशांशः सचतुर्हस्तो भवेद् गृहोच्छ्रायः।
द्वादशभागेनोनो भूमौ भूमौ समस्तानाम्।।[1]

प्रथममंजिल की ऊंचाई गृह के विस्तार का 16 वां भाग चार हाथ जोड़कर समझनी चाहिये। प्रथम खण्ड की ऊंचाई में उसी का 12वां भाग घटाकर द्वितीय मंजिल की ऊंचाई समझें। द्वितीयमंजिल की ऊंचाई के मान मे उसी का 12वां भाग घटाकर तृतीय मंजिल की ऊंचाई जानें। परन्तु यह विधि आधुनिक समय में मान्य नहीं है क्योंकि आजकल बहुमंजिले भवनों में सभी मंजिलों की ऊंचाई समान रखी जाती है। उपरोक्त प्रकार से अधिक से अधिक चार-पांच मंजिले आवास ही बनाये जा सकते हैं। **"द्वादशभागेनोनो भूमौ-भूमौ समन्तानाम्"** यह नियम मंजिल निर्माण में एक मर्यादा की तरफ भी संकेत करता प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त वास्तुशास्त्र में विस्तार दैर्घ्य और उच्छ्राय का नियम एकशाला आदि गृहों में निर्धारित करने की परम्परा के विषय में वराहमिहिर बृहत्संहिता में राजपुरूषों के गृह निर्माण प्रसंग में कहते हैं

वास्तुनि यो विस्तारः स एव चोच्छ्रायनिश्चयः शुभदः।
शालैकेषु गृहेष्वपि विस्ताराद्द्विगुणितं दैर्घ्यम्।।[2]

इसका तात्पर्य यह है कि वास्तु नियमानुसार गृह के विस्तार तुल्य ऊंचाई भी एकशाल गृह में रखी जा सकती है परन्तु विस्तार से द्विगुणित दैर्घ्य भी होना चाहिये। कश्यप विस्तार तुल्य ऊंचाई का समर्थन केवल चतुःशाल गृहों के लिये उपयुक्त मानता है इन्होनें ही विस्तार से द्विगुणित दैर्घ्य का नियम एकशाल गृहों के लिये बताते हुए ही लिखा है। यथा

चतुश्शालगृहेष्वेव मुच्छ्रायो व्यास समम्मितः।
विस्तारं द्विगुणम् दैर्घ्यम् एकशालयुतस्य च।।[3]

इससे यह बात सिद्ध होती है कि बहुमंजिले भवनों में भी एकसमान ऊंचाई केवल चतुशाल आदि गृहों में ही की जा सकती है। एकशाल गृहों में उपरि-उपरि भूमिका कल्पना में "रत्नकोश के वचन" **"विस्तार षोड़शांशः सचतुर्हस्तो गृहोच्छ्रायः"** तथा **"द्वादशभागेनोनो भूमौ-भूमौ समन्तानाम्"** के द्वारा ही निर्णय करना चाहिये। यहाँ यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि यह नियम वराहमिहिर राजा, सेनापति, मन्त्री, राजमहिषी युवराज, युवराजानुज, सामन्त, कञ्चुकि, वेश्या, कर्माध्यक्ष, ज्योतिषी, पुरोहित, वैद्य आदि के लिये गृहप्रमाण के प्रसंग में न्यूनतम 20 हाथ विस्तार 20 हाथ दैर्घ्य से लेकर अधिक से अधिक 108 हाथ विस्तार और 135 हाथ दैर्घ्य वाले गृहप्रमाणों के लिये ही हैं। 20 हाथ विस्तार और 20 हाथ दैर्घ्य से न्यून आधुनिक गृहों के निर्माण में मंजिल निर्माण के लिये **"द्वादशभागेनोनो भूमौ-भूमौ समन्तानाम्"** का नियम अनुपयोगी होगा।

1. वृहत्संहिता 53/22
2. वहीं 53/11
3. वहीं विमला टीका 53/11

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

10. पिण्ड से बाहर भित्ति (बाडन्ड्री) का विचार

पिण्ड से तात्पर्य है जितने स्थान पर समग्र भूखण्ड के भीतर आवासीय इकाइयों का निर्माण किया जाए। सुरक्षा हेतु चारों तरफ पिण्ड से बाहर और अन्दर भित्ति का निर्माण करना चाहिये। जैसे बृहद्वास्तुमाला मे लिखा है

पाषाणे सर्वतो बाह्यमिष्टकायां तदर्द्धकम्।
मृत्तिकायां पिण्डमात्रमित्युक्तं रुद्रयामले।।
पाषाणीभित्तिका ग्राह्या सर्वदा कारिकारमते।।[1]

बाहर की भित्तिका (बाहरी दीवार) पाषाण से ही बनानी चाहिये।

11. बहुमंजिले भवनों में जल व्यवस्था

वास्तुशास्त्र के नियमानुसार अन्तर्जल की व्यवस्था, कुँआ, बोरिंग आदि ईशान पूर्व या उत्तर में ही करनी श्रेष्ठ होती हैं क्योंकि सभी के लिये सामूहिक रूप से जल सप्लाई की व्यवस्था मुहूर्त्तचिन्तामणिकार ने इस प्रकार नहीं है

कूपे वास्तोर्मध्यदेशेऽर्थनाशस्त्वैशान्यादौ पुष्टिरेश्वर्यवृद्धिः।
सूनोर्नाशः स्त्रीविनाशो मृतिश्च सम्पत्पीडा शत्रुतः स्याच्च सौख्यम्।।[2]

तात्पर्य है केवल पूर्व, ईशान, उत्तर और पश्चिम दिशा में ही जलव्यवस्था श्रेष्ठ होती है।

12. जलाशय (स्वीमिंग पूल) निर्माण हेतु आवश्यक ज्ञातव्य

बहुमंजिले निर्माण, होटल आदि में स्वीमिंग पूल (तरणताल) आदि का निर्माण भी विशेष विचारणीय विषय है दशदिक्पालों में पश्चिम दिशा के अधिपति वरुण हैं अतः तरणताल केवल पश्चिम दिशा में ही बनाना चाहिये।

13. मुख्यद्वार और अन्य द्वारों की स्थापना

बहुमंजिले आवासीय भूखण्ड की बाहर दीवारी पर मुख्य द्वार की स्थापना पूर्व या उत्तर में करनी चाहिये पश्चिम में भी द्वार किया जा सकता है। विशेष रूप से दिशा के 9 भाग करके ही दाहिनी और से 5 भाग और बाई ओर से तीन भाग छोड़कर शेष एक भाग में द्वार की स्थापना करनी चाहिये। वास्तुसौख्य में लिखा है

---

1. वृहत्वास्तुमाला, भिति. स्था. श्लो. 117-118
2. मुहूर्त्तचिन्तामणि 12/20

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

नवभागं गृहं कृत्वा पञ्चभागं तु दक्षिणे।
त्रिभागं वामतः कृत्वा शेषं द्वारं प्रकल्पयेत्।।[1]

पृथक्-पृथक् फ्लेट में (आवासीय गृह में) मध्यभाग में प्रमुख द्वार नहीं होना चाहिये। यथा "गृहमध्ये कृतं द्वारं द्रव्यधान्य विनाशनम्"[2] प्रमुख द्वार कोणों में नहीं बनाने चाहिये। वास्तुमण्डल की शिराएं, वंश और मर्मस्थल के वेध स्थानों पर द्वारस्थापन न करें।

14. सीढ़ी लिफ्ट आदि की व्यवस्था

बहुमंजिले भवनों में सीढ़ी और लिफ्ट की व्यवस्था एक प्रधान और बहुत ही महत्वपूर्ण निर्माण है। वास्तुशास्त्र में चल और अचल दो प्रकार की सीढ़ियों का उल्लेख प्राप्त होता है। सीढ़ी के ऊपर का द्वार पूर्व या दक्षिण में प्रशस्त होता है। सीढ़ी का निर्माण गृह के पश्चिम या उत्तर दिशा में होना चाहिये। सीढ़ी का निर्माण दक्षिणावर्त होना चाहिये सीढ़ी का ऊपरी द्वार नीचे के द्वार से 12 भाग कम होना चाहिये। राजवल्लभमण्डल ग्रन्थ में लिखा है

भूम्यारोहणमूर्ध्वतस्तदुपरि प्राग्दक्षिणं शस्यते।
द्वारं तूर्ध्वभवं च भूमिरपरा ह्रस्वार्कभागैः क्रमातः।।

प्रासादे च मठे नरेन्द्रभवने शैलः शुभो नो गृहे।
तस्मिन् भित्तिषु बाह्यकासु शुभदः प्राग्भूमि कुम्भ्यां तथा।।[3]

बहुमंजिले भवनों में पश्चिम दक्षिण दिशा में लिफ्ट लगाना उत्तम रहता है। जिनमें एक से अधिक लिफ्ट का निर्माण अभिप्रेत हो उन्हें सीढ़ी निर्माण के अनुसार दिशाओं का चयन करना चाहिये। एक मत यह भी है कि सीढ़ियों की संख्या विषम होने पर पुरुषों की प्रधानता तथा सम होने पर स्त्रियों की प्रधानता होती है।

शिरामर्माणि वंशाश्च नालमध्यं च सर्वशः।
विहाय वास्तुमध्यञ्च द्वाराणि विनिवेशयेत्।।[4]

द्वार के ऊपर दूसरा तथा अन्यगृह के प्रमुख द्वार के सामने अपने गृह का मुख्य द्वार वास्तुशास्त्र के अनुसार नहीं होना चाहिये। बहुमंजिले भवनों में इस नियम का खुला विरोध देखने में आता है। अतः वास्तुसौख्यकार का यह नियम विचारणीय है कि **द्वारस्योपरि द्वारं द्वारं द्वारस्य सम्मुखम्। न कर्त्तव्यं पदं यस्मात्तद्गृहं न सुखावहम्।।**[5]

---

1. वास्तुसौख्य 9/323
2. विश्वकर्माप्रकाश, द्वारनिर्माण प्र. श्लो. 78
3. वास्तुराजवल्लभ 5/36
4. वास्तुसौख्य 9/336, पृष्ठ 120
5. वास्तु सौख्य 9/373

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

तात्पर्य है कि बहुमंजिले भवनों में प्रत्येक फ्लैट या तो आमने-सामने दिशा में प्रधान द्वार वाला होगा अथवा एक ही दिशा में ऊपर नीचे सभी के द्वार होंगे। अतः मुख्य द्वारों का निर्माण वास्तुशास्त्रीय पूर्व पश्चिम दक्षिण उत्तर दिशा के वास्तुपद विन्यास क्रम से पूर्व में जयन्त और इन्द्र के पद पर, दक्षिण में गृहक्षत और गन्धर्व पद पर पश्चिम में वरुण और पुष्पदन्त के पद पर तथा उत्तर में सोम और भल्लाट के पद पर करना चाहिये, क्योंकि बहुमंजिले आवासीय भवनों में जाति, वर्ग, राशि, चन्द्रमा और नक्षत्र आदि का विचार न करके सामुहिक रूप से शुभाशुभत्व का निर्णय मुख्यद्वारस्थापना में वास्तुपदविन्यास के अनुसार करना चाहिये।

15. बहुमंजिले भवनों के आसपास वृक्ष, वाटिका आदि व्यवस्था

बहुमंजिली आवासीय इकाइयों को सुन्दर एवं सुखद बनाने के लिये आसपास के पर्यावरण की शुद्धि के लिये चारों ओर वृक्षारोपण का वर्णन सभी वास्तु ग्रन्थों में प्राप्त होता है। भूखण्ड के मध्यभाग में केवल तुलसी का पौधा ही ग्राह्य है। वास्तुप्रबोध में लिखा है

यदि स्वर्णमयं वृक्षम् गृहमध्ये न रोपयेद्।
अजिरे तुलसी वृक्षम् रोपयेऽधनाशनम्।।[1]

भूखण्ड मे निर्मित आवासीय इकाइयों के दक्षिण में गूलर, पश्चिम में पीपल, उत्तर मे प्लक्ष (फकड़), पिलखन, पूर्व में वट वृक्ष शुभ होता है। **उदगादिषु प्रशस्ताः प्लक्षवटोदुम्बराश्वत्थाः**[2], बेल, अनार, नागकेसर, कटहल, नारियल तथा नीम वृक्ष भी आसपास प्रशस्त है

यत्र-तत्र स्थिताः वृक्षाः बिल्वदाड़िमकेसराः।
पनसो नारिकेलश्च शुभं कुर्वन्ति नित्यशः।।[3]

इन सब के साथ यह भी विचार कर लें कि एकप्रहर के बाद किसी भी वृक्ष की छाया आवासों पर न पड़े क्योंकि यह छाया दोष गृहस्वामी के लिये शुभ नहीं है। **यामाद्ध्र्वमशेषवृक्षजनिता छाया न शस्ता गृहे**[4] इस नियम का ध्यान रखते हुए पर्याप्त दूरी पर ही पूर्व, उत्तर, ईशान में बगीचा, वाटिका, वाटर फाल आदि की व्यवस्था करें। इस प्रकार वास्तुशास्त्र की दृष्टि में बहुमंजिले आवासीय भवनों के निर्माण में भूमि परीक्षा, उचित भूखण्ड के चयन से लेकर स्तम्भ आदि स्थापन कर उचित काल में गृहारम्भ, द्वारस्थापना, छत निर्माण, सीटी लिफ्ट आदि की कल्पना सम्पन्न कर सामूहिक वास्तुशान्ति का आयोजन कर इच्छुक जनो को फ्लैट आवण्टन की प्रक्रिया सम्पन्न करानी चाहिये।

---

1. वास्तुप्रवोध
2. वृहत्संहिता 52/83
3. वास्तुसौख्य 3/34
4. वास्तुराज वल्लभ 1/28

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

कूप एवं जलाशय निर्माण

अखिलेश कुमार शर्मा

विश्व की प्राचीनतम ज्ञान राशि वेद है। वैदिक वाङ्मय भारतीय जीवन दर्शन के उत्कर्ष एवं सांस्कृतिक विरासत की अनुपम मणिमंजूषा है, लेकिन शब्द ब्रह्म के निष्ठावान उपासक ही वैदिक वागमय की उस दिव्य मंजूषा से उन मणि रत्नों का आहरण कर सकते हैं, जिसकी देदीप्यमान एवं जाज्वल्यमान आभा से भारतीय जनमानस अतीत में समृद्ध एवं समुन्नत रहा है और भविष्य में भी समुन्नतर हो सकता है। वैदिक चिंतनधारा विविध रूपिणी एवं बहुमुखी रही है। प्रत्येक मानवीय कार्य क्षेत्र में, युद्ध एवं शांति की प्रत्येक कला में, राजनीति एवं शासन व्यवस्था में, संगीत एवं साहित्य में, नृत्य एवं चित्रकला में, वास्तु विद्या अथवा स्थापत्य के निर्माण-विधान में भारतीय चिंतनधारा विकसित हुई और उसने ऐसे नए आयाम तथा आदर्श स्थापित किए हैं जिनकी प्रशंसा सारा संसार मुक्त कंठ से करता है। वैदिक ज्ञान के अनुसार, ईश्वर ने मनुष्य को अपना प्रतिरूप बनाकर विवेक एवं बुद्धि वैभव से सम्पन्न किया है। जिससे सृष्टि की व्यवस्था और धरती पर उद्भूत जीवों का संरक्षण हो सके। आधुनिक उपभोगवादी एवं सर्वविध सापेक्ष सुविधावादी जीवन पद्धति के उत्कर्ष के लिए विज्ञान ने असंख्य उपादान एवं साधन भूत उपकरण दिए हैं। जीवन को सुखी, सुरक्षित एवं शांतिमय बनाने के लिए जिन-जिन महत्त्वपूर्ण एवं अपरिहार्य उपकरणों की आवश्यकता होती है, उनमे निवास हेतु गृह निर्माण सबसे महत्त्वपूर्ण है।

वैदिक वाङ्मय में वास्तु का सामान्य अर्थ गृह या भवन तथा विशेष अर्थ गृह निर्माण करने योग्य भूखंड होता है। वास्तु का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है वह भवन जिसमें मनुष्य निवास करते हैं। जब एक अनियोजित भूखंड को सुनियोजित स्वरूप प्रदान किया जाता है तब वह वास्तु पद से व्यवहृत होता है। अतः भवन, दुर्ग, प्रासाद, महल, मठ, मंदिर तथा नगरादि ऐसी समस्त रचनाएँ जिनमें मनुष्य वास करते हैं, वास्तु कहलाते हैं। आचार्य चाणक्य ने भी अर्थशास्त्र में इस वास्तु शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में ही किया है। उनके मतानुसार तो गृह, क्षेत्र, वाटिका, बाँध सेतु, प्रत्येक प्रकार का भवन, तड़ागादि सभी वास्तु हैं। अतएव वास्तु कला का अर्थ गृह निर्माण कला हो गया और तदनुसार वास्तु शास्त्र का एक मात्र प्रतिपाद्य विषय आवासीय एवं व्यावसायिक भवनों, देवमंदिरों, बाँधों, सेतुओं एवं तड़ागों अर्थात् प्रत्येक तरह के भवन, क्षेत्र, वाटिका आदि की रचना के सिद्धांतों, प्रविधियों, उपायों एवं साधनों की व्याख्या करना है।

हमारे तपस्वी ऋषियों ने योग साधना और तपस्या के उच्च शिखर पर **'यत् पिण्डे तत् ब्रह्मांडे'** के सिद्धांत को प्रतिपादित किया। जीव और ब्रह्मांड के पारस्परिक संबंध से घटने वाले घटनाक्रम का व्यापक अध्ययन किया तथा पंच महाभूतों से निर्मित प्राणी के जीवन का इन पंच

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

महाभूतों से ही निर्मित इस विराट ब्रह्मांड के वातावरण के साथ सामंजस्य कैसे स्थापित हो, इसका भी अध्ययन किया। जिससे व्यक्ति स्वस्थ, सुखी और समृद्ध रहे। इस महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए भारतीय वास्तु शास्त्र के ऋषियों ने विविध नियमों एवं सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। वस्तुतः इस ब्रह्मांड और ब्रह्मांड में निवास करने वाले प्राणियों में रचना के धरातल पर तात्विक दृष्टि से एक विशेष प्रकार की समानता है। समस्त प्राणी पंच महाभूतों (पृथ्वी, जल, तेज (अग्नि), वायु एवं आकाश) से ही बने हैं और इनके संतुलन से प्राणी में निरंतर सक्रियता एवं स्फूर्ति रहती है एवं असंतुलन से निष्क्रियता बढ़ती है, जिससे जीवन दुःखमय हो जाता है। वास्तुशास्त्र का मुख्य प्रतिपाद्य विषय यह है कि व्यक्ति अपने आवास में पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश का समुचित प्रबंधन एवं अधिकतम सदुपयोग कैसे करे? जिससे उसका जीवन रोग मुक्त, सुरक्षित एवं सभी प्रकार से सुविधामय हो सके। इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें पंच महाभूतों के बारे में जानना आवश्यक है। जो इस प्रकार है–

पृथ्वी

संसार में उत्पन्न सभी प्राणियों को मातृवत आश्रय देने के कारण यह पृथ्वी हमारी माता है तथा विश्व को धारण करने के कारण इसको आधार शक्ति भी कहा गया है। हमारे आहार, विश्राम एवं जीवन की अन्य अधिकतम गतिविधियों का आधार पृथ्वी ही है। पृथ्वी के बिना आवास एवं जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। प्राणी मात्र का शरीर पंच महाभूतों से बना है और इनमें सबसे बड़ा भाग पृथ्वी तत्व का ही होता है। शरीर में पृथ्वी तत्व के बाद जल, तेज, वायु एवं आकाश के भाग उत्तरोतर कम होते जाते हैं। उसी प्रकार किसी भी प्रकार के आवास में सबसे बड़ा भाग पृथ्वी तत्व का होता है एवं जल आदि तत्व उत्तरोतर कम होते चले जाते हैं। इस पृथ्वी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि गुरुत्व शक्ति एवं चुम्बकीय शक्ति का केंद्र है। इसी कारण पृथ्वी के घनत्व का निर्णय किया जाता है एवं भवन के टिकाऊपन का फैसला किया जाता है। अगर ये शक्तियाँ पृथ्वी में न होती तो भवन निर्माण की कल्पना नहीं की जा सकती थी। किसी भी भूखंड पर भवन निर्माण के लिए पृथ्वी तत्व का विचार हम–भूमि की परीक्षा, मिट्टी की गुणवत्ता, भूमि का ढलान, भूमि का शुभाशुभत्व, शल्योद्धार, भूखंड का चयन, भूखंड का आकार, भूखंड का विस्तार, समीपवर्ती मार्ग एवं वेध आदि के माध्यम से करते हैं।

जल

वनस्पति एवं जीव–जंतु दोनों ही वर्गों के समुदायों के अस्तित्व को कायम रखने के लिए जल एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण तत्व है। पंच महाभूतों में पृथ्वी के बाद जल तत्व ही हमारे जीवन के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण है। दोनों ही वर्गों के लिए जल जीवन का आधार है। जीव–जंतु और पशु–पक्षी जल पीकर तथा वनस्पति जड़ों द्वारा जल ग्रहण कर जीवित रहते हैं। पृथ्वी के लगभग दो तिहाई भाग पर जल विद्यमान है, जो सागरों, नदियों, झीलों, जलाशयों एवं कुंओं के रूप में पाया जाता है। पृथ्वी पर अधिकतम लोगों का वास ऐसे स्थान पर है जहाँ जल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

होता है। सागर, नदी एवं झील के किनारों पर बसे नगर एवं बस्तियाँ इस बात की प्रमाण है। जल की उपलब्धि हेतु, बोरिंग, नलकूप, कुंआँ, भूमिगत टंकी, ओवर हैड टंकी एवं नगर विकास एजेंसियों द्वारा उपलब्ध नल आदि जलीय स्रोत है।

तेज (अग्नि)

जल के बाद तेज अथवा अग्नि तत्व का क्रम आता है। तेज या अग्नि ही संसार का आधार है। शरीर में जब तक ताप है, तब तक जीवन है और इसके ठंडा पड़ते ही जीवन समाप्त हो जाता है। अग्नि, प्रकाश एवं ताप के रूप में ऊर्जा का संचार करता है। इस विश्व में सूर्य ऊर्जा एवं ऊष्मा का मुख्य केंद्र है। इसीलिए सूर्य को जगत की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। यह पूरे विश्व को केवल ऊर्जा, ऊष्मा एवं प्रकाश ही न देता अपितु इसकी सापेक्षता में पृथ्वी की गति से दिन एवं रात बनते हैं, एवं ऋतुओं का परिवर्तन होता है। इसीलिए भवन निर्माण करते समय सूर्य के प्रकाश, ताप ऊष्मा तथा ऊर्जा की समुचित प्राप्ति को ध्यान में रखते हुए भूखंड भी स्थिति के विचार के साथ-साथ द्वार, बरामदा, रसोईघर, खिड़कियों, झरोखों तथा खुले स्थान का विचार अग्नि तत्व की समुचित उपलब्धि के लिए किया जाता है।

वायु

इस जगत के प्राणियों के लिए जल के समान वायु भी महत्त्वपूर्ण है। पृथ्वी पर न केवल स्थलचर, नभचर एवं जलचर अपितु पेड़ पौधे व वनस्पति भी वायु के सहारे जीवित रहते हैं। अगर पृथ्वी वायुविहीन होती तो ऐसी वायुशून्य पृथ्वी पर न बादल होते, न वर्षा होती, न जल प्रवाह होता और न सांस लेने के लिए वायु मिलती। वायुमंडल की ओजोन गैस की ऊपरी परत सूर्य की पराबैगनी किरणों को सोख लेती है जिससे पृथ्वी पर पड़ने वाले भयंकर ताप से जीवन की रक्षा होती है। मानव शरीर में प्राण, अपान, व्यान, उदान एवं समान नामक पाँच प्रकार की वायु, शरीर का संचालन करती है। जब तक यह वायु शरीर में सक्रिय है, तब तक जीवन है और जब यह शांत हो जाती है तो शरीर भी चरम शांति को प्राप्त कर लेता है। वायु की इस महत्ता को देखते हुए वास्तु शास्त्र के सिद्धांतों में भवन निर्माण के लिए विशुद्ध वायु के समुचित आवागमन के लिए भूखंड के आसपास के वातावरण, खुली जगह, खिड़कियों, दरवाजों तथा छत की ऊँचाई आदि के विचार के साथ-साथ विशुद्ध वायु की प्राप्ति के लिए पर्यावरण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण वृक्षारोपण का विचार भी किया गया है। जिससे भवन-निर्माण के उपरांत उस घर के निवासियों को वायु तत्व का शुद्ध और संतुलित लाभ मिल सके।

आकाश

चारों महाभूतों को व्याप्त करके रहने वाले आकाश तत्व का अपना विशेष महत्त्व है। आकाश स्वयं स्थान नहीं घेरता अपितु अन्य समस्त वस्तुओं को अपने में स्थान देता है। अतः अवकाश प्रदान करना आकाश का गुण है। सबको ठहरने के लिए आकाश ही स्थान देता है, चाहे वे स्थूलभूत हो या उनके विकार चारों भूत और चारों भूतों के कार्य आकाश में रहते हैं। इस ब्रह्मांड

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

में आकाश के कारण ही पृथ्वी, जल, अग्नि एवं वायु का समूह एकत्र नहीं हो पाता है। यदि आकाश इनमें अव्यूह रूप में व्यक्त न होता तो न पृथ्वी का वर्तमान स्वरूप होता और न ही अगणित लोक लोकान्तर बन पाते। न वृष्टि होती न सृष्टि होती, न ब्रह्मांड होता वस्तुतः कुछ भी नहीं होता क्योंकि प्रत्येक क्रिया या गतिविधि के लिए खाली स्थान चाहिए। भोजन द्वारा प्राप्त खाद्य पदार्थों के पचने के लिए भी खाली स्थान की आवश्यकता होती है अन्यथा इसके अभाव में जीवन नष्ट हो जाएगा। पेड़-पौधों के तनों के अंदर भी कुछ रिक्त स्थान होता है जिसके माध्यम से पोषक तत्व पत्तियों तक पहुँचता है। वृक्षों को बढ़ने के लिए भी खुली जगह की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार प्राणी के शरीर के समस्त अंग अपनी-अपनी स्वाभाविक क्रियाएँ आकाश की उपलब्धि एवं सहायता से करते हैं उसी प्रकार भवन के भीतर एवं बाहर समस्त गतिविधियाँ आकाश की व्यवस्थित उपलब्धि से ही चलती है। भवन के अंदर बातचीत, गाना-बजाना, रोना-धोना, हँसना-खेलना और अन्य कार्य करने में आकाश हमारी सहायता करता है। इसी कारण वास्तुशास्त्र में भवन निर्माण के सिद्धांतों में भवन के चारों ओर तथा भवन के मध्य खुला स्थान छोड़ने के निर्देश के साथ-साथ एक शाल, द्विशाल, त्रिशाल, चतुःशाल, भवन की ऊँचाई तथा छत की ऊँचाई आदि का विशेष विचार किया जाता है जिससे आकाश तत्व का भवन निर्माण में समुचित उपयोग किया जा सके।

कूप निर्माण

अब हम पंच महाभूतों में से प्रमुख तत्व जल के स्रोतों कूप एवं जलाशय के निर्माण की चर्चा करेंगे। वैज्ञानिक दृष्टि से इस ब्रह्मांड में जिस-जिस ग्रह या उपग्रह पर जल पाया जाता है–वही प्राणी के जीवन का अस्तित्व मिलता है। आजकल कूप प्रायः लुप्त हो चुके हैं। उसका स्थान बोरिंग ने ले लिया है। आजकल कूप के स्थान पर बोरिंग की जाती है। इसलिए यह लोकोक्ति एकदम खरी है कि 'जल ही जीवन है'। इस चराचर जगत में जो भी रस तत्व है वह जल के कारण ही है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में कहा गया है कि– भूलोक एवं स्वर्गलोक में पानी के बिना जीवन असंभव है। इसलिए धर्मात्मा एवं विद्वान् पुरुष को चाहिए कि वह अनेक स्थानों पर जलाशयों का निर्माण कराए। कुँआ खुदवाने का फल अग्निष्टोम यज्ञ के समान है, वह भी यदि मरुस्थल में खुदवाया जाए तो उसका अश्वमेध यज्ञ के बराबर फल होता है। पर्याप्त जल वाला कूप, खुदवाने वाले के समस्त पापों का हरण कर लेता है। कुँआ का निर्माण करने वाला पुरुष स्वर्ग में जाकर सब प्रकार के सुखों का उपभोग करता है। उसमें भी भोग की निपुणता स्थान विशेष के आधार पर कही गई है।[1]

गृह निर्माण से लेकर सतत् निवास करने तक जलापूर्ति की समुचित व्यवस्था हेतु जल का भंडारण परमावश्यक होता है। इसलिए जल की महत्ता को देखते हुए वैदिक ऋषि का यह कथन

1. वृद्धस्तुमाला दका.श्लो. 1-3

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

बिल्कुल सही है कि– **'अग्निहर्यन्तरापश्चतस्य प्रथमा द्वाः'** सदगृहस्थी के घर में अग्नि और जल अवश्य रहने चाहिए क्योंकि इन्हीं से सब प्रकार के यज्ञादि संपन्न होते हैं। संक्षेप में कहा जाए तो जल ही जीवन है। कोई अतिथि घर में आ जाए तो उसे श्रम परिहार के लिए जलपान और शीत निवारण के लिए अग्नि के पास उसके बैठने की व्यवस्था करना ये दो पदार्थ गरीब से गरीब एवं धनी से धनी व्यक्ति के घर में भी अवश्य रहते हैं और इनसे आदरातिथ्य किया जाता है। इसी बात को मनुस्मृति[1] में भी कहा गया है कि– बैठने के लिए चटाई, रहने के लिए स्थान, पीने के लिए विशुद्ध जल तथा श्रवण के लिए मधुर सम्भाषण, ये चार बातें अतिथि के आदर के लिए सज्जनों के घर में कभी न्यून नहीं होती। अथर्ववेद में वैदिक ऋषि का कथन है कि घर में जो जल रखा जाए वह उत्तम और निर्दोष होना चाहिए। जीवन में जल की महत्ता को देखते हुए भवन में उसके भंडारण एवं आपूर्ति हेतु समुचित व्यवस्था भवन निर्माण से पूर्व ही कर लेनी चाहिए। यह व्यवस्था तभी कल्याणकारी हो सकती है जब वास्तु के नियमों के अनुसार ही इसका नियोजन किया जाए। कूपादि का निर्माण भवन के किस हिस्से में करना चाहिए, इस विषय में कहा गया है कि– भूखंड के मध्यभाग में कुँआ हो तो धननाश, ईशान कोण में पुष्टि, पूर्व में ऐश्वर्य वृद्धि, अग्निकोण में पुत्रनाश, दक्षिण में स्त्रीनाश, नैऋत्य में मृत्यु, पश्चिम में संपत्ति लाभ, वायव्य कोण में शत्रुपीड़ा और उत्तर में सुख होता है।[2]

कूपादि खुदवाते समय इस बात का ध्यान रखे कि गड्ढा भवन के ईशान कोण से नैऋत्य कोण तक खीचीं गई तिरछी रेखा, मध्य उत्तर से दक्षिण के मध्यबिंदु तक एवं ठीक मध्यपूर्व से मध्य पश्चिम तक खीचीं गई रेखाओं पर न पड़े। इन रेखाओं के दाहिनी या बायीं ओर रखना या बनाना उचित होगा। यहाँ इस बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि कूपादि का निर्माण ईशान कोण में ही किया जाना चाहिए। यह स्थान इसके लिए सबसे उपयुक्त माना जाता है। यदि इस स्थान पर किसी कारणवश कूपादि का निर्माण संभव न हो तो, पूर्व या उत्तर का क्षेत्र, अगर यहाँ भी संभव न हो तो पश्चिम में जहाँ वरुण का स्थान है वहाँ पर कूपादि का निर्माण करना चाहिए।

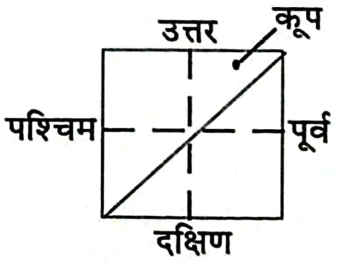

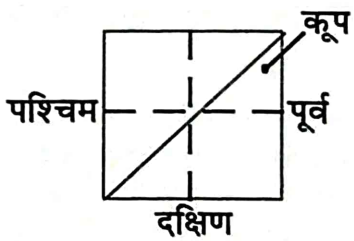

---

2. तृणानिभूमिरुदकं वाक्यतुर्थी च सुनृता।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन।। मनुस्मृतिः

3. कूवे वास्तोर्मध्यदेशेऽर्थनाशस्त्वैशान्यादौ पुष्टिरैश्वर्य वृद्धिः।
सूनोर्नाशः स्त्रीविनाशो मृतिश्च सम्पत्पीड़ा शत्रुतः स्याच्य सौख्यम्।। मुहूर्त्तचिन्तामणि 12.20

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

कूप निर्माण कार्य प्रारंभ करने से पहले कूप चक्र बनाना चाहिए। जैसे सूर्य नक्षत्र से 3 नक्षत्र कुएँ के मध्यभाग में स्थापित करें। इनमें कूपारम्भ से स्वादिष्ट जल, तदनंतर 3 नक्षत्र पूर्व में थोड़ा जल, 3 नक्षत्र अग्निकोण में स्वादु जल, 3 नक्षत्र दक्षिण में जलनाश, 3 नक्षत्र नैऋत्य कोण में स्वादु जल, 3 नक्षत्र पश्चिम में क्षारजल, 3 नक्षत्र वायव्य कोण में उत्तमजल, 3 नक्षत्र उत्तर में मधुरजल, 3 नक्षत्र ईशान कोण में क्षार जल होता है। ऐसा पूर्वाचार्यो का मत है।[1]

इसी प्रकार रोहिणी नक्षत्र से भी पानीय जल का विचार करना चाहिए जैसे–रोहिणी नक्षत्र से दिन नक्षत्र तक गणना करें। प्रथम 3 नक्षत्र मध्य में, 3-3 पूर्वादि आठ दिशा-विदिशाओं में रखें। क्रमशः फल 3 स्वादु जल, 3 खंडित भूमि, 3 सुजल, 3 निर्जल, 3 अमृत जल, 3 शोभनजल, 3 जल हानि, 3 स्वादुजल, 3 कटुक्षार, अल्प एवं तीक्ष्ण जल होता है।[2]

कूप चक्र में मंगल के नक्षत्र से भी गणना करके कूप निर्माण का कार्य करना चाहिए। पृथक्-2 नक्षत्रों में निर्माण के फल इस प्रकार दिये हैं–1 नक्षत्र में प्राप्त जल से वध, 5 नक्षत्र में सिद्धि, 4 नक्षत्र में अभग, 3 नक्षत्र में रोग, 3 नक्षत्र में असिद्धि, 4 नक्षत्र में यश, 3 नक्षत्र में अर्थ प्रसिद्धि, 4 नक्षत्र में जलहानि होती है।[3]

कूप चक्र में राहु के नक्षत्र से गणना करें। 3 नक्षत्र पूर्व के तथा में 3-3 नक्षत्र अग्निकोण आदि सभी दिशा-विदिशाओं में तथा 4 नक्षत्र मध्य में देकर शुभाशुभफल इस प्रकार कहें– पूर्व के नक्षत्रों में कूपारम्भ करने से शोक, अग्निकोण में जल, दक्षिण में गृहपति की मृत्यु, नैऋत्य कोण में दुःख, पश्चिम में सुख-सौभाग्य, वायव्य कोण में जल, वृद्धि, उत्तर में निर्जल, ईशान कोण में जल सिद्धि और मध्य में सजल कहना चाहिए। यह शिव जी का वचन है।[4]

कूपादि निर्माण मुहूर्त्त–

कूपादि का आरंभ शुभ मुहूर्त में करना चाहिए। शुभ मुहूर्त के लिए निम्न बातों का विचार करना चाहिए।

1. समयशुद्धि– यह कार्य गुरु एवं शुक्र के अस्त होने पर तथा अधिक एवं क्षय मास में वर्जित है।

---

1. कूपेऽर्कभान्यध्यगतैस्त्रिभिर्भैः स्वादूदकं पूर्वदिशि स्त्रिभिस्त्रिभिः।
   स्वल्पं जलं स्वादुजलं जलक्षयं स्वादूदकं क्षारजलं च मिश्रितम्।। वृहद्वास्तुमाला दकार्गल श्लो. 116
2. अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कूपचक्रं वरानने। रोहिण्यादिलिखेच्चक्रं मध्ये त्रयप्रतिष्ठितम्।।
   पूर्वादिदिक्षु सर्वासु त्रित्रिमार्गेण दीयते। मध्ये शीघ्रजलं स्वादु पूर्वे भूमिश्च खंडिता।।
   आग्नेय्यां सुजलं प्रोक्तं दक्षिणे निर्जल तथा। नैर्ऋत्ये चामृतं वारि पश्चिमे शोभनं जलम्।।
   वायव्येऽपि जलं हन्ति चोत्तरे स्वादुकं जलम्।ईशान्ये कटुकं क्षारमल्पतीक्ष्णस्य सभवम्।
   वृहद्वास्तुमाला दकार्गल श्लो. 117-120
3. वृहद्वास्तुमाला दकार्गल श्लो. 121
4. वृहद्वास्तुमाला दकार्गल श्लो. 121-125

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

2. शुभमास– इस कार्य हेतु बैशाख, श्रावण, भाद्रपद, मार्गशीर्ष, पौष एवं फाल्गुन मास शुभ होते हैं।

3. शुभपक्ष– इसके लिए शुक्ल पक्ष शुभ पक्ष है। कृष्णपक्ष की पंचमी तक यह कार्य किया जा सकता है।

4. शुभवार– इसमें रवि, मंगल एवं शनिवार वर्जित है। शेषवार शुभ होते हैं।

5. शुभ तिथियाँ– रिक्ता एवं अमावस्या को छोड़कर शेष तिथियाँ शुभ होती है।

6. शुभ नक्षत्र– अनुराधा, हस्त, तीनों उत्तरा, रोहिणी, धनिष्ठा, शतभिषा, मघा, पू० षा0, रेवती पुष्य एवं मृगशिरा नक्षत्र शुभ होते हैं।

7. शुभ योग– विष्कुम्भ, गंड, वैधृति, शूल, परिघ, वज्र, व्याघात एवं व्यतीपात को छोड़कर शेष योग शुभ होते हैं।

8. शुभ लग्न– इसमें सिंह, वृश्चिक एवं धनु लग्न वर्जित है। शेष लग्न शुभ हैं।

9. लग्न शुद्धि– जलचर राशि (कर्क, मकर, कुंभ एवं मीन) लग्न हो। लग्न में बुध या गुरु अथवा चन्द्रमा हो तथा दशम में शुक्र हो।

जलाशय निर्माण

जल एवं वृक्ष सभी सब जीवों का जीवन है। इसलिए जो मनुष्य जलाशय बनवाता है, वह मनुष्य जगत में धनधान्य से पूर्ण ऐहिक सुख को भोगकर स्वर्ग को प्राप्त करता है और मोक्ष पाता है। जलाशयों के जल का संस्कार न किया जाए तो उसके जल को पितृदेव नहीं पीते हैं। संस्कार किये जल से ही पितृदेव तृप्त होते हैं। इसलिए जल का संस्कार अवश्य करना चाहिए। जलाशय निर्माण से पूर्ण पृथ्वी के अंदर जल की स्थिति का पता कर लेना चाहिए। जिस स्थान पर जल अधिक मात्रा में उपलब्ध हो वही पर जलाशय निर्माण किया जाय को लम्बे समय तक लाभ मिल सकता है।

वराहमिहिर के अनुसार–

जिस तरह पुरुषों के शरीर में शिराएं अर्थात् नसें होती हैं। उसी तरह पृथ्वी में भी शिराऐं होती हैं। उन शिराओं के ऊपर नीचे स्थित होने का ज्ञान होने से भीतरी ज्ञान हो जाता है। आकाश से बरसने वाला जल यद्यपि स्वाद व रंग में समान होता है, तब भी पृथ्वी के विशेष भू-भागों के सम्पर्क में आने से अनेक स्वाद व वर्ण को प्राप्त हो जाता है। अतः पृथ्वी के वर्ण के समान जल के वर्ण की भी परीक्षा करनी चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

पृथ्वी की शिराओं के नाम–

इन्द्र, अग्नि, यम, नैर्ऋति, वरुण, वायु, चन्द्रमा एवं शिव ये पूर्वादि के प्रदक्षिणा क्रम से स्वामी है। इन्हीं दिग्पालों के नाम पर इनकी दिशाओं में स्थिति जलशिरा का नाम भी होता है। पूर्व में ऐन्द्री, अग्निकोण में आग्नेयी, दक्षिण दिशा में याम्या, नैऋत्य में नैर्ऋती, पश्चिम में वारुणी, वायव्य में वायवी, उत्तर दिशा में चान्द्री तथा ईशान में शैली शिराएँ होती हैं। सब दिशाओं व विदिशाओं के बीच में नवीं शिरा 'महाशिरा' कहलाती है। इन शिराओं के अतिरिक्त भी सैकड़ों प्रकार की अन्य शिराएं होती हैं। पाताल से सीधी ऊपर की ओर आने वाली शिरा उर्ध्वशिरा शुभ होती है। चारों दिशाओं में स्थित शिरा भी शुभ होती है। विदिशाओं में स्थित शिरा शुभ नहीं होती है।

निर्जल स्थान में जल ज्ञान–

निर्जल सूखे प्रदेश में यदि कहीं पर स्वाभाविक रूप से बेंत का झाड़ उगा हो तो उस बेंत से तीन हाथ पश्चिम में डेढ़ पुरुष नीचे खोदने पर जल मिलता है। ऊपर की ओर हाथ उठाकर पुरुष की लम्बाई को पुरुषमान माना जाता है। यदि 120 अंगुल=1 पुरुष के पैमाने को ही मानें तो 180 अंगुल अर्थात् 135'' इञ्च या 11.6' फुट को डेढ़ पुरुष माना जायेगा लगभग इतना खोदने पर जल मिलेगा। खुदाई के दौरान आधा पुरुष खोदने पर भूरे रंग का मेंढ़क मिलता है। इसके नीचे पीली मिट्टी आती है। मिट्टी की समाप्ति के बाद शिला आती है। शिला (पत्थर) भेदेन के बाद जल मिलता है। इस जल शिरा का नाम **'पश्चिम शिरा'** है।[1]

निर्जल में जल का द्वितीय चिन्ह–

निर्जल प्रदेश में जामुन का पेड़ उगा हो तो उससे उत्तर की ओर तीन हाथ चलकर दो पुरुष नीचे (180'' इञ्च या 15' फुट) **पूर्वशिरा** बहती है। आधी खुदाई हो जाने पर लोहे की खुशबू वाली मिट्टी आती है। इसके नीचे भूरी पीली मिट्टी तथा बाद में मेंढ़क निकलता है।[2] उसी जामुन के पेड़ से पूर्व की ओर पास में ही मिट्टी की बाँबी हो तो जामुन के पेड़ से दक्षिण में तीन हाथ दूर, 15 फुट खोदने पर मीठा जल मिलता है। 45 इंच खोदने पर मछली दिखती है। इसके नीचे कबूतरी रंग का पत्थर निकलता है। पश्चात् नीली काली मिट्टी आती है। तब वहाँ काफी मात्रा में जल होता है।[3]

गूलर से जल की पहचान–

निर्जल स्थान में यदि गूलर का पेड़ स्वाभाविक रूप से उगा हो तो गूलर से तीन हाथ पश्चिम में ढाई पुरुष (225'') नीचे श्रेष्ठ जल की शिरा (धारा) होती है। यहाँ पर आधा पुरुष

1. वृहद्वास्तुमाला दकार्गल श्लो. 7–10
2. वहीं श्लो. 9–0.
3. वहीं श्लो. 12–13

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

(3'.9'') खोदने पर सफेद साँप मिलता है। इसके बाद बहुत काला पत्थर व उसके नीचे जल शिरा होती है।[1]

अर्जुन वृक्ष से जल ज्ञान–

निर्जल स्थान में स्वाभाविक रूप से उगा हुआ अर्जुन का पेड़ हो तथा उससे उत्तर दिशा की ओर मिट्टी की बांबी हो तो अर्जुन वृक्ष से पश्चिम दिशा में तीन हाथ दूर तीन पुरुष जमीन खोदने पर (315'' इञ्च या 25' फुट अधिक) जल होता है। जमीन खोदते समय आधा पुरुष (45'' इञ्च) खोदने पर सफेद बड़ी छिपकली नुमा गोह मिलती है। 7'फुट.6''इञ्च खोदने पर धूसर रंग की भूरी काली मिश्रित मिट्टी मिलती है। इसके बाद काली मिट्टी, फिर पीली मिट्टी, इसके बाद रेतीली सफेद मिट्टी मिलती है। इसके बाद बहुतायत से जल होता है।[2]

निर्गुण्डी वृक्ष से जल लक्षण–

निर्गुण्डी (सम्भाल) के पास यदि बांबी हो तो निर्गुण्डी से दक्षिण की ओर तीन हाथ दूर जाकर सवा दो पुरुष नीचे (लगभग 16'–17' फुट) खोदने पर जल रहता है। यह जल मीठा व सूखने वाला होता है। पौने चार फुट नीचे रोहित मछली, उसके नीचे गोरे रंग की मिट्टी, बाद में सफेद मिट्टी, पुनः रेत व पश्चात् जल होता है। निर्गुण्डी या शेफालिका सफेद व नीली दो होती हैं। आयुर्वेद में इसके गुण बताए गए हैं।[3]

बेर से जल का संकेत–

बेर के पेड़ से पूर्व दिशा में यदि बाँबी हो तो पेड़ से तीन हाथ पश्चिम में जाकर तीन पुरुष (लगभग 22'फुट.6''इञ्च) खोदने पर पानी होता है। पौने चार फुट खोदने पर सफेद रंग की छोटी छिपकली दिखती है।[4]

ढाक से जल की पहचान–

यदि निर्जल स्थान में ढाक (पलाश) व बेर का पेड़ पास-पास हों, बाँबी हो या न हो तो बेर से पश्चिम दिशा में तीन हाथ दूर सवा तीन पुरुष नीचे (26'–27'फुट) खोदने पर जल मिलता है।[5]

---

1. वृहद्वास्तुमाला दकार्गल श्लो. 15
2. वहीं श्लो. 15–16
3. वहीं श्लो. 17–19
4. वहीं श्लो. 19
5. वहीं श्लो. 20

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

बहेड़ा से जल परिज्ञान–

विभीतक वृक्ष से दक्षिण की ओर, पास में वल्मीक (बाँबी) हो तो बहेड़े से पूर्व में दो हाथ छोड़कर डेढ़ पुरुष (लगभग 11' से अधिक) खोदने पर जल होता है।[1] सप्तपर्ण (सप्तच्छद या छितवन) के पेड़ के चारों ओर या उससे सटी हुई बांबी हो तो सप्तर्पण से उत्तर की ओर, एक हाथ दूरी पर पाँच पुरुष नीचे (लगभग 37-1/2') पानी होता है। आधा पुरुष (पौने चार फीट) नीचे हरे रंग का मेंढ़क, यहाँ की जमीन में भी हरिताल जैसे वर्ण का होता है। तब बादलों के समान काला पत्थर होता है। तब उत्तरा शिरा मिलती है। यहाँ पर बहुत स्वादु जल होता है।[2] निर्जल प्रदेश में स्वाभाविक रूप से उगे हुए किसी भी पेड़ के नीचे मेंढक हो तो उस पेड़ से उत्तर की ओर एक हाथ हटकर साढ़े चार पुरुष (34') नीचे पानी होता है। यहाँ पर खुदाई के समय 7'फुट. 6''इञ्च नीचे नेवला, तत्पश्चात् काली मिट्टी, तत्पश्चात् पीली मिट्टी, तत्पश्चात् सफेद मिट्टी, तत्पश्चात् मेंढक के समान रंग वाला पत्थर व उसके नीचे पानी मिलता है।[3]

महुए से जल विचार–

मधूक वृक्ष (महुआ) से उत्तर में यदि साँप की बाँबी हो तो उस वृक्ष से पश्चिम की ओर पाँच हाथ छोड़कर साढ़े सात पुरुष नीचे (52'-53'फुट लगभग) जल होता है। साढ़े सात फीट नीचे साँप दिखता है। तब धुएँ की रंग वाली मिट्टी, तत्पश्चात् कैथ की दाल की रंग का पत्थर (गाढ़ा लाल काला मिश्रि रंग) तत्पश्चात् पूर्वा शिरा व उसके नीचे सदा रहने वाला झागदार पानी होता है।[4]

तिलक वृक्ष से जल विचार–

तिलक वृक्ष के दक्षिण में यदि बाँबी हो, बाँबी पर घास व कुशाएं उगी हों तो उस वृक्ष से पश्चिम में पाँच हाथ दूर पर पाँच पुरुष नीचे (38'फुट) जल होता है। यथा–

वल्मीकः स्निग्धो दक्षिणेन तिलकस्य सकुशदूर्वश्चेत्।
पुरुषः पञ्चभिरम्भो दिशि वारुण्यां शिरा पूर्वा।।[5]

कदम्ब वृक्ष से जल ज्ञान–

कदम्ब वृक्ष से पश्चिम में बाँबी हो तो दक्षिण की ओर तीन हाथ छोड़कर पौने 6 पुरुष नीचे जल रहता है। यहाँ पर उत्तरी शिरा बहती है। इस जल में लोहे जैसे गन्ध होती है। यहाँ पर खूब पानी होता है। साढ़े सात फुट खोदने पर सुनहरा मेंढ़क दिखता है। मिट्टी पीले रंग की होती है।

1. वृहद्वास्तुमाला दकार्गल श्लो. 26
2. वहीं श्लो. 32-33
3. वहीं श्लो. 34-35
4. वहीं श्लो. 38-39
5. वहीं श्लो. 40

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

ताड़ से जल ज्ञान–

वल्मीक युक्त ताड़ वृक्ष हो या नारियल हो या इसी जाति का खजूर आदि वृक्ष हो तो वृक्ष से पश्चिम में 6 हाथ छोड़कर 4 पुरुष नीचे दक्षिण शिरा बहती है।[1]

कपित्थ वृक्ष से जल ज्ञान–

कपित्थ वृक्ष से दक्षिण में बाँबी हो तो वृक्ष से उत्तर दिशा में सात हाथ छोड़कर पाँच पुरुष नीचे जल होता है। एक पुरुष नीचे चितकबरा साँप, बाद में काली मिट्टी, बाद में पत्थर, पश्चात् सफेद मिट्टी, तब पश्चिम की ओर एक शिरा होता है तथा इसके बाद उत्तरा शिरा होती है।[2] कपित्थ को हिन्दी में कैथ, गुजराती में कबीट, मराठी में कंबठ या क्वीट कहते हैं। कटबेल, कबीठ आदि भी इसी के नाम हैं। इसके फल बहुत छोटे व गोल, बीजों से भरे हुए होते हैं। इन फलों का अचार भी बनाते हैं।

अश्मन्तक वृक्ष से जल ज्ञान–

अश्मन्तक (झिंझोड़ा) वृक्ष से उत्तर की ओर बेर का पेड़ हो या बाँबी हो तो अशमन्तक से उत्तर में 6 हाथ छोड़कर साढ़े तीन पुरुष नीचे जल होता है। साढ़े सात फीट नीचे कछुवा, नीचे धूल की रंग का पत्थर, बाद में रेतीली मिट्टी, तब दक्षिण शिरा व पश्चात् ईशानी शिरा बहती है।[3] अश्मन्तक कचनार का ही एक भेद है। यह एक सीधा झाड़ होता है। इसकी टहनियाँ रोएँदार, कचनार की तरह जुड़े पत्ते, छोटे सफेद फूल, चपटे बीजों वाली फलियाँ होती हैं। इसे हिन्दी प्रदेशों में पापड़ी, झिंझोड़ा, झिंझोरी कहते हैं। पंजाब में कोसुन्द्रो व काठियावाड़ गुजरात में आसोन्द्रो कहते हैं। इसका लेटिन नाम बोहिनिया रेसीमोसा (ठंनीपदपं त्ंबमउवें) हैं।

हरिद्रवृक्ष से जल ज्ञान–

हल्दी के पौधे के उत्तर में बाँयीं और वल्मीक हो तो पौधे से पूर्व में तीन हाथ छोड़कर पाँच पुरुष व एक तिहाई नीचे जल होता है। साढ़े सात फीट नीचे काला सर्प, तब पीली मिट्टी, पश्चात् हरे रंग का पत्थर, बाद में काली मिट्टी तब पश्चिम शिरा व दक्षिण में अन्य शिरा होती है।[4] पहाड़ों पर एक हरिद्र या वर नामक पेड़ भी होता है। यह निर्जल प्रदेश में कहीं पर पानी के पास होने वाले पौधे, जन्तु या अन्य चिन्ह दिखें अर्थात् बेंत, तिलक, वीरण, हरी घास आदि हों तो एक पुरुष के भीतर ही जल होता है। जहाँ पर भार्गी, त्रिवृत्, दन्ती सूकर पादी, लक्ष्मणा, नवमालिका (जूही) हो वहाँ पर दक्षिण की ओर 2 हाथ छोड़कर तीन पुरुष नीचे जल होता है।[5]

1. वृहद्वास्तुमाला दकार्गल श्लो. 53
2. वहीं श्लो. 44–45
3. वहीं श्लो. 46–47
4. वहीं श्लो. 48–49
5. वहीं श्लो. 50–51

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

जहाँ काँटे रहित पेड़ों के बीच में स्वयमेव काँटेदार पेड़ या झाड़ उगे, वहाँ से तीन हाथ पश्चिम की ओर 25 फीट नीचे जल या धन होता है।[1]

भूमि की आवाज व जल–

जलहीन प्रदेश में जहाँ पर पैर पटकने से जमीन की आवाज गहरी व मधुर तथा नाद युक्त हो तो उसी स्थान पर साढ़े तीन पुरुष नीचे (26 फुट) जल की उत्तरी शिरा होती है।[2]

झुकी टहनी से जल ज्ञान–

यदि किसी वृक्ष की एक शाखा झुकी हुई हो तथा उसके पत्ते कुछ पीले हो गए हों तो उसी टहनी के नीचे तीन पुरुष खोदने पर जल मिलता है।[3]

खजूरी से जल ज्ञान–

खजूर से थोड़े बड़े पत्तों वाली खजूर की ही एक जाति का वृक्ष खजूरी होता है। यदि निर्जल प्रदेश में खजूरी का पेड़ दो चोटियों वाला हो तो उससे पश्चिम में तीन पुरुष नीचे जल होता है।[4]

भूमि की ऊष्मा से जल–

जहाँ जमीन पर छूने से अकारण गर्मी लगे या धुआँ सा निकले तो वहाँ 15 फुट नीचे बहुत मात्रा में पानी होता है।[5] जिस खेत में फसल पैदा होकर नष्ट हो जाती हो या जहाँ पर खेती बहुत मात्रा में होती हो अथवा भूमि पर बहुत पीलापन सा हो तो वहाँ पर दो पुरुष नीचे बहुत जल वाली महाशिरा होती है।[6]

रेगिस्तान में विशेष विचार–

रेगिस्तानी प्रदेश में जलशिरा का विचार अब कहता हूँ। अभी तक नियम सभी प्रदेशों में विशेषतया जंगली प्रदेशों में अधिक उपयोगी हैं। जिस तरह ऊँट की गर्दन बहुत टेढ़ी व नीची सर्पाकार होती है, वैसे ही रेगिस्तान में बहुत नीचे जल शिराएँ होती हैं।[7]

---

1. वृहद्वास्तुमाला दकार्गल श्लो. 56
2. वहीं श्लो. 57
3. वहीं श्लो. 58
4. वहीं श्लो. 61
5. वहीं श्लो. 63
6. वहीं श्लो. 64
7. वहीं श्लो. 65

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

पीलु वृक्ष से जल विचार–

पीलु वृक्ष से ईशान कोण में यदि साँप या चीटियों की बाँबी हो तो वृक्ष से पश्चिम में साढ़े चार हाथ दूर पाँच पुरुष नीचे जल होता है। यहाँ पर उत्तर की ओर बहने वाली शिरा होती है। साढ़े सात फुट पर मेंढ़क, बाद में पीली भूरी मिट्टी, बाद में हरी चमकीली मिट्टी, तत्पश्चात् पत्थर व उसके नीचे जल होता है।[1] पीलु वृक्ष से पूर्व में यदि वल्मीक हो तो वृक्ष से दक्षिण में साढ़े चार हाथ छोड़कर 7 पुरुष नीचे जल होता है। यहाँ साढ़े सात फुट के आस पास काला सफेद, हाथ भर का साँप दिखता है। दक्षिण में नमकीन या खारे पानी की बहुत जल वाली शिरा होती है।[2]

अर्जुन वृक्ष से जल ज्ञान–

इन्द्र तरु (अर्जुन या कुड़ा, इन्द्र जौ का पेड़) से पूर्व में वल्मीक हो तो पश्चिम में एक हाथ छोड़कर 14 पुरुष नीचे जल की पश्चिमी शिरा होती है। साढ़े सात फुट के लगभग नीचे भूरे रंग की गोह दिखती हैं।[3]

धतूरे से जल ज्ञान–

सुवर्ण (पीला धतूरा या सत्यानाशी) वृक्ष से बाँयीं ओर उत्तर दिशा में वल्मीक हो तो दक्षिण में 2 हाथ छोड़कर 15 पुरुष के लगभग जल होता है। यहाँ पर खारा पानी मिलता है। पौने चार फीट के करीब नीचे तांबे के रंग वाला नेवला तथा नीचे उसी रंग का पत्थर होता है। पश्चात् लाल मिट्टी व उसके नीचे दक्षिण शिरा बहती है।[4]

बेर से जल ज्ञान–

बेर व लाल करंज का पेड़ साथ-साथ चिपके हुए हों तो वहाँ वल्मीक हो या न हो, उनसे तीन हाथ दूर पश्चिम में 16 पुरुष नीचे जल होता है। यहाँ पहले मीठे पानी की दक्षिण शिरा बहती है। दूसरी शिरा उत्तर की ओर होती है। यहाँ चावल के समान रंग वाला पत्थर, नीचे सफेद मिट्टी, आधा पुरुष नीचे बिच्छू निकलता है।[5] बेर व करील साथ-साथ हों तो पश्चिम में तीन हाथ दूर 18 पुरुष नीचे खूब जल वाली ऐशानी शिरा बहती है। पीलु व बेर का पेड़ साथ हों तो पूर्व में तीन हाथ छोड़कर 20 पुरुष नीचे (150') खारा पानी बहुत मात्रा में होता है। जहाँ ककुभ (अर्जुन) या करील या अर्जुन और बेल साथ हों तो पश्चिम में दो हाथ दूर 25 पुरुष नीचे जल होता है।[6]

1. वृहद्वास्तुमाला दकार्गल श्लो. 66-67
2. वहीं श्लो. 68-69
3. वहीं श्लो. 72
4. वहीं श्लो. 73-74
5. वहीं श्लो. 75-76
6. वहीं श्लो. 77-79

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

दुर्वा से जल ज्ञान–

यदि बाँबी के ऊपर दूब या कुशा पीले रंग की हो तो वल्मीक के ठीक (21 पुरुष नीचे) पानी होता है। कदम्ब के पेड़ के पास वल्मीक के ऊपर दूब हो तो दक्षिण में दो हाथ दूर 25 पुरुष नीचे जल होता है।[1]

शमी वृक्ष से जल–

जहाँ अनेक गाँठों वाली शमी हो तथा उत्तर में वल्मीक हो तो पश्चिम दिशा में 5 हाथ छोड़कर 50 पुरुष नीचे जल की शिरा बहती है। यथा–

ग्रन्थिप्रचुरा यस्मिन् शमी भवेदुत्तरेण वल्मीकः।
पश्चात् पञ्चकरान्ते शतार्धसंख्यैर्नरैः सलिलम्।।[2]

ढाक व शमी से जल–

जहाँ ढाक व शमी के वृक्ष साथ हों तो शमी से पाँच हाथ पश्चिम में 60 पुरुष नीचे जल होता है। पौने चार फीट नीचे साँप, बाद में रेतीली मिट्टी, तत्पश्चात् पीली मिट्टी निकलती है। बहुत काँटों वाली सफेद शमी हो तो दक्षिण में एक हाथ छोड़कर 75 पुरुष नीचे जल होता है। आधे पुरुष नीचे साँप होता है।[3]

जल ज्ञान का एक नियम–

रेगिस्तानी प्रदेशों के नियमों का प्रयोग यदि जांगल प्रदेशों में किया जाए तो कम जल मिलता है। सामान्य नियमों से साधारण प्रदेशों में जो गहराई कही है, मरुदेश में उससे दुगुनी गहराई में जल होता है। अनूप अधिक जल प्रदेश, जांगल कम जल वाला प्रदेश व मरु सूखे प्रदेश को कहते हैं, यह सर्वत्र ध्यान रखें।[4]

अनूप प्रदेश में जल–

जामुन, निसोत, मौर्वी, शिशुमारी, सारिवा, शिवा (शमी), श्यामा, वाराही (वाराही कन्द), ज्योतिष्मती व गरुड वेगा ये जड़ियाँ और सूकरिका, माषपर्णीत, (जंगली उड़द) व्याघ्रपदा के पास बाँबी हो तो बाँबी से तीन हाथ उत्तर में तीन पुरुष नीचे जल होता है। यह गहराई अनूप देशों में और जांगल प्रदेशों में पाँच पुरुष व मरुदेश में 7 पुरुष नीचे उक्त औषधियों से जल समझना

---

1. वृहद्वास्तुमाला दकार्गल श्लो. 80-81
2. वहीं श्लो. 84
3. वहीं श्लो. 86-88
4. वहीं श्लो. 89

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

चाहिए।[1] मूर्वा मुरहरी या मरोड़फली को कहते हैं। जड़ी बुटियों की दुकान पर मिलती है। ज्योतिष्मती माल कांगनी का संस्कृत नाम है।

भूमि के रंग से जल–

जहाँ पर भूमि एक रंग की हो तथा किसी एक जगह पर अलग सी दिखे। उस भूमि पर घास, पेड़, बाँबी, झाड़ कुछ भी न हो तो अलग से दिखने वाली भूमि के नीचे पाँच पुरुष खोदने पर जल होता है। जहाँ पर हरे पेड़ हो तो उन वृक्षों से दक्षिण में चार पुरुष नीचे खूब जल होता है। बगीचे में जहाँ बहुत से पेड़ों के बीच कोई पेड़ अपने स्वाभाविक रूप में न हो तो उस पेड़ से दक्षिण में चार पुरुष नीचे जल होता है। जंगल व अनूप प्रदेशों में जहाँ धरती पैर रखने से धँसती हो, वहाँ पर पौने चार फीट नीचे ही जल होता है। जहाँ पर चींटी आदि बिना बिल के ही दिखती हों, वहाँ भी जल होता है। सर्वत्र गर्म भूमि के बीच जहाँ पैर रखने से ठंडक लगे अथवा सर्वत्र ठंडी लगने वाली भूमि के बीच कहीं पर गर्म हो तो वहाँ साढ़े तीन पुरुष नीचे जल होता है। जहाँ जमीन पर सूर्य की किरणें पड़ने से इन्द्र धनुषी रंग दिखें या मछली या बांबी दिखे, वहाँ चार हाथ नीचे जल होता है।[2]

बड़ ढाक गूलर से जल ज्ञान–

बड़, ढाक व गूलर ये तीनों वृक्ष एक साथ हों तो इनके नीचे तीन हाथ खोदने पर उत्तरा शिरा बहती है। इसी तरह बड़ व पीपल साथ हों तो भी तीन हाथ नीचे जल होता है।[3] उपरोक्त प्रकार से भूमिगत जल का ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् जलाशय निर्माण से पूर्व खात की दिशा एवं शुभ मुहूर्त्त का विचार करना चाहिए।

जलाशय निर्माणार्थ खात की दिशा–

जलाशय निर्माण के लिए खात कौन सी दिशा से शुरू करना चाहिए इसका विचार निम्न तालिका से करना चाहिए।[4]

सूर्य की राशियाँ	राहु मुख	पृष्ठ	पुच्छ	खात की दिशा
मेष वृष मिथुन	वायव्य	नैऋत्य	आग्नेय	ईशान
कर्क सिंह कन्या	नैऋत्य	आग्नेय	ईशान	वायव्य
तुला वृश्चिक धनु	आग्नेय	ईशान	वायव्य	नैऋत्य
मकर कुंभ मीन	ईशान	वायव्य	नैऋत्य	आग्नेय

1. वृहद्वास्तुमाला दकार्गल श्लो. 90–92
2. वहीं श्लो. 93–98
3. वहीं श्लो. 99
4. मुहूर्त्तचिन्तामणि 12/19

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

उपरोक्त तालिका से सूर्य संचार की राशि ज्ञात होने पर खात की दिशा का निर्णय हो जाता है। सूर्य के मेष वृष मिथुन राशियों में संचार करने पर राहु मुख वायव्य में, पृष्ठ नैऋत्य में तथा पुच्छ आग्नेय में होता है। अतः खात की दिशा ईशान होगी जहाँ पर राहु का कोई भी अंग नहीं पड़ रहा है। इसी प्रकार अन्य राशियों में सूर्य के संचार से खात की दिशा ज्ञात की जा सकती है।

खात की दिशा ज्ञान होने के बाद जलाशय एवं कूप के लिए खात का निर्माण करना चाहिए। इसके बाद शुभ मुहूर्त्त में जलाशय आदि का निर्माण प्रारम्भ करना चाहिए। जलाशय निर्माण के पश्चात् यह विचार भी करना चाहिए कि किनारों पर पेड़ न होने से, जलाशय, बावड़ी, तालाब आदि मन को आह्लादित नहीं करते हैं। अतः जलाशयों के पास या चारों ओर बाग, बगीचा, उपवन अवश्य लगाने चाहिए।

जलाशय और उद्यान देवताओं के प्रियस्थल–

जहाँ पर पहले से अथवा किसी भक्त के द्वारा बनवाए गए जलाशय तथा उद्यान हो तो ऐसे स्थानों पर देवता निवास करते हैं। जिन सरोवरों में विकसित कमल पुष्प सूर्य के संताप निवारण के लिए छत्र का कार्य कर रहे हों और हंसों के कंधों से फेंके हुए कल्हार (कमल भेद) पुष्पों से जिस जल में मार्ग जैसा बन गया हो, जिन तालाबों में हंस, कारण्डव, क्रौंच, चकवा-चकवी पक्षियों के कलरव हों तथा जिसमें जल वेतस की छाया में जलचर विश्राम करते हो। करधनी के शब्द के समान सुमधुर क्रौन्च पक्षी का कलरव तथा राजहंस का मधुरव जिन जलाशयों में हों और शफरी (मछलियों) को जिन्होंने किनारा एवं जल को जिन्होंने अपना परिधान बना रखा है। जिन नदियों के तट पर विकसित वृक्ष ही कनफूल हों, नदियों का संगम जिनका श्रोणी फलक हो, उन्नत प्रदेश जिनके स्तन हो, हंस जिनके उज्ज्वल वस्त्र हो ऐसी नदियों में देवता निवास करते हैं। वन के किनारों में, नदियों में, झरनों के समीप में तथा बगीचों से युक्त नगरों के समीप भी देवता रमण करते हैं। अतः जलाशय का निर्माण शास्त्रोक्त विधि से करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

आवासीय वास्तु एवं अन्तःसज्जा

राजेन्द्रकुमार चतुर्वेदी

आवासीय वास्तु से अभिप्राय ऐसे वास्तु अथवा निवास से है जो व्यक्ति को रहने के लिए सभी प्रकार से सुरक्षित हो तथा कल्याण एवं प्रगति की ओर अग्रसित करें। व्यक्ति के घर का वातावरण ऐसा हो जिसमें वह निरोग एवं संतुलित रह सके। अतः व्यक्ति को इन सब बातों के लिए घर की अन्तः सज्जा पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। व्यक्ति निवास के लिए एक भव्य आलीशान भवन का तो सहज निर्माण कर लेता है परन्तु भवन में बने कक्षों एवं वातावरण की अनदेखी कर नाना प्रकार के रोगों एवं समस्याओं को आमंत्रण देता है। भवन में कक्ष किस प्रकार के बनाए जाएं तथा कौन सा कक्ष परिवार के किस सदस्य को दिया जाए, यह भी जानना आवश्यक है। विशेष रूप से यदि देखें तो व्यक्ति के लिए रसोई एवं मुख्य शयन कक्ष का सही स्थान एवं दिशा निर्धारित करने की नितांत आवश्यकता है। यही नहीं बल्कि भवन का मुख्य दरवाजा कैसा हो, कहाँ हो इसका निर्धारण करना भी जरूरी है क्योंकि भवन का दरवाजा ही व्यक्ति की सफलता अथवा असफलता का द्योतक है। तत्पश्चात् भवन में अन्य कक्षों का भी यथा रूप उचित दिशा में निर्धारण किया जाए। घर के विभिन्न कक्षों को कैसे डिजाइन करें एवं किस रंग का उपयोग किया जाए यह इंजीनियर डेकोरेटर का प्राथमिक कार्य है।

वास्तु की परिभाषा

वास्तु का तात्पर्य निवास से है। जहाँ मनुष्य वास करते हैं उसे वास्तु कहा जाता है। वास्तु के अनेक भेद जैसे गृह देवालय, ग्राम, नगर, पुर आदि हैं। मनुष्य के लिए अच्छे वास्तु की परिकल्पना करना ही हमारा लक्ष्य है क्योंकि शुभ वास्तु में रहने से सुख-सौभाग्य एवं स्मृद्धि की अभिवृद्धि तथा अशुभ वास्तु में रहने से हानि होती है। भारतीय संस्कृति में वास्तु को बड़ा ही ओजस्वी अङ्ग माना गया है। अथर्ववेद के उपवेद-स्थापत्य वेद का अभिप्राय भी निवास योग्य स्थापना से है। स्थापत्य वेद ही उत्तरवर्ती काल में वास्तुशास्त्र के रूप में परिणित हुआ। वैदिक काल में गृहों का निर्माण ही वास्तु के अन्तर्गत माना जाता था। भोजदेव ने समराङ्गण सूत्रधार में वास्तुशास्त्र को तीन भागों में विभक्त किया। 1. वास्तु 2. शिल्प 3. चित्र।

ऋग्वेद में वास्तोष्पति से प्रार्थना करते हुए कहा गया है कि– हे वास्तेष्पते! तुम हमें समझो। हमारे घर को नीरोग करने वाले होओ। जो धन तुम्हारे पास है वह हमें दे दो। हमारे द्विपद (मनुष्यों) और चतुष्पदों (पशुओं) के लिए कल्याणकारी होवो।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

वास्तु का उद्देश्य–

वास्तुशास्त्र का उद्देश्य सुखी शान्त एवं सुरक्षित जीवन से है जहाँ रहकर व्यक्ति अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सके। भौतिकवादी दृष्टि से हम एक घर को सुन्दर आकार तो प्रदान कर सकते हैं परंतु उसमें व्यक्ति सुखी व समृद्ध रहेगा इसकी कल्पना नहीं कर सकते। भारतीय आचार्यों ने मनुष्य के सर्वागीण विकास एवं उन्नति के लिए गृह को आवश्यक माना है। मनुष्य अपने उद्देश्य की सफलता एवं पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि स्वयं के गृह में ही प्राप्त करता है। भविष्य पुराण में स्पष्ट लिखा है कि **"गृहस्थस्य क्रिया सर्वाः न सिद्धयन्ति गृहं बिना।"** अर्थात् गृहस्थ की सभी क्रियाएँ स्वगृह में ही सिद्ध होती हैं न कि परगृह में।

जीवन में गृह निर्माण की प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यकता रहती है। व्यक्ति वास्तु सम्मत गृह का ही निर्माण करा पाए इसकी जानकारी प्रायः आम व्यक्ति को नहीं होती। यह सर्वथा सत्य है कि वास्तुशास्त्र में प्रतिपादित मौलिक सिद्धांत मानव जीवन को सुखी, सुरक्षित एवं शांतिप्रिय बनाने के लिए आज भी उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं जितने कि पहले कभी थे। शास्त्रीय मान्यताओं के अनुसार गृह निर्माण करने से गृहस्वामी को अनन्त पुण्यों के फल की प्राप्ति होती है। विद्वानों की मान्यता है कि पर्णशाला बनाने से कोटिगुणा, मिट्टी का घर निर्माण से दस कोटि गुणा, ईंटों से गृह निर्माण पर सौ करोड़ गुणा एवं पत्थरों से निर्मित घर से व्यक्ति को अनन्तगुणा पुण्य फल की प्राप्ति होती है। आचार्य शंख ने लिखा है कि दूसरों के घर के अन्न का भक्षण करने वाला, दूसरों के वस्त्र धारण कर अपनी शोभा बढ़ाने वाला, दूसरों की स्त्रियों में आसक्त रहने वाला, दूसरों के वाहन में ठाठ से बैठने वाला तथा दूसरे के घर में सतत् निवास करने वाला कोई भी व्यक्ति सिर उठाकर स्वाभिमान पूर्वक समाज में नहीं रह सकता। अतः समाज में स्वाभिमान पूर्वक जीवन यापन के लिए व्यक्ति को अपनी सामर्थ्य के अनुसार कच्चे अथवा पक्के घर का निर्माण अवश्य करना चाहिए।

हमारा शरीर पंच तत्वों से निर्मित है। अतः घर का निर्माण करते हुए हमें पंच महाभूतों पृथ्वी, जल, अग्नि वायु और आकाश के सही तालमेल के अनुसार तथा साथ में प्राकृतिक शक्तियों के प्रबंधन के साथ ही घर निर्माण करना चाहिए। वैदिक ज्ञान के अनुसार ईश्वर ने मनुष्य को अपना प्रतिरूप बनाकर विवेक एवं बुद्धि-वैभव से सम्पन्न किया है। **'यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे'** अर्थात् जहाँ जीव है वहीं ब्रह्मांड है। इस ब्रह्मांड में निवास करने वाले प्राणियों की रचना में एक प्रकार की समानता है। चूँकि समस्त प्राणी पंच महाभूतों से ही बने हैं। अतः पञ्च भौतिक संतुलन से ही प्राणी में निरंतर सक्रियता एवं स्फूर्ति बनी रहती है। इसके विपरीत असंतुलन से निष्क्रियता बढ़ती है। वास्तु का अभिप्राय निवास से है। जहाँ मनुष्य निवास करते हैं उसे वास्तु कहा जाता है। वास्तु शास्त्र का उद्देश्य सर्वाविध सुखी एवं शांत सुरक्षित जीवन से है जहाँ रहकर व्यक्ति अपने उद्देश्य की पुष्टि कर सकता है। सृष्टि पञ्च भूतात्मक है, ठीक उसी प्रकार मनुष्य का शरीर भी पाँच तत्वों पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश का ही सम्मिश्रण है। पृथ्वी पर किया जाने वाला कोई भी कार्य पाँच तत्वों पर ही आधारित होता है।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वास्तु शास्त्र के अनुसार कक्ष विन्यास–

प्राचीन समय में यद्यपि संयुक्त परिवार में रहने की प्रथा थी जहाँ एक ही घर में 25 से 50 व्यक्ति एक साथ निवास करते थे। अतः उस समय 16 कक्षों का प्रावधान किया जाता था। कालांतर में संयुक्त परिवार का विघटन होता गया और जो आजकल एकल परिवार में परिवर्तित हो गया। अतः अधिकांश परिवार एक या दो कमरे के घरों में ही गुजारा करते हैं। हाँ कुछ साधन सम्पन्न परिवार तीन या चार कमरों के अतिरिक्त कुछ अन्य कक्षों का भी निर्माण करा लेते हैं। यहाँ इस बात को जानना अति आवश्यक है कि कक्ष विन्यास कैसा किया जाए, तथा घर के किस सदस्य को कहाँ ठहराएँ। वास्तुशास्त्र में ऐसा कोई आग्रह नहीं है कि कोई एक दिशा में एक ही कार्य करने के लिए उसका कक्ष ही बनाया जाए। यह केवल उस दिशा में समान प्रकृति एवं उसके गुण धर्म के अधिकतम उपयोग का मार्ग दर्शाता है। बड़े बुजुर्गों के लिए शयन कक्ष दक्षिण में तथा बड़े पुत्र अथवा भाई को नैर्ऋत्य में स्थान देना चाहिए। छोटे बच्चों को वायव्य, उत्तर एवं ईशान के मध्य, ईशान में पूजा घर एवं बैठक, आग्नेय में रसोईघर आदि की व्यवस्था करनी चाहिए। कुँआ, जल बोरिंग ईशान एवं पूर्व में रहे तो ठीक है। अध्ययन एवं भोजन कक्ष का भी हमें वास्तु शास्त्र के अनुसार यथा स्थान प्रबंध करना आवश्यक है।

द्वार की सज्जा–

भवन का द्वार वास्तुशास्त्र के अनुसार उसमें रहने वाले लोगों की सफलता या असफलता का दरवाजा भी है। यह यदि निषिद्ध स्थान पर हो तो उसमें रहने वाले लोगों को अनेक प्रकार की समस्याओं एवं संकटों का सामना करना पड़ता है। भवन निर्माण करते समय एवं द्वार स्थापना को महत्त्व देते हुए हमें राशि, वर्ण, आय एवं वास्तुचक्र के अनुसार चारों दिशाओं में द्वार स्थापना करनी चाहिए। सज्जा की दृष्टि से प्रधान द्वार को अन्य द्वारों की अपेक्षा अधिक बड़ा एवं घट, पत्र एवं फल इत्यादि माङ्गलिक चिह्नों के द्वारा आकर्षक बनाना चाहिए। पदम पर बैठी हुई, पूर्ण कुम्भ वाली, रत्नों और वस्त्रों से विभूषित अष्ट मंगला मां गौरी का चित्त बनाना चाहिए, टेढ़े एवं ऊँचे उठे वृक्ष, पुष्प फल और पल्लव से भरे हुए वृक्ष, पूर्ण कुम्भ और चामरों से उपलक्षित, शंख एवं मछलियों की माला से विभूषित करना चाहिए। द्वारमण्डल के मध्य भाग में स्थित उत्तम गजों से स्नान कराई जाने वाली पद्मों पर बैठी हुई और पदमों को हाथ में लिये हुए खूब सजी हुई लक्ष्मी का निवेश करना चाहिए।

ड्राइंगरूम (बैठक)–

आवासीय दृष्टि से घर में किसी भी प्रयोजन से आने वाले व्यक्ति को कुछ समय बैठकर सामान्य आतिथ्य एवं चर्चा की जा सके तथा खाली समय में परिजन बैठकर जहाँ मनोरंजन कर सकें। ऐसे कक्ष को स्वागत कक्ष अथवा ड्राइंग रूम कहा जाता है। पूर्वाभिमुखी या उत्तराभिमुखी भूखंड पर बनने वाले भवन में स्वागत कक्ष का निर्माण पूर्व ईशान एवं उत्तर में होना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

दक्षिणाभिमुखी भूखंड में स्वागत कक्ष आग्नेय कोण में बनाना चाहिए। स्वागत कक्ष में बैठने की व्यवस्था इस प्रकार रखनी चाहिए कि गृहस्वामी उत्तराभिमुखी या पूर्वाभिमुखी होकर तथा आगन्तुक (ळनमेज) दक्षिणाभिमुखी अथवा पश्चिमाभिमुखी होकर बैठे। अतः ड्राइंग रूम-ईशान कोण, आग्नेय, आग्नेय एवं दक्षिण के मध्य, पश्चिम एवं वायव्य के मध्य, उत्तर एवं ईशान के मध्य में बना सकते हैं।

पूजाघर–

आवासीय भवन में नियमित पूजा के लिए उपयुक्त पूजा स्थल का महत्त्वपूर्ण स्थान है। शास्त्रीय मान्यता है कि भक्ति ज्ञान, वैराग्य एवं विद्या के मूल उपदेशक भगवान शंकर इस दिशा के स्वामी हैं। पूजा मनोयोगपूर्वक तथा भक्तिभाव से की जाए तो भगवान से भक्त का सम्बन्ध दृढ़ हो जाता है और भक्त की चिन्ता, भय, शोक, शंका, व्याधि, बाधा आदि दोषों की जड़ कट जाती है। उदयकालीन सूर्य की पवित्र रश्मियाँ इस दिशा वाले भूभाग को प्रथमतः पावन करती हैं। इसलिए भवन के इस ईशानकोण में ही पूजागृह की स्थापना करनी चाहिए। पूजागृह में अपने इष्ट देवी-देवताओं की मूर्तियाँ एवं चित्र आदि पूर्व या उत्तर की ओर वाली दीवार के समीप स्थापित करने चाहिए। संभव हो तो इन्हें लकड़ी की चौकी या सिंहासन पर अथवा दीवार में अल्मारी या आला बनाकर उसमें विधिवत् स्थापित करना चाहिए। पूजाघर में शुक्र से सम्बन्धित वस्तुओं को (भोग-विलास-सामग्री को) कभी भी न रखें। वहाँ गुरु से सम्बन्धित वस्तुएँ जैसे धार्मिक पुस्तकों को रख सकते हैं। पूजाघर में खण्डित मूर्ति अथवा चित्र न रखें। पूजागृह में देवी-देवताओं की मूर्तियों एवं चित्रों के साथ स्वर्गवासी हुए पितरों के चित्रों एवं प्रतिमाओं को भी न रखें। शयन कक्ष में शुक्र का अधिकार होता है जबकि पूजाघर में गुरु का। गुरु एवं शुक्र में परस्पर मैत्री के अभाव में ऐसे गृह जहाँ दोनों साथ हों वहाँ न तो गृहस्थ सुख ही अच्छा होता है ओर न ही ईश्वर भक्ति में व्यक्ति का मन लग सकता है। पूजाघर के ऊपर भी शयनकक्ष नहीं होना चाहिए।

रसोईघर

रसोईघर के लिए सर्वश्रेष्ठ स्थान आग्नेय कोण है। यहाँ उदयकालीन सूर्य की जीवनदायिनी रश्मियों से लेकर दोपहर तक धूप रहती है। अतएव वैज्ञानिक आधार पर भोजन बनाने के लिए यह स्थान सर्वाधिक उपयुक्त माना गया है। रसोईघर की आंतरिक संरचना में भोजन बनाने का प्लेटफार्म पूर्व की दीवार के सहारे इस प्रकार बनवायें कि भोजन बनाने वाले का मुख भोजन बनाते समय पूर्व की ओर रहे। रसोईघर में टांड तथा बर्तन एवं दाल मसाले, आदि भोजन सामग्री रखने के लिए अल्मारियों का निर्माण दक्षिण व पश्चिम की दीवारों के साथ रखना चाहिए। बर्तनों की सफाई के लिए सिंक उत्तर की दीवार या ईशान पूर्व के मध्य में बनायें। पूर्वाभिमुखी तथा उत्तरामुखी भवनों में तो आग्नेय कोण में रसोईघर आसानी से बनाया जा सकता है। परन्तु दक्षिणाभिमुखी एवं पश्चिमाभिमुखी भवनों में आग्नेय या पाकशाला का नक्शा सुविधाजनक नहीं बन पाता। ऐसी स्थिति होने पर आग्नेय के स्थान पर वायव्य कोण में रसोईघर का निर्माण किया जा सकता है। परन्तु

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

इसका निर्माण इस प्रकार हो कि भोजन बनाने वाला पूर्वाभिमुखी होकर ही भोजन बना सके। रसोईघर में जल भण्डार, नल की टूटी एवं वाश बेसिन ईशान कोण में तथा फ्रिज पश्चिम दिशा में रखने चाहिएँ। मिक्सी, टोस्टर, आटा चक्की एवं अन्य उपकरण पश्चिम एवं दक्षिण में रखने चाहिएँ। रसोईघर से पानी का निकास, पूर्व, उत्तर या वायव्य की ओर से करना उचित रहता है।

भोजनकक्ष–

प्राचीन काल में रसोईघर में बैठकर ही भोजन करने का प्रचलन था। आज रसोईघर के पास अथवा ड्राइंग रूम के एक भाग में डाइनिंग टेबल लगा ली जाती है। यदि व्यक्ति की सामर्थ्य हो और वह अलग से भोजन कक्ष बना सके तो उसके लिए यह कक्ष भवन के पश्चिम भाग में बनाना सर्वोत्त है। भोजन कक्ष का द्वार पूर्व, उत्तर या पश्चिम में होना चाहिए, दक्षिण दिशा में कदापि नहीं। इस कक्ष में भोजन करते समय प्रमुख लोगों का मुख पूर्व की ओर तथा अन्य लोगों का मुख उत्तर एवं पश्चिम की ओर होना चाहिए। व्यक्ति को कभी भी दक्षिण की ओर मुँह करके भोजन नहीं करना चाहिए। क्योंकि इस दिशा में भोजन करने से अजीर्ण एवं उदर व्याधि की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं। पूर्व की ओर भोजन करने से ओज और तेज की वृद्धि होती है तथा जातक दीर्घायु होता है। पश्चिम की ओर मुँह करके भोजन करने से अर्थ की प्राप्ति होती है। उत्तर की ओर मुँह करके भोजन करने से मानसिक सन्तुष्टि मिलती है।

शयनकक्ष

वर्तमान में विकृत जीवनचर्या एवं बढ़ते अनिश्चय, असुरक्षा हताशा एवं निराशा की भावना से लोगों की नींद गायब होने लगी है। विविध चिन्ताओं से ग्रस्त अशान्त व्यक्ति की शांति के लिए वास्तुसम्मत शयनकक्ष अत्यधिक सहायक सिद्ध हो सकता है। गृहस्वामी का मुख्य शयनकक्ष सदैव भवन के दक्षिण अथवा दक्षिण-पश्चिम के मध्य तथा नवदम्पत्ति का शयन कक्ष वायव्य से उत्तर के बीच होना चाहिए। वसिष्ठ संहिता में स्पष्ट लिखा है– **"शयनं दक्षिणायान्तु नैऋत्यां शस्त्र मन्दिरम्"** –चूंकि गृहस्वामी का शयन कक्ष द्वार से अधिकतम दूरी होने पर गृहस्वामी सुरक्षित होता है। भवन-निर्माण प्रक्रिया में प्रायः भवन का मुख्यद्वार उत्तर या पूर्व में रखने की अधिक मान्यता है। अन्य कारण भूखंड के दक्षिणावर्ती पार्श्व में जिन 8 देवों की स्थिति है उनमें से 'यम' के स्थान पर गृहस्वामी के शयनकक्ष का निर्माण किया जाना चाहिए। ज्योतिष में 'यम' शब्द शनि के लिए प्रयुक्त किया गया है। शनि आलस्य निद्रां एवं तन्द्रा का कारक है। शांति एवं विश्राम की इच्छा से शयनकक्ष में जाकर व्यक्ति अच्छी निद्रा की प्राप्ति करे, यही अच्छे शयनकक्ष की विशेषता होती है। अतः मुखिया के शयनकक्ष का निर्माण दक्षिण या दक्षिण-पश्चिम के मध्य में करना चाहिए।

नवदम्पत्ति कक्ष–

नवदम्पत्ति कक्ष वायव्य और उत्तर में, वास्तु मण्डल परिकल्पना से जहाँ 'मुख्य' और भल्लाट देव पद होते हैं वहाँ बनाना चाहिए। क्योंकि उत्तर में शुक्र बलि होता है और शुक्र की

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

उच्च राशि मीन भी उत्तर में ही बलि होती है। अतः परस्पर प्रेम, रस, माधूर्य, सौहार्द, सहयोग, संयोग, शक्ति, रतिसुख एवं समस्त गृहस्थ सुख का कारकत्व शुक्र के पास है। आंतरिक सज्जा की दृष्टि से शयन कक्ष में जहाँ तक सम्भव हो सफेद एवं हल्के गुलाबी रंग की प्रधानता रहनी चाहिए। ये रंग शुक्र के हैं। अतः शुक्र के अधिपत्य वाले क्षेत्र में शुक्र की वस्तुओं का होना सुखदायी होता है। शयनकक्ष में गहरे लाल अथवा पीले रंग की प्रधानता निषिद्ध है। इसके साथ ही नीले या काले रंग जो राहु एवं शनि के हैं, का प्रयोग भी सर्वथा उचित नहीं है, इनसे पति-पत्नी का पारस्परिक सौहार्द बिगड़ता है। शयनकक्ष की अन्तः सज्जा में निम्न बातों का भी सदा ध्यान रखना चाहिए।

1. शयनकक्ष का निर्माण ईशान कोण में कभी न करें क्योंकि इससे अनावश्यक व्यय, संतान हानि एवं व्याधियों से व्यक्ति परेशान रहता है।

2. जहाँ तक सम्भव हो टी.वी. को कदापि शयन कक्ष में न रखें। यद्यपि टी.वी. निर्जीव है परंतु उससे निकली चीख पुकार के रूप में निकली ध्वनि शयन कक्ष के खाली आकाश में व्याप्त हो जाती है। चूँकि शब्द कभी नष्ट नहीं होते। इसलिए टी.वी. से निकलने वाले शब्द शयनकक्ष के वातावरण में फैल जाते हैं। जिससे निंद्रा भंग होती है और अशांति बढ़ती है।

3. शयनकक्ष के साथ संयुक्त बाथरूम, शौच एवं स्नान के लिए होता है। नैऋत्य दिशा में राहु का स्थान है। इसलिए शयनकक्ष के दक्षिण, नैऋत्य एवं पश्चिम में ऐसा बाथरूम बनाना चाहिए।

4. शयन कक्ष में भारी सामान जैसे अल्मारी, पलंग एवं टेबल आदि कक्ष के दक्षिण एवं नैऋत्य के मध्य और ड्रेसिंग टेबल पूर्व में पश्चिमाभिमुखी रखें। पलंग की स्थिति ऐसी रखें ताकि सोने वाले का सिर दक्षिण की ओर तथा पैर उत्तर की ओर रहे।

5. शयन कक्ष में श्रृंगार रस से परिपूर्ण दृश्य एवं कलात्मक मूर्तियाँ रखनी चाहिएँ।

6. शयन कक्ष के पलंग पर यदि चद्दर सफेद या गुलाबी रंग की हो तो उत्तम रहता है। सफेद तथा गुलाबी रंग चन्द्र एवं शुक्र के हैं। चन्द्रमा व्यक्ति की मनोवृत्तियों तथा मानसिक भावनाओं को और शुक्र भोग तथा सुख को दर्शाता है। काले तथा नीले रंग की चादर का सर्वथा परिहार करें।

7. शयन कक्ष में सिराहना दरवाजे के सामने या खिड़की के नीचे न रखें।

8. शयन के समय व्यक्ति का सिर कक्ष से जुड़े शौचालय की ओर न हो।

9. शयन कक्ष में पलंग इस प्रकार लगाएँ कि पूर्व और उत्तर की ओर अधिक खुला स्थान हो।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

अतिथि कक्ष–

अतिथि कक्ष का निर्माण भवन के वायव्य कोण में करवाना चाहिए। वायव्य कोण की विशेषता है कि वहाँ वास्तुमण्डल में वायुदेव के पद के कारण वायु की प्रधानता से परिस्थितियाँ बड़ी तेजी से परिवर्तित होती हैं। अतिथि भी अल्पाविधि के लिए ही होता है। तभी उसके प्रति सम्मान की भावना और पारस्परिक सौहार्द का भाव भी बना रहता है। अन्यथा आवश्यकता से अधिक रुकने पर अतिथि की मर्यादा भङ्ग होती है। तथा अतिथि के सम्मान की अपेक्षा अपमान होने लगता है। अतः अतिथि कक्ष का निर्माण वायव्य कोण में ही करना चाहिए।

बच्चों का शयन कक्ष–

बच्चों के लिए ऐसे कमरे की आवश्यकता है, जहाँ वे पढ़ने के साथ-साथ आमोद-प्रमोद भी कर सकें। भवन का उत्तर पश्चिम भाग वायु देवता का स्थान है जो अशांत, अधीर, निरंतर क्रियाशीलता एवं सतत बदलाव के गुण से युक्त है। बच्चों का स्वभाव भी इसी प्रकार अशांत एवं लगातार बदलाव के मनोयोग से परिपूर्ण रहता है। अतः बच्चों का कमरा उत्तर-पश्चिम में बनाया जाए तो उत्तम रहता है। इस दिशा में छोटे बच्चे बड़े ही सक्रिय एवं शक्ति से भरपूर होते हैं। बड़े बच्चों को उत्तर एवं उत्तरपूर्व अथवा पूर्व की दिशा में ठहराया जाए क्योंकि इस दिशा के स्वामी भगवान शिव हैं जो ज्ञान एवं विद्या के अधिष्ठाता हैं। अतः इस स्थान पर रहने से बच्चों में एकाग्रतापूर्वक अध्ययन करने की प्रवृत्ति बढ़ती है। बच्चों के इस कक्ष में पूर्व एवं उत्तर में खूब खिड़कियों का प्रावधान किया जाए ताकि सूर्य किरणों का उन पर भरपूर प्रभाव पड़े।

स्नान घर–

स्नानघर का निर्माण भवन के पूर्वी भाग में करवाना श्रेयस्कर है। भूखंड के पूर्वी भाग में जिन आठ देवताओं का वास है उसमें पर्जन्य, इन्द्र और सूर्य स्नान की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है। पर्जन्य इन्द्र का सीधा सम्बन्ध जल से है एवं सूर्य का सम्बन्ध व्यक्ति के व्यक्तित्व में मौजूद स्फूर्ति, ओज और तेज से है। अतः प्रातःकालीन स्नान के समय मनुष्य शरीर पर पड़ने वाली सूर्य की रश्मियों का प्रभाव स्वास्थ्य के लिए बेहद लाभप्रद है। आंतरिक संरचना की दृष्टि से स्नानघर के आग्नेय कोण में हीटर, गीजर, पूर्व या उत्तर में शावर, नल या वाश बेसिन होने चाहिएँ। नैर्ऋत्य में टायलेट तथा पूर्व, ईशान या उत्तर में खिड़कियाँ एवं रोशनदान लगवाने चाहिए। इस प्रकार स्नानघर में सूर्य रश्मियों का समुचित प्रकाश एवं तेज भी मिल सकेगा। स्नानघर में बाथटब इस प्रकार लगवाएँ कि उसमें स्नान करने वाले का सिर उत्तर की ओर न होकर, दक्षिण एवं पूर्व की ओर ही रहे।

शौचालय–

शौचालय के लिए सर्वाधिक उपयुक्त स्थान का निर्धारण भूखंड के नैर्ऋत्य एवं दक्षिण के मध्य माना गया है। "यमराक्षसयोर्मध्ये पुरीष त्याग मन्दिरम्" यदि दक्षिण नैर्ऋत्य के मध्य

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

शौचालय निर्माण संभव न हो तो यह पश्चिम-वायव्य मध्य भी बनवाया जा सकता है। डब्ल्यू सी (संडास) इस प्रकार बनवाएँ कि व्यक्ति दक्षिणाभिमुखी अथवा उत्तराभिमुखी होकर बैठे। आंतरिक संरचना एवं सज्जा की दृष्टि से संगमरमर अथवा चिकने पत्थर एवं टाइल्स का प्रयोग न करें। क्योंकि टायलेट में पानी के निरंतर प्रयोग से फर्श पर चिकनाहट एवं फिसल होने से व्यक्ति का हर समय फिसलने का भय बना रहता है। इसके स्थान पर खुरदरे पत्थर अथवा सिरेमिक्स टाइल्स आदि का प्रयोग करवाना उत्तम रहता है। शौचालय में पानी के लिए नल, उत्तर, पूर्व तथा ईशान में लगवाएँ। नल का बहाव उत्तर या पूर्व की ओर ही बने रहना चाहिए।

अध्ययन कक्ष–

अध्ययन कक्ष के लिए पश्चिम एवं नैऋत्य के बीच में सर्वश्रेष्ठ स्थान है। यह स्थान बुध एवं गुरु का होता है। बुध बुद्धि का एवं गुरु ज्ञान का प्रतिनिधित्व करता है। इसीलिए यह स्थान, चिन्तन एवं मनन के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है। कक्ष में अध्ययन के लिए कुर्सी एवं मेज पूर्व या उत्तर की ओर रखनी चाहिए। पुस्तकों की अल्मारियाँ आग्नेय एवं नैऋत्य को छोड़कर सुविधानुसार कहीं भी लगायी जा सकती हैं। अध्ययन करते समय पूर्व या उत्तर की ओर मुँह करके बैठना चाहिए। इस कक्ष में माँ सरस्वती। इष्टदेव एवं गुरुदेव का फोटो लगा सकते हैं। अध्ययन कक्ष का द्वार पूर्व, पश्चिम या उत्तर में रखा जा सकता है तथा खिड़कियाँ पूर्व या उत्तर में ठीक रहती हैं।

वास्तु के विशेष नियम–

वास्तु शास्त्र व्यक्ति को प्रगति, सुरक्षा एवं शांति पूर्ण जीवन-यापन की ओर प्रेरित करता है। व्यक्ति को वातावरण एवं दिशाओं का समुचित बोध होने पर जीवन में सभी प्रकार के लाभ एवं यश की प्राप्ति होती है। इससे व्यक्ति का संतुलन बना रहता है तथा संतुलित व्यक्ति ही जीवन में स्वयं तथा दूसरों को लाभान्वित कर सफलता की ओर अग्रसर करता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को वास्तु शास्त्र के नियमों का सदैव पालन करना चाहिए। इस विश्व में शब्द, रस, रूप, स्पर्श एवं गंध का बड़ा ही महत्त्व है। व्यक्ति जिस वातावराण में रहता है तथा उसके घर की अंतःसज्जा का भी विशेष महत्त्व है। घर के प्रत्येक कक्ष की अंतःसज्जा वास्तु अनुरूप बनाने में निम्नलिखित बतों का विशेष ध्यान रखें।

1. घर के मुखियों को नींद ठीक से आए। अतः उसका कक्ष दक्षिण की ओर बनाएँ। दक्षिण दिशा यम का स्थान हो जो व्यक्ति को सुख ओर आराम की ओर प्रवृत्त करता है। इसलिए घर के शयन कक्ष में मध्यम प्रकाश, सुगंधित खुशबू का प्रयोग करें। दीवारें ऑफ व्हाइट एवं गुलाबी रंग की हो तो ठीक रहता है। इसी प्रकार पलंग पर भी काली नीली चादर न बिछाकर सफेद या हल्के रंग की चिकनी चादर बिछाएँ। संगीत की हल्की धुन जो कर्णप्रिय हो मङ्गलमय वातावरण का निर्माण करती है।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

2. घर का रसोईघर आग्नेय कोण में प्रशस्त माना गया है। यहाँ खाना बनाते समय गृहणी का मुख पूर्व की ओर होना चाहिए।

3. ईशान कोण के स्वामी शिव हैं। अतः इस दिशा में पूजाघर बनाने से व्यक्ति का पूजा में एकाग्रता से ध्यान लगा रहता है।

4. बड़े बच्चों के लिए पूर्व एवं ईशान तथा उत्तर एवं ईशान के मध्य में रहना उपयुक्त होता है। इस कक्ष में बच्चों की मेज कुर्सियाँ ईशान एवं पूर्व की ओर लगाएँ तथा मेज के आगे खुला स्थान रखें। यहाँ अध्ययन करने से बच्चों की पढ़ने में एकाग्रता बनी रहती है।

5. घर में गुलाब, चम्पा, चमेली, सदाबहार आदि के पौधे लगाएँ और पूर्व, उत्तर, तथा ईशान में तुलसी का पौधा अवश्य लगाएँ।

6. घर में स्थान उपलब्ध होने पर ईशान की ओर फव्वारा अथवा हरी घास का लॉन लगाएँ। यह आँखों और मन को ताजगी प्रदान करता है।

7. घर में पूर्व एवं उत्तर की ओर अधिक से अधिक खुला स्थान एवं रोशनदान तथा खिड़कियाँ बनाएँ ताकि सूर्य की पर्याप्त रोशनी और स्वच्छ हवा का निरंतर प्रवाह बना रहे।

8. अंतः सज्जा के हिसाब से घर के ड्राइंग रूम में प्राकृतिक दृश्य जिसमें सुन्दर झरने एवं नदी तथा पहाड़ों के मनोरम दृश्य हों, यथा स्थान पर लगाएँ।

9. देवी देवताओं, जंगली जानवरों एवं त्याज्य पक्षियों तथा महाभारत जैसे युद्धों के चित्र शयनकक्ष में कदापि न लगाएँ।

10. बीमार व्यक्ति एवं गर्भवती महिलाओं को पूर्व में ईशान की ओर आवश्यकता होने पर स्वस्थता के लिए रखें। इस दिशा में प्रातःकालीन सूर्य ऊर्जा से चमत्कारी प्रभाव पड़ेगा तथा स्वास्थ्य लाभ भी तेजी से होगा।

11. नवविवाहित दम्पत्ति को कदापि आग्नेय कोण में नहीं रखना चाहिए क्योंकि इस क्षेत्र में अग्नि और चुम्बकीय प्रभाव से पुरुष एवं स्त्री दोनों में प्रेम के स्थान पर खिंचाव एवं टेंशन उत्पन्न हो सकती है।

12. कन्याओं अथवा विवाह योग्य कन्याओं को भवन के वायव्य कोण में ठहाराना उचित रहता है। इस दिशा के स्वामी पवन देवता हैं जो जीवन में बदलाव एवं शीघ्र विवाह के लिए उपयुक्त है।

13. भवन के किसी भी भाग में लगे विम के नीचे कदापि न तो सोयें और न ही बैठें।

14. पढ़ाई करने वाले बच्चों की मेज के आगे दीवाल नहीं होनी चाहिए। यदि जगह की कमी हो तो मेज को खिड़की के सामने लगाएँ।

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

15. पुस्तकें, कपड़े एवं खेल आदि का सामान कक्ष के दक्षिण या दक्षिण-पश्चिम में लगाएँ।

16. भवन में पूजाघर, कभी भी किचन में या टायलेट, (स्नानघर) के नीचे, ऊपर तथा बराबर में न बनाएँ। इसके साथ ही सीढ़ियों के ऊपर-नीचे भी पूजाघर न बनाएँ।

17. भवन निर्माण में सीढ़ियों का विशेष महत्त्व है। वास्तु विरुद्ध, सोपान (सीढ़ी) से गृहस्वामी को दुष्परिणाम मिलते हैं। अतः भवन की सीढ़ियाँ नीचे से ऊपर की ओर इस प्रकार बनवाई जाएँ कि छत पर सीढ़ियों का दरवाजा पूर्व एवं उत्तर की ओर हो। सीढ़ियाँ भवन के पश्चिम एवं उत्तरी भाग में दक्षिणावृत्त हों तो प्रशस्त होता है। उत्तरी भाग की सीढ़ियां छत का ऊपर उठी तभी हो जब दक्षिण में भी कोई निर्माण किया गया हो।

18. अध्ययन कक्ष वायव्य, उत्तर एवं पूर्व में बनाना शुभ होता है।

सर्वेक्षण-1

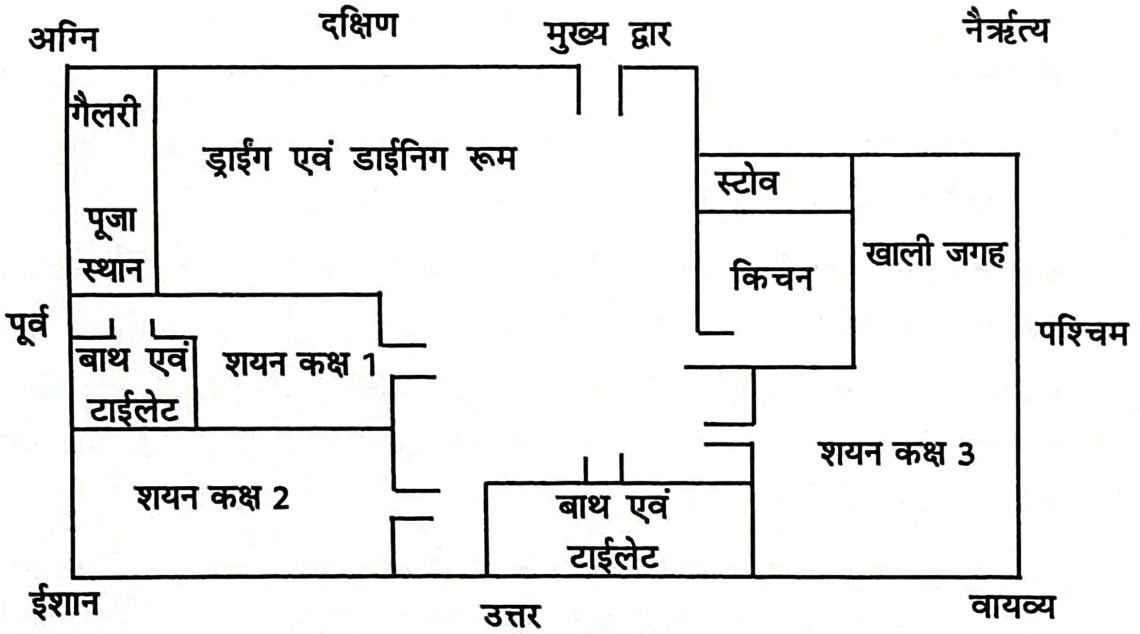

कुछ दिन पूर्व उपर्युक्त मकान जिसके स्वामी श्री सुरेश चन्द्र अग्रवाल हैं, का सर्वेक्षण करने को मिला। इस नक्शे में 3 बड़े रूम, एक ड्राइंग रूम, किचन, 2 टायलेट, बाथ रूम एवं खाली टैरेस बना है।

1. नैर्ऋत्य का कार्नर खाली एवं उसी दिशा में किचन की स्थिति वास्तु विरुद्ध है।

2. शयन कक्ष नं. 2 का टायलेट/बाथरूम की दिशा पूर्व की ओर ठीक नहीं है।

3. मुख्य दरवाजे के सामने छवतजी की दीवार से सटा टायलेट/बाथ रूम भी सही नहीं लगता।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

मकान मालिक की पत्नी ने बताया कि मकान लेने से पूर्व घर की माली हालत अच्छी थी। कुछ दिन बाद व्यवसाय में घाटा होने के कारण मालिक ने आत्महत्या का प्रयास किया उस समय वे कमरा नं. 2 में थे (पूर्व की ओर)। किसी व्यक्ति की सलाह पर अब वह कमरा नं. 3 में है, परंतु अभी भी पूर्ण स्वस्थ्य नहीं है और न ही व्यापार में कोई खास प्रगति हुई है। मिंया बीबी के अलावा परिवार में 2 बच्चे हैं। करीब 15 वर्ष का लड़का जो पढ़ाई में ठीक नहीं है तथा 21 वर्ष की लड़की जो छोटे कद की है माता के लिए चिंता का कारण है।

सर्वेक्षण-2

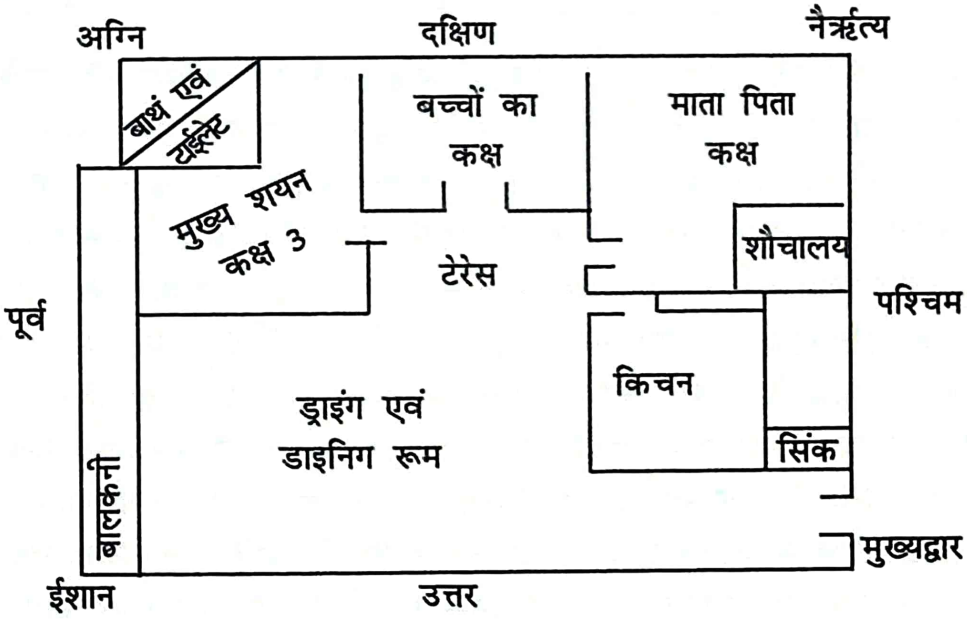

उपर्युक्त गृह के स्वामी श्री एस.पी जैन हैं। इसमें (भवन में) तीन कमरे। बड़ा ड्राइंग/डाइनिंग रूप तथा 2 बाथरूम/टायलेट हैं। यह अपने माता-पिता और बच्चों के साथ इस मकान में करीब 25 वर्षों से रह रहे हैं।

1. प्रथम दृष्टि में सर्वेक्षण करने पर पाया गया कि इनका मुख्यशयन कक्ष उचित दिशा में नहीं है।

2. किचन भी उचित दिशा में नहीं बना है। इसके एक ओर टेरेस करीब किचन के फर्श से एक ईंट ऊपर उठा हुआ है। किचन का प्लेटफार्म (खाना बनाने का स्थान) गलत दिशा में है।

3. दोनों कमरों में बाथरूम टायलेट भी गलत दिशा में हैं। श्री जैन एक कुशल व्यापारी होते हुए भी पिछले दो वर्ष से परेशान हैं। घर के पास मधु विहार में एम.सी.डी द्वारा इनकी दुकान सील कर दी गई थी, जो पुनः खुल गई है जिसे श्री जैन नए सिरे से बना रहे हैं। श्री जैन ने घर में करीब दो वर्ष पूर्व कमरों का फर्श एवं टैरेस बनवाया था।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

औद्योगिक वास्तु

हरिओउम कौशिक

आदिकाल से हिन्दु धर्मग्रन्थों में पञ्च महाभूतों, चुम्बकीय प्रवाहों, दिशाओं, वायुप्रभावों और गुरुत्वाकर्षण के नियमों को ध्यान में रखते हुए वास्तुशास्त्र की रचना की गयी तथा यह बताया गया कि इन नियमों के पालन से मनुष्य के जीवन में सुख-शान्ति आती है और उत्तरोत्तर धन-धान्य में वृद्धि होती है। वास्तु वस्तुतः पृथ्वी, जल, अग्नि वायु और आकाश इन तत्वों के समानुपातिक समिश्रण का नाम है। इसके सही प्रबन्धन से "बायो इलैक्ट्रिक मैग्नेटिक एनर्जी" की उत्पत्ति होती है। जिससे आवासीय, व्यवसायिक तथा औद्योगिक वास्तु भवन में रहने वाले अथवा कार्य करने वाले मनुष्यों को उत्तम स्वास्थ, धन एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। मानव शरीर पंच तत्वों से निर्मित होता है और अन्ततः इन पञ्च तत्वों में ही विलीन हो जाता है। मानव शरीर में इन पाँच तत्वों की स्थिति इस प्रकार होती है–मानव मस्तिष्क में आकाश, कन्धों में अग्नि, नाभि में वायु, घुटनों में पृथ्वी और पादान्त में जल आदि तत्वों का निवास होता है। इसी प्रकार वास्तु भवन में भी इन पाँच महाभूतों की समुचित व्यवस्था करनी आवश्यक है। औद्योगिक वास्तु भवन में मशीन व मनुष्यों के सहयोग से कच्चे माल को तैयार कर उत्पाद सम्बन्धी समाज की आवश्यकता विपणन केन्द्र (मण्डी) के माध्यम से पूरी की जाती है। इस भवन में कच्चे व तैयार माल के भंडार के साथ अग्नि या बिजली का प्रयोग भी अधिक मात्रा में किया जाता है। उद्योगों में अग्नि तत्व का प्रयोग अधिक मात्रा में होने से औद्योगिक भवन वास्तु में पञ्च महाभूतों का समन्वयन व संतुलन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इन पञ्च महाभूतों के संतुलन के बिगड़ने से रोग, शोक व पीड़ा होती है। अत एव इन तत्वों का औद्योगिक वास्तु में विचार करना अति आवश्यक है। भूखण्ड के आकार व माप का प्रभाव औद्योगिक प्रगति एवं समृद्धि पर भी पड़ा करता है। धन लाभ गणना में आयादि चक्र का उपयोग भी लाभप्रद है। आयादि गणना भूखण्ड तथा भवन दोनों के लिए करनी चाहिए।

आयादि गणना में उद्योग किस प्रकार का अथवा किस का वर्ग है इसका विशेष महत्त्व होता है। उदाहरणार्थ– खदान उत्खनन परक उद्योग, जहाँ धातु या भूमि तत्व की प्रधानता हो वहाँ सिंह आय का चयन करें तथा उद्योग का द्वार पश्चिम दिशा में न बनाएँ। प्रवेश द्वार पश्चिम दिशा को छोड़कर अन्य किसी भी दिशा में बनाया जा सकता है। होटल, रेस्टोरैन्ट, रसायन-उद्योग, की

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

व तेल जहाँ द्रव या जल तत्व की प्रधानता हो, वहाँ गज आय का चयन करें। उद्योग का प्रवेश द्वार पश्चिम दिशा में बनाएँ। सिले हुए कपड़े (गारमेन्ट्स) या वस्त्र उद्योग के लिए वृषभ आय का चयन करें तथा प्रवेश द्वार के लिए पूर्व दिशा का निर्धारण करना शुभफलदायी होता है। ऐसे उद्योग जहाँ बाजार से तैयार माल खरीद कर उत्पादन होता है, जैसे पंखे, बिजली के उपकरण, वाहन टैलीविजन या कम्प्यूटर आदि के लिए ध्वज आय का चयन सर्वोत्तम होता है। चीनी, चावल या आटा (मैदा) मिल के लिए वृषभ आय का चयन करें।

उद्योगों का वास्तु–

उद्योग में जो संसाधन सर्वाधिक महत्व का हो उसकी उपलब्धि व निर्बाध आपूर्ति को ध्यान में रखकर ही भूखण्ड का चयन करें। भवन में भी मशीनें व कच्चा माल इस प्रकार रखना चाहिए कि उत्पादन निर्बाध गति से न्यूनतम लागत मूल्य पर आधारित हो। जलतत्त्व पर आधारित उद्योग–शराब, बीयर के कारखाने में जल स्रोत उत्तर–पूर्व दिशा में रखें। भूमिगत जलाशय भी उत्तर–पूर्व दिशा के धनात्मक उर्जा क्षेत्र में ईशान कोण से ÷½ अंश आगे पीछे बनायें। अग्निपरक उद्योग, लौह उत्पादन, अल्यूमीनियम सीमेन्ट या कांच उद्योग में भट्टी व बॉयलर का प्रयोग होने से भट्टी को दक्षिण पूर्व दिशा (आग्नेय कोण) में बनायें तथा दक्षिण–पश्चिम (नैऋत्य कोण) में खपत वाला माल रखें। द्रव्य पर आधारित उद्योग जैसे रिफाइनरी खाद्य तेल में द्रव्य का प्रवाह दक्षिण से उत्तर की ओर होना चाहिए। जहाँ द्रव्य से दाने बनाने का सम्बन्ध हो। जैसे चीनी उद्योग या खांडसारी हो तो यह क्रिया दक्षिण–पूर्व (आग्नेय कोण) भाग में सम्पन्न करें। तैयार माल की पैकिंग व बिक्री पश्चिम–उत्तर (वायव्य कोण) में प्रयोग करें। पैट्रोलियम उत्पाद व कोयले का यदि उत्पादन में ईंधन के रूप में करना हो तो इनका दक्षिण या दक्षिण–पूर्व दिशा में भंडारण करें। तेल का प्रवाह सदा दक्षिण से उत्तर अथवा पश्चिम से पूर्व दिशा की ओर होना चाहिए। उत्पादन कार्य में यदि औद्योगिक गैस या दबाव युक्त (ब्वउचतमेमक ।पत) का प्रयोग होता है, तो इनका भंडार दक्षिण या दक्षिण पश्चिम दिशा में करें। तैयार माल सदैव पश्चिमोत्तर दिशा में रखें तथा वहीं से बिक्री के लिए माल बाहर भेजें। औद्योगिक भवन की सफलता व समृद्धि में वातावरण व आस–पास की बस्ती की विशेष भूमिका रहती है।

औद्योगिक वास्तु को प्रभावित करने वाले तत्व–

1. **निकटवर्ती स्थान–** निकटवर्ती स्थानों में टीला, पहाड़ी, पर्वत, नदी, नहर, झील, झरना, अथवा समुद्र ये सभी प्राकृतिक वस्तुएँ प्रभावित करती हैं। फर्श का ढलान नालियाँ अथवा जल का प्रवाह औद्योगिक वास्तु की शुभता के लिए काफी महत्व रखते हैं। औद्योगिक भूखण्ड के समीप पूजा–स्थल फलाई–ओवर, बिजली सबस्टेशन, ट्रॉन्सफार्मर आदि का

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

होना, भले ही प्राकृतिक न होकर मानव निर्मित हो किन्तु औद्योगिक भवन के वास्तु को निश्चय ही प्रभावित करेगा।

2. **उद्योग भवन की स्थिति व आकार–** उद्योग की प्रगति व समृद्धि में भवन के आकार व माप का प्रभाव तथा स्थिति का विशेष योगदान हुआ करता है। भूखण्ड के नियमित आकार को शुभ व अनियमित आकार को अशुभ माना गया है। यदि भूखण्ड अनियमित आकार का है तो उसका शोधन अवश्य करना चाहिए। औद्योगिक वास्तु में भूखण्ड आयताकार, वर्गाकार, षट्भुज अथवा अष्टभुज होना शुभ है। भूखण्ड के किनारे सम संख्या में रखें। भूखण्ड में भवन की स्थिति इस प्रकार रखें कि दक्षिण-पश्चिम भू-भाग भारी व ऊँचा तथा उत्तर-पूर्व भाग थोड़ा हल्का व नीचा रहे।

3. **प्रवेश द्वार के सामने टीला, पहाड़ी या पर्वत का होना–** यह महान वास्तु दोष है। प्रवेश द्वार की बाधा मालिक व श्रमिकों के मध्य झगड़ा वा मतभेद पैदा कर उत्पादन में कमी करता है। कभी मजदूर हड़ताल करते हैं तो कभी काम मन्द गति से होता है। कभी प्रबन्धकों को सही मात्रा का उत्पादन भी कम जान पड़ता है, जिससे मन में असंतोष व व्यर्थ का तनाव बढ़ता है। यदि टीला, पहाड़ी या कोई ऊँची इमारत यदि दूर है और दिन में किसी भी समय उसकी छाया उद्योग-परिसर या भवन पर नहीं पड़ती तो निश्चय ही वास्तुदोष बहुत कम व निष्प्रभावी होता है। अतः औद्योगिक वास्तु भवन पर समीपवर्ती भवन या ईमारत की छाया नहीं पड़नी चाहिए।

4. **प्रवेश द्वार के समक्ष विशाल वृक्ष का होना–** मुख्य द्वार के समक्ष विशाल वृक्ष का होना आर्थिक लाभ व प्रगति में बाधक होता है। ऐसी स्थिति में मुख्य द्वार को इस प्रकार खिसकायें कि वृक्ष द्वार के सामने न रहकर एक ओर रहे। प्रवेश द्वार अथवा परिसर पर वृक्ष की छाया न पड़ती हो तो वास्तु दोष स्वतः निष्प्रभावी हो जायेगा। वृक्ष की छाया से बाधित प्रवेश द्वार मालिक को सदैव उलझन में रखता है। उसकी कठिनाईयाँ व बाधायें समाप्त नहीं होती हैं। श्रमिक वर्ग भी काम न करने के नये बहाने खोजा करता है परिणामस्वरूप उत्पादन व आर्थिक स्थिति में गिरावट आती है।

5. **पशु-पक्षी व अन्य जीव-जन्तुओं का प्रभाव–** बड़े उद्योगों के प्लाट भी बहुत बड़े होते हैं। अनेक बार पशु-पक्षी व जीव-जन्तु इन स्थानों में रहना प्रारम्भ कर देते हैं। इन्हें इन स्थानों पर आवास बनाने की सुविधा न मिले तो निश्चय ही उत्तम होगा। चील, कौऐं, चमगादड़ यदि भूखण्ड में रहें तो प्रबन्धक मण्डल व श्रमिक वर्ग के बीच मतभेद या वैर बढ़ता है। साँप विच्छु या दीमक होने पर समाज व देश विरोधी गतिविधियाँ उस भूखण्ड से हुआ करती हैं और अपराधी प्रायः कारखाने के परिसर में छिपकर रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

औद्योगिक भूखण्ड में मुख्य द्वार की स्थिति–

ईशान– में द्वार हो तो धन वैभव, सुख, समृद्धि, यश मान प्रतिष्ठा, श्रमिक वर्ग का पूर्ण सहयोग व प्रबन्धक वर्ग वैभव से परिपूर्ण होता है।

पूर्व– में द्वार हो तो मान प्रतिष्ठा एवं यश की वृद्धि होती है। अग्नि कोण में हो तो अग्निकाण्ड, दुर्घटना, चोरी, डकैती राजदण्ड, आतंकी आक्रमण, राजदण्ड, श्रमिक हड़ताल आदि परेशानियाँ आती हैं।

दक्षिण– में द्वार हो तो महिलाओं से सम्बन्धित उत्पादनों में अधिक लाभ होता है।

नैऋत्य– में द्वार हो तो मुकदमे बाजी अस्वाभाविक दुर्घटनायें एवं मान प्रतिष्ठा में कमी के साथ ही धन की हानि भी होती है। उत्पादन में भी कमी आ जाती है।

पश्चिम- में द्वार हो तो श्रमिक निष्ठापूर्वक कार्यकर धन मान व यश बढ़ाते हैं।

वायव्य– में मुख्यद्वार हो तो मानसिक उद्विग्नता, अशान्ति, धन हानि होती है।

उत्तर– में द्वार तो वैभव, सुख, समृद्धि आदि प्राप्त होती है।

उद्योग स्थल व्यवस्था–

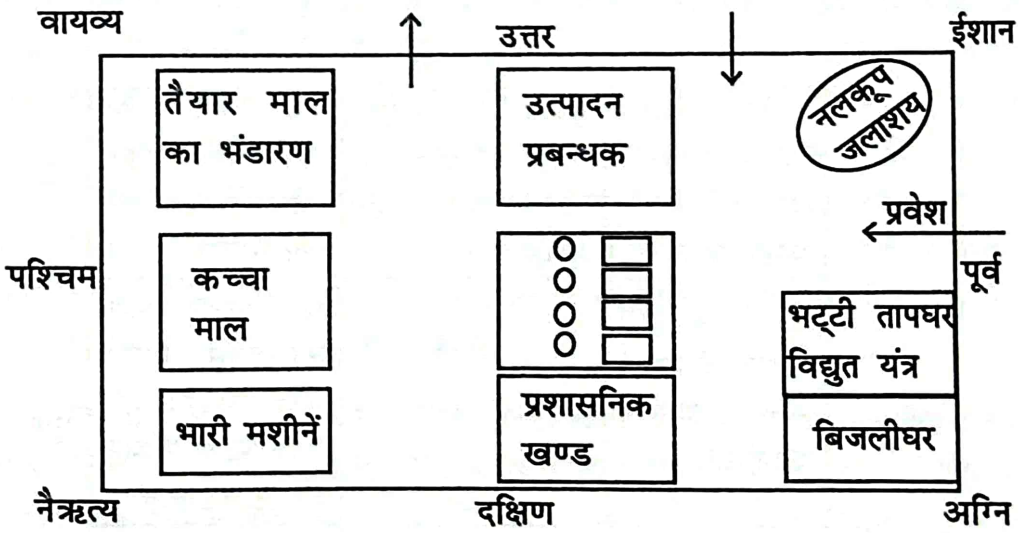

कारीगर का मुख पूर्व या उत्तर दिशा में रखना शुभ है। मशीनों पर रोशनी की पर्याप्त व्यवस्था करें।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

उद्योग में प्रशासन खण्ड व आन्तरिक व्यवस्था–

वायव्य — उत्तर — ईशान

विपणन कार्यालय विकास, कम्प्यूटर कार्यालय शौच व प्रसाधन	वित्त प्रबन्धन कोषागार उपासना–कक्ष	प्रशासन, वाणिज्य, कार्यालय, अतिथिकक्ष, तहखाना
कच्चा माल या अर्थ निर्मित माल का भंडार, उत्पादन- नियोजन, वरिष्ठ अधिकारी कक्ष		भूगर्भतल, प्रार्थनाकक्ष, सामान्य स्टाफ व जल का स्थान
कारखाने का मालिक महाप्रबन्धक, प्रशासन अधिकारी, उत्पादन व वितरण व्यवस्था	नियमन व नियन्त्रण कक्ष, वरिष्ठ अधिकारी कार्यालय सीढ़िया, शौच व प्रसाधन	कैंटीन, पाकशाला बॉय- लर, विद्युतउत्पादन, भट्टी, अनुसंधान व विकास अभिकल्पन

पश्चिम — पूर्व

नैर्ऋत्य — दक्षिण — अग्नि

उत्पादन क्षेत्र में यंत्र व उपकरणों की स्थिति–

उत्तर

हल्की कम बिजली खपत वाली मशीनें व दस्ती औजार	हल्की मशीनें जिनमें बिजली व अग्नि तत्व का अभाव है।	ट्रक का भार तोलने की मशीन, माल के आवागमन का रिकार्ड
मंझली व भारी मशीनें जो कच्चे माल से उत्पादन करती हों		धुलाई, छंटाई, सफाई का काम, कच्चे माल का निरीक्षण व वर्गीकरण परीक्षण यंत्र व उपकरण
सबसे भारी मशीनें ओवर हेड क्रेन, लिफ्ट ट्रक, भारी सांचे व फिक्सचर उत्पादन के लिए	भारी मशीनें, कच्चे माल को तैयार माल में परिवर्तित करने के लिए	विद्युत गृह, डीजल जनरेटर, भट्टी, बॉयलर माल को गलाना, पकाना व अनुसंधान व विकास कार्य

पश्चिम — पूर्व

दक्षिण

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

औद्योगिक भवन और सावधानियाँ–

आवासीय भवन की व्यवस्था एवं उद्योग (फैक्ट्री) की व्यवस्था में अन्तर होता है। यह अन्तर फैक्ट्री में उत्पादित वस्तुओं व यंत्रों आदि के कारण आता है। अतएव फैक्ट्री आदि की सज्जा-व्यवस्था इस प्रकार रखें– सिक्योरिटी गार्ड का कमरा दक्षिण-पूर्व में हो सकता है अगर गेट (द्वार) पूर्व में हो तो। उत्तर में द्वार होने पर इसे उत्तर-पश्चिम की तरफ रखा जा सकता है। द्वार पश्चिम में होने पर इसे दक्षिण-पश्चिम में बनाया जा सकता है। दक्षिण में द्वार होने पर यह दक्षिण-पश्चिम में स्थित हो सकता है, लेकिन इसे बाऊन्ड्री से दूर होना चाहिए। उत्तर और पूर्व में दक्षिण व पश्चिम की तुलना में अधिक खुली जगह छोड़नी चाहिए। कार पार्किंग का खुला स्थान उत्तर, उत्तर-पूर्व या पूर्व में हो सकता है।

भवन की ऊँचाई दक्षिण-पश्चिम में अधिक होनी चाहिए। फर्श का स्तर भी दक्षिण-पश्चिम में ऊँचा होना चाहिए। केन्द्रीय प्रशासकीय कार्यालय खण्ड उत्तर या पूर्व में हो सकता है लेकिन इसकी ऊँचाई मुख्य भवन से कम होनी चाहिए। कर्मचारियों के क्वाटर, नौकरों के क्वाटर, शौचालय खण्ड आदि दक्षिणपूर्व या उत्तर- पश्चिम में हो सकते हैं लेकिन इन भवनों की ऊँचाई मुख्य भवन की ऊँचाई से कम होनी चाहिए। इनके क्वाटर्स के लिए बहु मंजलीय इमारत हो तो दक्षिण-पश्चिम को चुनना चाहिए इसके लिए दक्षिण-पूर्व के कोण से बचना ही उचित है। हर स्थिति में इसे मुख्य भवन और अहाते की दीवार से दूर रखना चाहिए।

जब औद्योगिक इकाई बड़ी हो और पूजा कक्ष या छोटे से मन्दिर का निर्माण करने का विचार हो तब उसे पश्चिम की ओर मुख किये हुए पूर्व में निर्मित करना चाहिए। चिमनी का स्थान निर्धारित करने पर विशेष ध्यान देना चाहिए क्योंकि उसे आग के स्थान के पास बनाना होगा। यह स्थान दक्षिण-पूर्व में होगा और इसलिए भवन की एक अन्य इकाई अधिक ऊँची दक्षिण-पश्चिम कोण में बनानी चाहिए। वायव्य में यन्त्र न लगाएँ। यदि लगाते हैं उसका समस्त उत्पादन कहाँ जायेगा? यह पता ही नहीं लगेगा और व्यवसाय में निरन्तर घाटा होता रहेगा। ईशान में यन्त्र लगायेंगे तो यन्त्र अक्सर खराब रहेगा और व्यवसायिक संतुलन अव्यवस्थित हो जायेगा। नैर्ऋत्य में वर्क शॉप बनाते हैं तो यहाँ उत्पादन क्रिया कम हो जायेगी।

मशीनें लगाते समय पृथ्वी की चुम्बकीय स्थिति में ध्यान रखना चाहिए। पृथ्वी की चुम्बकीय शक्ति उत्तर से दक्षिण की ओर गमन करती है इसलिए मशीन का मुख (जिधर से कच्चा माल डाला जाता है) दक्षिण की ओर तथा निकासी (जिधर से उत्पादन निकलता है) उत्तर की ओर रखना चाहिए। ऐसा न करने पर मशीन बार-बार खराब होगी और अपेक्षित उत्पादन नहीं होगा। इकाई के मध्य में मशीन लगाने पर उत्पादन सदा रूग्ण रहेगा। इकाई कभी चलेगी और कभी बन्द होगी। इसमें चैन नहीं मिलेगा। किसी बीम, गाटर या लोहे की लम्बाकार आकृति की शृंखला के नीचे उत्पादन यन्त्र न बनायें। यह बार-बार खराब होगा। गैसीय उत्पादों में यन्त्र का मुख वायव्य या उत्तर की ओर रखें। इसे आग्नेय की ओर न करें। औद्योगिक वास्तु भवन के दक्षिण-पश्चिम कोने का उपयोग फैक्ट्री मालिक या मैनेजिंग डायरेक्टर के कार्यालय के लिए किया जा सकता है,

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

इस विशेष स्थान की स्थिति के कारण वह बहुत शक्तिशाली हो जायेगा। भवन के चारों ओर खुला हुआ स्थान छोड़ा जाना चाहिए। उत्तर और पूर्व की ओर खुला हुआ स्थान अधिक होना चाहिए। निर्माण स्थल का ढलान उत्तर पूर्व कोने की ओर होना चाहिए। सेप्टिक टैंक को पूर्व या उत्तर में रखना चाहिए लेकिन उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पश्चिम क्षेत्र में नहीं। इस प्रकार जल शुद्ध करने और निस्सारी (एफलुयेंट) संयंत्रों को उत्तरी और पूर्वी ओर रखा जा सकता है। ट्रांस फार्मर, जनरेटर, ब्वायलर भट्टियाँ या अन्य इंजिन जिसमें आग का उपयोग होता है, केवल दक्षिण पूर्वी क्षेत्र में होनी चाहिए। तेल भंडार टंकियों के भूमि के अन्दर होने की स्थिति में उन्हें उत्तर-पूर्व क्षेत्र में होने चाहिए। यदि इन्हें भूमि के ऊपर रखना हो तो उत्तर-पूर्व क्षेत्र में न रखकर किसी अन्य क्षेत्र में रखना चाहिए।

उत्पादित वस्तुओं को प्रवेश द्वार के निकट रखना चाहिए ताकि उन्हें शीघ्र बाहर भेजा जा सके। लेकिन इससे इमारत के पूर्व उत्तर और उत्तर पूर्व के फर्श पर अधिक भार नहीं पड़ना चाहिए।

आदर्श औद्योगिक इकाई का रेखाचित्र–

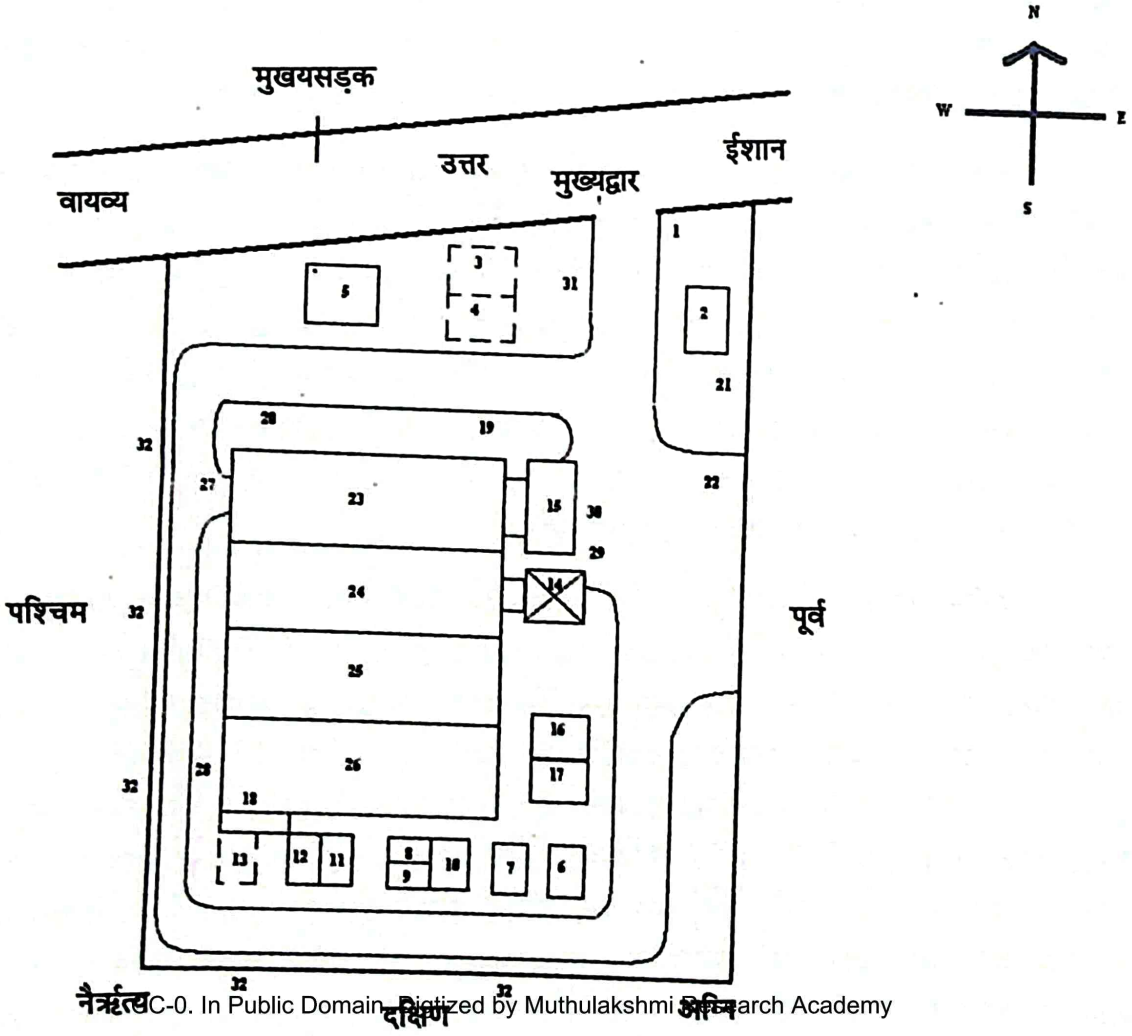

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

रेखाचिक का परिचय–

1. बोरबेल, 2. भूमिगत पानी की टंकी, 3. जल शुद्धिकरण संयन्त्र, 4. सेप्टिक टैंक, 5. वेब्रिज, 6. ब्वायलर हाउस, 7. ट्रांसफॉर्मर, 8. एल.टी.रूम, 9. डीजल स्टोर, 10. जनरेटर, 1-12. भूमि के ऊपर स्थित तेल, एसिडस्टोर, रिफाइनरी स्टोर 13. ओवरहैड टैंक (नीचे शौचालय), 14. मन्दिर, 15. प्रशासन, 16. कैन्टीन, 17. रसोई, 18. शौचालय, 19. घास मैदान (लॉन), 20. हल्के सामान रखने का स्थान, 21. कारों और साइकिलों का स्थान, 22. कारों और साइकिलों का स्थान, 23. उत्पादित वस्तुओं के रखने हेतु, 24. हल्की मशीनों के रखने हेतु, 25. मध्यम भार की मशीनें, 26. भारी मशीनों/स्टोर का स्थान, 27. डाक विभाग (डिस्पैच), 28. कच्चे माल का स्थान, 29. श्रमिकों के प्रवेश का स्थान 30. कार्यालय के कर्मचारियों के प्रवेश का स्थान, 31. सुरक्षा (सिक्योरिटी), 32. बड़े-बड़े वृक्ष।

औद्योगिक भवन का मानचित्र–

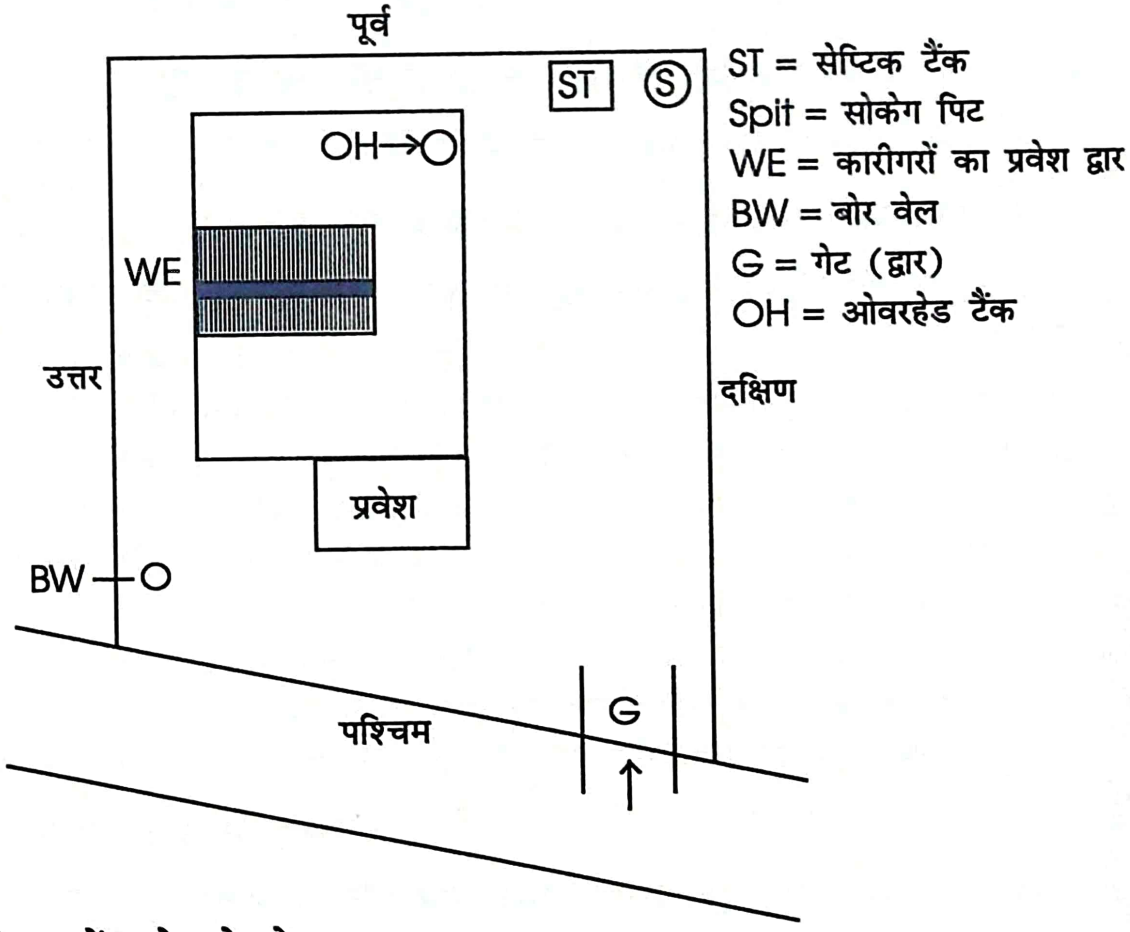

निरीक्षण में पाये गये दोष–

1. सैप्टिक टैंक (ST) और सोकेज पिट (S) दक्षिण पूर्व कोने में है जो अशुभ है।
2. फैक्ट्री के मुख्य द्वार का दक्षिण पश्चिम में होना अशुभ है।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

3. कारीगरों का प्रवेश का द्वार पश्चिम में है जो अशुभ है।

4. दक्षिण पूर्व कोने में ऊपर स्थित टंकी अशुभ है।

5. दक्षिण पूर्व कोने का विस्तार किया गया है जो अशुभ है।

6. द्वार का स्थान दक्षिण पश्चिम में है जो अशुभ है।

7. पूर्व और उत्तर में खुला स्थान दक्षिण पश्चिम की अपेक्षा कम है जो अशुभ है।

सुधार के लिए सुझाव–

1. सैप्टिक टैंक और सोकेज पिट के दुष्प्रभावों को दूर करने के लिए दो गोलाकार और गहरी जल संग्रह टंकियाँ उत्तर पूर्व में बनानी चाहिए।

2. फैक्ट्री में प्रवेश करने का द्वार उत्तर पश्चिम की ओर ले जाएँ।

3. कारीगरों का प्रवेश द्वार और स्टोर का प्रवेश द्वार उत्तर पूर्व कोने में जाय।

4. ओवरहैड टंकी दक्षिण पश्चिम कोने में ले जाय।

5. दक्षिण पश्चिम में बढ़े हुए कोने को बाड लगाकर काट दें।

6. दक्षिण और पश्चिम की तरफ खुले स्थान को कम करने के लिए दूसरी सामानान्तर बाड़ लगा दें।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

व्यावसायिक वास्तु में दुकान एवं शोरूम

डॉ. दीपक कुमार

वास्तुशास्त्र स्थापत्य और निर्माण के विभिन्न पक्षों को मानव के सुख एवं कल्याण से संबंध स्थापित करता है। वास्तुशास्त्र के आधार पर निर्मित मकान जीवन के तीनों पक्षों आध्यात्मिक, भावात्मक एवं भौतिक को समृद्ध करने में सहायक होता है। वास्तुशास्त्र का वैदिक विज्ञान व्यक्ति की उर्जा का ब्रह्माण्ड की उर्जा के साथ सम्बन्ध स्थापित करके जीवन शैली की गुणवत्ता को बढ़ाता है। स्थापत्य वेद अथर्ववेद का एक उपवेद है यही स्थापत्य आज वास्तुशास्त्र के रूप में है। वास्तुशास्त्र का ब्रह्मांड विज्ञान, खगोल विज्ञान, भूविज्ञान आदि से घनिष्ठ संबंध है। हमारे सौर परिवार में पृथ्वी के अतिरिक्त ऐसे भी ग्रह हैं जिनका हमारे जीवन पर प्रभाव पड़ता है, पंचमहाभूतों से निर्मित भवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों का संबंध ग्रहों से होता है। ये ग्रह इन क्षेत्रों को विशेष रूप से प्रभावित करते हैं। ज्योतिषशास्त्र और वास्तुशास्त्र इन्हीं का अध्ययन करता है।

वास्तुशास्त्र के भूवैज्ञानिक और भौगोलिक तथ्यों को भूमि और उसके आसपास के वातावरण के अध्ययन द्वारा समझा जा सकता है। भूमि की सुगंध, स्पर्श, रंग और स्वाद की जाँच से वास्तु के भू-वैज्ञानिक पक्षों की जानकारी मिलती है। आवासीय और व्यावसायिक वास्तु दोनों में अत्यधिक अन्तर है। गृहवास्तु का मुख्य उद्देश्य पुरूषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) की प्राप्ति करना है। जबकि व्यावसायिक वास्तु का मुख्य उद्देश्य धनोपार्जन करना है। गृहवास्तु के प्रतिकूल होने से केवल एक परिवार प्रभावित होता है किन्तु व्यावसायिक वास्तु के प्रतिकूल होने पर बहुत लोग प्रभावित होते हैं। जैसे मालिक, मैनेजर, कम्पनी, ग्राहक और शेयरधारक आदि। वास्तुशास्त्र एक दक्ष (कुशल) एवं तनाव युक्त कार्यप्रणाली के लिए प्रेरक कार्यस्थल का निर्माण करता है। शान्त, ऊर्जा शील वातावरण कार्य की गुणवत्ता को बढ़ाता है। इसका मुख्य उद्देश्य स्फूर्तिदायक, उत्साहवर्द्धक और कार्यसक्षम परिवेश प्रदान करना है।

व्यावसायिक वास्तु में दुकान

व्यापार की मुख्य गतिविधि क्रय-विक्रय (खरीद-बिक्री)का मुख्य-केन्द्र बिन्दु दुकान एवं शोरूम है। इसी कारण इसे व्यावसायिक वास्तु की सबसे महत्वपूर्ण ईकाई माना जाता है। अतएव दुकान एव शोरूमका विचार गंभीरतापूर्वक किया जाना जाता है। दुकान का प्रचलन प्राचीन काल से ही है इसी कारण वास्तुशास्त्र में इसका वर्णन मिलता है। दुकान व शोरूम का स्थान-निर्धारण कस्बा-कॉलोनी के मध्य अथवा बाह्य एक निश्चित स्थान पर किया जाता है। परम्परागत रीति से

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

भी बाजार में दुकान एवं शोरूम बनाये जाते थे। एतदर्थ नगर का मुख्य बाजार सबसे उपयुक्त स्थान माना जाता था। आज व्यावसायिक केन्द्र शॉपिग काम्पलैक्स एवं स्थानीय विपणन केन्द्रों के अलावा होटल, हवाई अड्डा, बस अड्डा, रेलवे स्टेशन, घर के अन्दर दुकान खोलने का प्रचलन बढ़ गया है। आज दुकान आजीविका का मुख्य साधन बन गया है। जिस प्रकार जीवन में सुख एवं समृद्धि हेतु आवास बनाते समय वास्तु के नियमों का विचार किया जाता है। उसी प्रकार दुकान एवं शोरूम में वास्तु के सिद्धांतों का विचार करना अत्यन्त आवश्या है क्योंकि व्यापार आजीविका का मुख्य साधन है और मानव को उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

व्यावसायिक भूखण्ड की अनिवार्य शर्तें

कमर्शियल भूखण्ड जो किसी उद्योग या व्यवसाय दुकान, शोरूम, फैक्ट्री के लिए खरीदा जा रहा हो, वह समचौरस वर्गाकार अथवा लम्बोतर आयताकार होना चाहिए। लम्बोतर भूखण्ड यदि हो तो उसका अनुपात 1:2 का हो तो ही उत्तम रहता है। व्यावसायिक भूखण्ड के पूर्व दक्षिणी एवं नैर्ऋत्य कोण सही 90^0 के ही होने चाहिए। तभी वह भूखण्ड व्यावसायिक कहलायेगा एवं धन देने में सक्षम होगा। भूखण्ड पूर्ण समतल होना चाहिए। खड्डे-गड्डे वाली भूमि धनदायक नहीं होती।

दो बड़े भूखण्डों के मध्य छोटा भूखण्ड

व्यावसायिक भूखण्ड खरीदते समय इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि उपेक्षित भूखंड दो बड़े-बड़े भूखंडों के मध्य छोटा भूखण्ड न हो क्योंकि ऐसा भूखण्ड जो दो समान उद्देशीय भूखण्ड के मध्य है, अच्छा नहीं कहलाता, ऐसा भूखण्ड व्यापार में घाटा देता है तथा भूस्वामी को दरिद्र बना देता है।

धनप्रदायक कमर्शियल भूखण्ड

यदि भूखण्ड का उत्तर-पूर्वी भाग अर्थात् ईशान बढ़ा हुआ हो तो ऐसा भूखण्ड खूब धन, लक्ष्मी-दौलत को देने वाला होता है। यदि ईशान कोण 90^0 से कम हो तो भी शुभता प्रदान करेगा। इस भूखण्ड का स्वामी धन के साथ कीर्ति भी प्रदान करता है।

व्यापारिक भूखण्ड और राजमार्ग

भूखण्ड के उत्तर या पूर्व की ओर से कोई राजमार्ग (मार्ग) आकर वहीं समाप्त होता है तो इसे अत्यन्त शुभ समझना चाहिए परन्तु ध्यान रहे कि यह मार्ग भूखण्ड के कोने पर हो तभी शुभ है अन्यथा अशुभ। यह भूखण्ड व्यापारिक दृष्टिकोण से अच्छा है। यदि व्यावसायिक भूखण्ड मुख्य राजमार्ग से जुड़ा है तथा एक से अधिक दुकानें बनानी हैं तो कभी भी रोड के समानान्तर एक सीध में दुकानें नहीं बनानी चाहिए। बनाने पर दुकान उतनी ज्यादा लाभदायक नहीं होती हैं। अतः राजमार्ग से ऊपर प्लींथ उठाकर दुकान बनानी चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

दुकान वेध ओर निवारण

दुकान अथवा शोरूम के ठीक बाहर कोई ध्वजा, खम्भा, विज्ञापन बोर्ड या ग्राहकों को आकर्षित करने की सामग्री लगाई जाये तो प्रवेश-द्वार के सामने नहीं होनी चाहिए। अपितु साइज के अनुसार यह सामग्री प्रवेश द्वार को वेध न करती हुई उसके दोनों ओर होनी चाहिए। यदि दरवाजे के ठीक सामने कोई सामग्री है जिससे वेध हो रहा है तो अत्यन्त शीघ्र हटा देना चाहिए अन्यथा धन हानि होती है। आजकल अधिकतर दुकानवाले अपने प्रचार के लिए अपने दुकान के नामवाला बोर्ड या कुछ दुकान में बेचने वाले सामग्री ठीक दरवाजे से सटाकर लगा देते हैं यह कार्य स्वयं के समृद्धि के लिए करते हैं किन्तु वास्तुदोष के कारण समृद्धिदायक न होकर अशुभ परिणाम उत्पन्न करते है अतः दुकान वेध से हमेशा बचना चाहिए।

दुकान में कोण विचार

व्यापारिक काम्प्लेक्स में दुकान/ शोरूम बनाने की परम्परा आज जोरों से चल रही है। अतः दुकान की वास्तु के साथ-साथ हमें सम्पूर्ण व्यापारिक काम्प्लेक्स पर वास्तु सम्मत विचार करना चाहिए। इसी कड़ी में महत्वपूर्ण तथ्य निम्न हैं:- कमर्शियल काम्प्लेक्स में अग्निकोण की ओर भारी निर्माण कराना चाहिए। वह निर्माण धन-प्रदान करने वाला होता है। जबकि ईशान कोण में भारी निर्माण करना धननाशक होता है।

दुकान तथा शोरूम में मुख्यद्वार की स्थिति

व्यापारिक काम्प्लेक्स में वायण्य की ओर किया गया निर्माण अत्यन्त शुभ होता है जबकि नैऋव्य की ओर बढ़ाया गया कोना अशुभ होता है।

दुकान अथवा शोरूम में दरवाजा की स्थिति

किसी भी दुकान का दरवाजा हमेशा अन्दर की ओर खुलना चाहिए। ऐसा होने से लक्ष्मी व सम्पन्नता दुकान में प्रवेश करती है। दुकान अथवा शोरूम में इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए कि प्रवेश द्वार संकरा न होकर चौड़ा होना चाहिए। इससे दुकान की सम्पन्नता-आवक बढ़ती है।

पूर्वाभिमुखी दुकान या शोरूम

1. मालिक/मैनेजर को उत्तर की ओर मुख करके दक्षिणी-पश्चिमी क्षेत्र में बैठना चाहिए। कैश बाक्स बायीं ओर इस प्रकार रखा हो कि वह उत्तर दिशा की तरफ खुले क्योंकि उत्तर दिशा में धन का स्वामी कुबेर का स्थान है।

2. भारी समान, बिक्री योग्य सामान के रैक दक्षिणी या पश्चिमी दिशा में रखना चाहिए, साथ में स्टोर भी दक्षिण-पश्चिम में ही बनाना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

3. प्रवेश द्वार उत्तर-पूर्व में बनाया जाए न कि पूर्व-आग्नेय में। सीढ़ियाँ उत्तर-पूर्व के पूर्व में बनानी चाहिए। मुख्य द्वारा में पूर्व दिशा में शीशे का प्रयोग करने से प्राकृतिक शक्तियों का लाभ उठाया जा सकता है।

4. पूर्वाभिमुखी दुकान हो तथा दो शटर हो तो ऐसी स्थिति में दोनों शटर खुले होने चाहिए या ईशान-पूर्व का शटर आग्नेय-पूर्व का शटर खुला नहीं होना चाहिए।

5. फर्श का ढलान उत्तर-पूर्व की ओर रखना चाहिए।

उत्तराभिमुखी दुकान

1. दुकान के फर्श का ढलान उत्तर-पूर्व की ओर होना चाहिए।

2. मालिक/मैनेजर को पश्चिम दिशा में पूर्वाभिमुख होकर बैठना चाहिए। कैश बॉक्स अपनी दायीं ओर रखना चाहिए।

3. दुकान का प्रवेश द्वार उत्तर-पूर्व में कहीं भी बनाया जा सकता है। उत्तरी भाग को शीशे का बनाना चाहिए। जिससे उत्तर दिशा की ओर से आने वाली प्राकृतिक ऊर्जा का अधिक से अधिक लाभ मिले।

4. शीघ्र बिक्री वाले वस्तुओं को उत्तर-पश्चिम के उत्तर में सजाकर रखना चाहिए।

5. दो शटर वाली उत्तराभिमुखी दुकान में केवल उत्तरी वायव्य के द्वार को नहीं खोलना चाहिए। उत्तरी-ईशान के शटर को खोले अथवा दोनों शटर को खोलना चाहिए।

पश्चिमाभिमुख दुकान

1. पश्चिम मुख वाले दुकान के फर्श का ढलान उत्तर या पूर्व या उत्तर-पूर्व की ओर होना चाहिए।

2. मालिक को दुकान के दक्षिण-पश्चिम में या दक्षिण में इस प्रकार बैठना चाहिए कि मालिक का मुख उत्तर की ओर हो।

3. कैश बॉक्स को मालिक के बाई ओर रखना चाहिए।

4. प्रवेश-द्वार उत्तर-पश्चिम के पश्चिम में बनाए तथा सीढ़ियाँ उत्तर-पश्चिम में हों। प्रवेश द्वार दुकान के मध्य पश्चिम में भी हो सकता है। मध्य पश्चिम में दुकान की ओर जाने वाली सीढ़ियाँ अर्धगोलाकार आकार में भी बनायी जा सकती है।

5. पश्चिमाभिमुखी दुकान में दो शटर वाला दरवाजा कभी भी पश्चिमी नैऋत्य दिशा के शटर को खुला नहीं रखना चाहिए। पश्चिमी वायव्य दिशा के शटर को खुला रखे या दोनों शटर को खुला रखना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

दक्षिण-मुख वाली दुकान

1. मालिक/मैनेजर को दक्षिण-पश्चिमी दिशा में इस प्रकार बैठना चाहिए कि बैठने के बाद मुख उत्तर या पूर्व दिशा में हो। तथा कैश बॉक्स उसके दाईं ओर होना चाहिए।
2. दुकान का प्रवेश द्वार दक्षिण-पूर्व के दक्षिण में हो सकता है तथा सीढ़ियाँ भी दक्षिणी आग्नेय में हो सकती हैं।
3. दो शटर वाली दक्षिणामुखी दुकान के लिए केवल दक्षिणी नैऋत्य शटर को खुला न रखें। दोनों ही शटर या तो खुला न रखें या फिर केवल दक्षिणी आग्नेय का शटर खुला रखें।
4. दुकान के फर्श का ढलान दक्षिण से उत्तर और पश्चिम से पूर्व की ओर होना चाहिए।
5. दुकान की भारी वस्तुऐं हमेशा ही नैऋत्य दिशा में रखनी चाहिए।

मालिक/मैनेजर के बैठने का स्थान

दुकानों अथवा शोरूम में मालिक के बैठने का केबिन दक्षिण अथवा दक्षिण-पश्चिम दिशा के मध्य नैऋत्य में ही होना चाहिए। मालिक को हमेशा उत्तराभिमुख या पूर्वाभिमुख होकर ही बैठना चाहिए कभी भी दक्षिण या पश्चिम की ओर मुख करके नहीं बैठना चाहिए। यदि स्वामी का मुख पूर्व की ओर है तो सेफ/कैश बॉक्स उसके दाईं ओर होना चाहिए यादि उत्तराभिमुख होकर बैठता है तो कैश बॉक्स बांई ओर होना चाहिए अर्थात् किसी भी मामले में सेफ या कैश काउन्टर उत्तर या पूर्व की ओर ही खुलने चाहिए। मालिक/मैनेजर जहाँ बैठा है ठीक उसके उपर बीम नहीं होना चाहिए । यदि बीम है तो फॉल्स सीलिंग लगा लेनी चाहिए।

कैश काउन्टर/कैश बॉक्स/सेफ

व्यावसायिक वास्तु में कैश काउन्टर का अत्यधिक महत्व है। कैश काउन्टर हमें कहाँ रखना चाहिए जिससे हमें लाभ हो। इसका सभी भरपूर ध्यान रखते हैं किन्तु वास्तु सम्मत ज्ञानाभाव के कारण पूर्ण लाभ नहीं उठा पाते हैं। मालिक या मुख्य-प्रबंधक यदि पूर्वाभिमुख होकर बैठता है तो कैश बॉक्स/काउन्टर उसके दाईं ओर होना चाहिए ताकि जब कैश बॉक्स खोला जाए तो उत्तर दिशा की ओर खुले ताकि उत्तर दिशा में धन का स्वामी कुबेर का निवास स्थान है। यदि मालिक या प्रबंधक या कैशियर उत्तर की ओर मुख करके बैठता है तो कैश बॉक्स उसके बांयी ओर होना चाहिए। कैश बॉक्स उत्तर दिशा की ओर या पूर्व दिशा की ओर भी समृद्धि सूचक है। सेफ उत्तरी क्षेत्र के दक्षिण में रखनी चाहिए जिससे यह उत्तर की ओर खुले। छोटी दुकान में तिजोरी दक्षिण दीवार की ओर रखी जा सकती है जिससे यह उत्तर दिशा की ओर खुले। सेफ में अभिमंत्रित श्रीयन्त्र, कुबेर यन्त्र या महालक्ष्मी यंत्र रखना चाहिए। इन यंत्रों की नियमित पूजा करने से धन-सम्पदा और मान-सम्मान यश समृद्धि में वृद्धि होती है।

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

दुकान में स्टॉक का स्थान

दुकान/शोरूम में स्टॉक की स्थिति अति महत्वपूर्ण विषय है। स्टॉक को सही दिशा में नहीं रखने से व्यवसाय में आशातीत सफलता नहीं मिलती है। शास्त्रानुसार स्टॉक दक्षिण-पश्चिमी दीवारों के सहारे रखा जाना चाहिए। दक्षिण-पश्चिम स्थान नैऋत्य कोण के नाम से जाना चाहता है। नैऋत्य कोण में भारी वस्तुओं को रखने का शास्त्रीय विधान है। अतएव इस कोण में स्टॉक रखने के लिए सबसे उपयुक्त माना गया है। प्रदर्शन रैक और बिक्री काउन्टर दक्षिण और पश्चिमी दीवारों के साथ बनाए जाने चाहिए। तथा बिक्री कर्मचारियों को इस प्रकार बैठना चाहिए कि उनका मुख उत्तर या पूर्व दिशा की ओर हो ऐसी स्थिति होने पर बिक्री में किसी भी प्रकार का विरोध अथवा रूकावट नहीं आती है।

मुख्य स्विच बोर्ड/रसोई घर का स्थान

दुकान के आकार के आधार पर रसोई घर या खाना गर्म करने के लिए हीटर या माइक्रोवेव कॉफी/चाय डिस्पेंसर आदि दुकान या शोरूम के आग्नेय कोण अर्थात् दक्षिण-पूर्व दिशा में रखना चाहिए। यदि इस स्थान पर रखना संभव न हो तो वैकल्पिक व्यवस्था करनी चाहिए। मुख्य स्विच बोर्ड, बिजली का मीटर, इन्वर्टर या जनरेटर भी आग्नेय कोण में रखना चाहिए। यह स्थान अग्नि से सम्बन्धित सभी कार्यों के लिए पवित्र माना जाता है।

प्रसाधन-कक्ष

दुकान या शोरूम में प्रसाधन की व्यवस्था वायण्य कोण अर्थात् उत्तर-पश्चिम क्षेत्र में बनानी चाहिए। शौच स्थान पर सीट इस प्रकार लगानी चाहिए ताकि मुख दक्षिण, उत्तर या पश्चिम दिशा में हो।·विकल्प के तौर पर आग्नेय कोण (दक्षिणी-पूर्वी क्षेत्र) में भी बनाया जा सकता हैं। दुकान के मध्य में, उत्तर-पूर्व में या दक्षिण-पश्चिम में भूलकर भी शौचालय नहीं बनवाना चाहिए।

दुकान/शोरूम के लिए वास्तु सम्मत महत्वपूर्ण सुझाव

जीवन में उन्नति तथा व्यापार में प्रगति के लिए दुकान एवं शोरूम के बारे में वास्तुशास्त्र के मूल संकल्पना तथा नियमों का पालन अवश्य करना चाहिए। व्यावसायिक वास्तु में दुकान तथा शोरूम के लिए निर्धारित नियम जो भारतीय मनीषियों तथा विद्वानों ने दिये हैं, उसे ध्यान में रखने से अवश्य ही व्यापार में उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। नियमों का विवेचन नीचे किया जा रहा है।

1. भूमि एवं उसकी गुणवत्ता का विचार सामान्य नियमानुसार करना चाहिए।
2. कार्य की प्रकृति के अनुसार भूमि के रंग, उसकी गुणवत्ता का निर्धारण करना चाहिए यथा-वैश्या भूमि व्यापार के लिए अच्छी होती है।
3. मार्गवेधः- दुकान एवं शोरूम पर मार्गवेध का दोष नहीं होता है किन्तु दुकान के ठीक सामने पेड़ या बिजली इत्यादि का का खम्भा हो तो वेध होता है।

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

4. दुकान तथा शोरूम के लिए वर्गाकार, आयताकार एवं सिंहमुखी आकार की भूमि शुभ होती है।

5. दुकान के आसपास धर्मस्थल, मन्दिर, मस्जिद, स्कूल या सार्वजनिक स्थान होने से कोई दोष नहीं होता।

6. दुकान का प्रवेश-द्वार पूर्व आदि दिशाओं में होने पर फल इस प्रकार होता है।

दिशा	फल
पूर्व मुखी	धन लाभ
पश्चिममुखी	अल्पलाभ एवं बाधाएं
उत्तरमुखी	सम्पन्नता
दक्षिणमुखी	हानि एवं परेशानी, प्रयत्न से शुभ

7. दुकान के फर्श का ढलान प्रवेश-द्वार की ओर नहीं होना चाहिए यदि है तो हानिदायक होता है।

8. दुकान के मुख्य द्वार पर देहलीज रखना शुभ नहीं होता।

9. दुकान के मुख्य द्वार पर स्वस्तिक का चिन्ह तथा दोनों ओर शुभ-लाभ एवं ऋद्धि-सिद्धि लिखना शुभ होता है।

10. दुकान के ईशान में भारी सामान या फर्नीचर नहीं रखना चाहिए। यह भाग खाली रखना चाहिए या यहाँ पर मन्दिर बनाना अथवा पीने का पानी रखना शुभ होता है।

11. दुकान पूर्वमुखी हो तो मालिक को दक्षिण या आग्नेय में उत्तराभिमुख होकर बैठना चाहिए।

12. दुकान दक्षिणमुखी हो तो मालिक को नैऋत्य या पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठना चाहिए।

13. पश्चिममुखी दुकान/शोरूम हो तो मालिक को नैऋत्य या दक्षिण में उत्तराधिमुखी बैठना चाहिए।

14. यदि शोरूम उत्तरमुखी हो तो मालिक को पश्चिम में पूर्वाभिमुखी बैठना चाहिए।

15. दुकान के मालिक को किसी भी हालात में दुकान के वायव्य या ईशान भाग में नहीं बैठना चाहिए ओर दक्षिणाभिमुखी भी नहीं बैठना चाहिए।

16. दुकान पूर्वमुखी हो तो उतरने चढ़ने की सीढ़ियाँ ईशान में, यदि वह दक्षिणमुखी हो तो सीढ़ियाँ आग्नेय में, यदि पश्चिममुखी हो तो नैऋत्य या मध्य में और यदि दुकान उत्तरमुखी हो तो सीढ़ियाँ ईशान में बनवानी चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

17. वायव्य में सीढ़ियाँ नहीं बनवानी चाहिए। सीढ़ियाँ बनवाने से ग्राहक बगैर सामान लिए वापस चला जाता है।

18. दुकान में मालिक या मैनेजर के बैठने की गद्दी या केबिन नैऋत्य भाग में बनानी चाहिए ओर उसमें मालिक या मैनेजर को पूर्वाभिमुखी या उत्तराभिमुखी होकर बैठना चाहिए।

19. पूर्वमुखी दुकान के दो शटर या दो फड़ हों तो ईशान शटर/फड़ को खुला और आग्नेय के शटर/द्वार को बन्द रखना चाहिए।

20. दक्षिणमुखी दुकान के दो फड़ या शटर हो तो आग्नेय का शटर/फड़ खुला और नैऋत्य को बन्द रखना चाहिए अथवा दोनों को खुला रखना चाहिए। किसी भी हालात में नैऋत्य के शटर/फड़ को खुला और आग्नेय वाले को बन्द नहीं रखना चाहिए।

21. पश्चिममुखी दुकान के दो शटर या फड़ हों तो वायव्य वाले शटर/फड़ को खुला और नैऋत्य को बन्द रखना चाहिए अथवा दोनों को खुले रखना चाहिए किन्तु वायव्य को बन्द नहीं रखना चाहिए।

22. यदि उत्तरमुखी दुकान के दो फड़ या शटर हो तो ईशान का शटर/फड़ खोलकर वायव्य को बन्द रखना चाहिए।

23. दुकान के फर्श का ढलान पश्चिम से पूर्व या दक्षिण से उत्तर की ओर रखना चाहिए।

24. दुकान में रैक, सैल्फ, शोकेस एवं काउन्टर आदि जिनमें बिक्री का सामान रखना या प्रदर्शित करता हो वे सब उसके पश्चिम एवं दक्षिण भाग में बनाने चाहिए।

25. बिक्री का सभी सामान दक्षिण पश्चिम एवं वायव्य में रखना शास्त्र सम्मत है। ईशान आग्नेय एवं मध्य का भाग खाली रखना श्रेयस्कर है।

26. दुकान के आग्नेय भाग में बिजली का मीटर, मेन स्वीच बोर्ड, जनरेटर एव इन्वर्टर रखना या आवश्यकतानुसार पेन्ट्री बनाना चाहिए।

27. सेल्समैन –दुकान की बिक्री को काउन्टर पर रखे। सेल्समैन या सेल्सगर्ल का मुँह पूर्व या उत्तर की ओर तथा ग्राहकों का मुँह पश्चिम या दक्षिण की ओर होना उचित होता है।

28. मालिक या मैनेजर तथा कैश काउन्टर के स्थान के उपर कोई बीम नहीं होनी चाहिए।

29. दुकान में भारी वस्तुएँ या अनुपयोगी वस्तुएँ नैऋत्य में रखनी चाहिए। ऐसी चीजें वायव्य या ईशान में कभी भी नहीं रखनी चाहिए।

30. दुकान का डिजाइन इस प्रकार बनाना चाहिए कि इनका द्वार पूर्व उत्तर या पश्चिम में हो।

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

प्रायोगिक सर्वेक्षण तथा परीक्षण की संक्षिप्तिका 1

क्र. सर्वे की गयी दुकान	1		2		3		4		5	
सं. निर्माण	दिशा	फल	दिशा	फल	दिशा	फल	दिशा	फल	दिशा	फल
1. मुख्य द्वार	पूर्व	शुभ	पू.अग्नि	अशुभ	दक्षिण	अशुभ	पश्चिम	अशुभ	पूर्व	शुभ
2. मुख्य द्वार वेध	नहीं	शुभ	उत्तर	अशुभ	उत्तर	अशुभ	नहीं	शुभ	नहीं	शुभ
3. मालिक/मैनजर के बैठने का स्थान	व.नै.	शुभ	द.अग्नि	अशुभ	ईशान	अशुभ	अग्नि दक्षिण	अशुभ	पवायत्य	अशुभ
4. मालिक/मैनजर का मुख	उत्तर	शुभ	ई.पू	शुभ	पश्चिम	अशुभ	पश्चिम	अशुभ	पूर्व	शुभ
5. कैश काउण्टर स्थान	पूर्व	शुभ	पू.अग्नि	अशुभ	अग्नि	अशुभ	पर्व	शुभ	उ.ई	शुभ
6. तिजोरी का मुख	उत्तर	शुभ	पश्चिम	अशुभ	पश्चिम	अशुभ	उत्तर	शुभ	उ.ई	शुभ
7. सेल्समेन का मुख	उ.ई.	शुभ	पू.अग्नि	शुभ-शुभ	पूर्व/दक्षिन	शुभ/अशुभ	दक्षिण	अशुभ	अग्नि	अशुभ
8. पूजा घर	पर्व	शुभ	उत्तर	शुभ	ई.पू.	शुभ	दक्षिण	अशुभ	ईशान	शुभ
9. पानी का स्थान	ई.पू.	शुभ	उत्तर	शुभ	पू.अग्नि	शुभ	दक्षिण	अशुभ	ईशान	शुभ
10. स्टाफ का स्थान	दक्षिण	शुभ	दक्षिण	शुभ	पश्चिम	अशुभ	उत्तर	अशुभ	पवायत्य	अशुभ
11. मेन स्वीय बोर्ड	अग्नि	शुभ	अग्निद.	शुभ	अग्नि	शुभ	नैऋत्य पश्चिम	अशुभ	अग्नि	शुभ
12. शुभ		11		05		03		03		08
13. अशुभ		00		05		07		08		03
14. शुभाशुभ		00		01		01		00		00
15. निष्कर्ष	यह एक Remonds के शोरूम का डाटा है आश्चर्यजक परिणाम सामने आया है सभी विषय वस्तु अपने उचित दिशा में स्थित है मैनेजर कर्मचारी सभी खुश 'है' पूछने पर पता चला कि वास्तु विद् से सम्पर्क के उपरान्त यह शोरूम बनाया गया है।		यह एक समान्य दुकान है, अत्यधिक लाभ है और न हानि गुजारा चल रहा है। यहाँ शुभ और अशुभ विंदु एक समाना हैं। अत: सामान्य है।		मालिक और मैनेजर सभी पेशान, अर्थिक तंगी, कर्मचारियों से परेशान। उल्लझनें बरा कर बनी रहती है। काफी मेहनत के बाद भी लाभ नहीं मिलता है।		रोहणी में Electric की दुकान है यह दुकान बंद होनेकि स्थिति में है शुभ बिंदु केवल 3 है। तथा अशुभ बिंदु 8 है। मैनेजर इस शास्त्र में विश्वास नहीं करता है। जो कुछ होना है हो कर ही रहेगा।		यह Nokia का शोरूम है यह शोरूम बहुत जल्दी सफलता प्राप्त किया है। ग्राहक और सैल्स मेंनेजर में कभी-कभी नोक झोक हो जाती है। किन्तु इसे सफलता पूर्वक हल किया जाता है।	

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

प्रायोगिक सर्वेक्षण तथा परीक्षण की संक्षिप्तिका 2

क्र. सर्वे की गयी दुकान	6		7		8		9	
सं. निर्माण	दिशा	फल	दिशा	फल	दिशा	फल	दिशा	फल
1. मुख्य द्वार	उत्तर	शुभ	पश्चिम	शुभ	दक्षिण	अशुभ	उत्तर	शुभ
2. मुख्य द्वार वेध	हां	अशुभ	नहीं	शुभ	नहीं	शुभ	हां	अशुभ
3. मालिक/मैनजर के	नै.प.	शुभ	द.नै	शुभ	इ.पू.	अशुभ	द.नै	शुभ
4. मालिक/मैनजर का मुख	पूर्व	शुभ	उत्तर	शुभ	अग्नि	अशुभ	उत्तर	शुभ
5. कैश काउण्टर स्थान			दक्षिण	शुभ	ई.पू.	शुभ	दक्षिण	शुभ
6. तिजोरी का मुख			उत्तर	शुभ	उ.ई	शुभ	उत्तर	शुभ
7. सेल्समेन का मुख			उ./द./प.	शुभ	दक्षिण	अशुभ	पूर्व	शुभ
8. पूजा घर	ई.पु.	शुभ	पूर्व	शुभ	पूर्व	शुभ	इ.पू.	शुभ
9. पानी का स्थान	उत्तर	शुभ	पर्व	शुभ	उत्तर	शुभ	पूर्व	शुभ
10. स्टाफ का स्थान			नै.	शुभ	वायव्य उत्तर	अशुभ	नैऋत्य	शुभ
11. मेन स्वीय बोर्ड	अ.दक्षिण	शुभ	अग्नि	शुभ	द.नै	अशुभ	अग्नि	शुभ
12. शुभ		06		08		05		03
13. अशुभ		01		00		00		00
14. शुभाशुभ		04		00		06		01
15. निष्कर्ष	यह एक Property Delar की दुकान का डाटा है इस का अच्छा कारोबार है और इस समय खुश है कम समय में इसे अधिक लाभ हुआ है मालिक प्रसन्न रहता है।		यह Koutons शोरूम का डाटा है सभी दिशाओं में वास्तु सम्मत वस्तुएँ रखी है, इनका करोबार अच्छा चल रहा है। बिक्री में कोई परेशानी नहीं है यालिक और कर्मचारी के भी सम्बन्ध अच्छे है सभी खुश नज़र आ रहे है। शोरूम खोलने से पहले इन्होने वास्तु सम्मत विचार किया वास्तु-विद से परामर्श लेकर ही दिशाओं में वस्तुओं का निधार्रण किया		यह एक दवाईयों की दुकान है, किन्तु बिक्री अच्छी नहीं है मालिक परेशान है यह दुकान बंद कर दूसरी खोलना चाहता है किन्तु पाँच शुभ बिंदु दुकान की शोभा को बनाए रखे है। दुकान सामान्य अवस्था में चल रही है।		यह एक Big Apple का डाटा है। शुभ बिंदु अधिक है बहुत कम दिनों में लाभ युक्त काम किया। लोगों का सहयोग अच्छा मिला कर्मचारी खुश हैं। लाभ उत्तरोत्तर वृद्धि कर ओर है।	

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

आज आजीविका का मुख्य स्रोत कृषि न होकर वाणिज्यिक एवं औद्योगिक प्रतिष्ठान हैं, अतएव वास्तु के सिद्धान्तों का इसके लिए प्रयोग अत्यावश्यक है। वास्तुशास्त्र के आधारभूत सिद्धान्तों का दुकान अथवा शोरूम में किस प्रकार का उपयोग करना चाहिए इस प्रोजेक्ट में इसका सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन करने का प्रयास किया गया है, इसमें कुल 9 दुकान एवं शोरुम के मुख्य बिन्दुओं पर चर्चा की गई है; तथा प्रायोगिक सर्वेक्षण के माध्यम से परीक्षण करने का प्रयास किया गया है।

वास्तुशास्त्र के मूल सिद्धान्तों के अनुरूप दिशाएँ और विभिन्न दिशाओं की उपयुक्तता तथा व्यवसायों के साथ उनका सम्बन्ध शुभ परिणाम को दर्शाता है। प्रायोगिक परीक्षण के दौरान जहाँ-जहाँ वास्तु सम्मत दुकान/शोरूम देखा गया, वहाँ का परिणाम भी शुभ मिला है। मालिक, मैनेजर तथा कर्मचारी एवं आगन्तुक सभी से मधुर सम्बन्ध पाए गए। किन्तु जो दुकान/शोरूम वास्तु विरुद्ध थे उसमें कार्य करने वाले तथा उससे सम्बद्ध ग्राहक भी संतुष्ट नहीं थे। इस कारण यह स्पष्ट है कि कार्यस्थल वास्तु के प्रतिकूल होने पर कई लोग प्रभावित होते हैं यथा स्वामी, कर्मचारी, ग्राहक, आगंतुक और शेयरधारक अतः दक्ष एवं तनाव मुक्त कार्यस्थल बनाना है तो वास्तुसम्मत कार्यस्थल का निर्माण करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

दक्षिण मुखी भवन

(वास्तु-शास्त्रीय दृष्टि से एक सर्वेक्षण)

–रवि शंकर

वास्तु शब्द की व्युत्पत्ति "वस्" वासे धातु से हुई है। "वस्" का अर्थ है किसी एक स्थान पर वास करना। "वह भवन दुर्ग, मठ, मंदिर, महल, प्रसाद, हवेली तथा नगर आदि ऐसी समस्त रचनायें जिसमें मानव वास करता है, वास्तु कहलाता है।" दूसरे शब्दों में मनुष्य के निवास योग्य भूमि एवं भवन को वास्तु कहते हैं, और जिस शास्त्र में भूमि एवं भवन में आवास करने वाले लोगों को अधिकतम सुविधा और सुरक्षा प्राप्ति के नियमों, सिद्धान्तों तथा प्रविधियों का प्रतिपादन किया जाता है, उस शास्त्र को वास्तुशास्त्र कहते हैं।[1]

आवास प्राणीमात्र की आधारभूत आवश्यकता है। प्राणी चाहे मनुष्य हो या अन्य जीव हो, रहने के लिए सभी को आवास चाहिए। मनुष्य मकान बनाकर रहते हैं, तो जलचर समुद्र, नदी या तालाब के किनारों पर, नभचर घोंसलों, पेड़ों के कोटरों या पुराने खण्डहरों में रहते हैं। वनचर गुफाओं, कन्दराओं या घने जंगलों में और पालतू पशु मनुष्यों के आस-पास अपने रहने की व्यवस्था बना लेते हैं। वस्तुतः जीवन जीने के लिए आवास चाहिए। खुले आकाश एवं खुली धरती पर रहने वाले पशु पक्षी भी अपने बच्चों के जन्म से पहले उनकी सुविधा एवं सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए उनके लिए सुरक्षित स्थान पर आवास की व्यवस्था कर लेते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि व्यवस्थित जीवन के लिए आवास हमारी पहली आवश्यकता है।[2]

जीवन क्या है? इस प्रश्न का शास्त्रों में विचारकों एवं चिन्तकों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से उत्तर दिया है। यदि इस प्रश्न का व्यापक रूप से विचार कर सही और स्टीक उत्तर दिया जाय तो कह सकते हैं कि जीवन समस्याओं एवं संकटों का ही मिला जुला रूप है। जीवन में ऐसा कोई स्थान या क्षण नहीं है जब प्राणी समस्या या संकट से घिरा न रहता हो। जन्म से लेकर मृत्युकाल तक प्राणी मात्र के जीवन में समस्याओं या संकटों का अनवरत चक्र लगातार चलता रहता है। मनुष्येतर जीवन जिनके पास ज्ञान और सुविधा या सुरक्षा के साधनों का लगभग अभाव है वे इन समस्याओं से जूझकर उनका समाधान निकाल लेते हैं।[3]

---

1. भारतीय वास्तुशास्त्र पृष्ठ – 2
2. वहीं पृष्ठ 5-6
3. वहीं पृष्ठ 6

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

बीमारियाँ पशु-पक्षी आदि सभी जीवों को होती हैं। दुर्घटना में सभी प्राणी घायल होते हैं। किन्तु मेडिकल साइन्स की जानकारी न होने पर भी पशु-पक्षियों की बीमारियाँ ठीक हो जाती हैं। सभी पशु-पक्षियों को आहार चाहिए। वे अपनी उदरपूर्ति के लिए नौकरी या व्यापार नहीं करते किन्तु अपना तथा अपने आश्रित बच्चों का भरण-पोषण कर लेते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जीव जन्तुओं की अपेक्षा मानव, जिसको दीर्घकालीन अनुभवों की परम्परा से विकसित ज्ञान एवं विज्ञान प्राप्त है जिसने अपनी सुविधा एवं सुरक्षा के लिए अनेक प्रणालियाँ विकसित की हैं, वह इतना सब कुछ होते हुए भी अपने जीवन की समस्याओं और संकटों से न तो जूझता है और न नियंत्रण ही कर पाता है।[1]

ज्ञान और संसाधनों के अभाव में पशु-पक्षियों का निश्चिन्त एवं प्रसन्न रहना तथा विकसित ज्ञान एवं विज्ञान की जानकारी और उन्नत संसाधनों के होने पर भी मनुष्य का चिन्तित और दुःखी रहना एक तथ्य है, जिस ओर हमारे प्राचीन ऋषियों और मनीषी चिन्तकों का ध्यान आकृष्ट हुआ तथा उन्होंने गम्भीरता पूर्वक विचार कर जो निष्कर्ष बतलाये, उनका सार इस प्रकार है–"जीवन की गाड़ी को चलाने के लिए कम से कम दो पहियों की जरूरत होती है। जिसमें पहला है शरीर एवं दूसरा है मन।" जीवन को संतोषजनक विकास के मार्ग पर ले जाने के लिए शरीर एवं मन दोनों का सशक्त एवं संतुलित होना जरूरी है क्योंकि शरीर या मन में से एक के भी बीमार एवं असंतुलित होने से जीवन की गाड़ी चरमरा जाती है।[2]

इस ब्रह्माण्ड में सबसे शक्तिशाली प्रकृति (Nature) है क्योंकि यही सृष्टि का विकास और विनाश करती है। प्रकृति की शक्ति उसके वातावरण के विद्यमान तीन प्रकार के बलों में परिलक्षित होती है। ये बल हैं– (1) गुरुत्व बल (Gravitational Force) (2) चुम्बकीय बल (Magnetic Force) (3) सौर ऊर्जा (Solar Energy)। इन तीनों प्रकार के बलों का उपयोग कर शरीर, मन एवं जीवन को सक्षम और संतुलित बनाने के लिए आवास के जिन नियमों, सिद्धांतों एवं प्रविधियों का प्रतिपादन किया गया है उनका संकलित स्वरूप ही वास्तुशास्त्र हैं।[3]

दक्षिण मुखी भवन-

जिस भवन में केवल दक्षिण में ही द्वार हो उसे दक्षिण मुखी भवन कहते हैं। दक्षिण मुखी भवन में निम्नलिखित दुष्प्रभाव होते हैं–

1. दक्षिण का स्वामी "यम" होता है। अतः जब द्वार दक्षिण में होगा तो खाली स्थान भी कम या ज्यादा दक्षिण में होगा। फलस्वरूप दक्षिण मुखी भवन में रहने वाले लोगों को भयंकर बीमारियाँ एवं असमय कष्ट की सम्भावना अधिक होती है।

2. उत्तर से दक्षिण की तरफ प्रवाहित होने वाली सकारात्मक चुम्बकीय शक्ति (Mag-

1. भारतीय वस्तुशास्त्र, पृष्ठ - 6
2. वहीं, पृष्ठ - 7
3. वहीं, पृष्ठ - 7

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

netic Force) का दक्षिण में ह्रास हो जाता है। फलस्वरूप दक्षिण मुखी भवन में रहने वाले लोगों को आलस्य घेरे रहता है और वे ज्यादा ऊर्जावान नहीं हो पाते। जिससे उनके कार्यक्षेत्र में बाधा उत्पन्न होती है तथा वे अवनति व बीमारी को प्राप्त होते हैं।

दक्षिण मुखी भवन के कुछ शास्त्रीय तथ्य–

1. यदि दक्षिण मुखी भवन में दक्षिणी हिस्से में खाली छोड़ी गई जगह अन्य भागों से निचाई में हो, भवन के दक्षिणी हिस्सों के कमरों का फर्श और बरामदा अन्य कमरों की अपेक्षा निचाई में रखा गया हो तो उस भवन में निवास करने वाली महिलाओं के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तथा अर्थ-क्षय की संभावना अधिक होती है।

2. यदि दक्षिण मुखी भवन के दक्षिण में गड्ढ़ा, बोरिंग तथा कुंआ हो तो गृहस्वामी को आर्थिक हानि एवं आकस्मिक दुर्घटनाओं का शिकार होना पड़ता है।

3. यदि दक्षिण मुखी भवन का मुख्य द्वार अग्नि कोण की ओर हो तो भवन-वासियों को सन्तान-हीनता, आगजनी एवं चोरी जैसे फल की संभावनाएँ रहती हैं।

4. यदि दक्षिण मुखी भवन का मुख्य द्वार नैर्ऋत्य कोण की ओर हो तो गृहस्वामी को दीर्घकालीन रोग जैसे– शूगर, कैंसर इत्यादि, आकस्मिक दुर्घटना तथा गुप्त शत्रुओं से पीड़ित होना पड़ता है।

अतः संक्षेप में हम कह सकते हैं कि दक्षिण मुखी भवन का मुख्य द्वार वास्तुपद के अनुसार वितथ एवं गृहक्षत पद को छोड़कर मानव के निवास के लिए उपर्युक्त नहीं है। यदि दक्षिण मुखी घर हो तो द्वार वास्तुपद का द्वारा निर्दृष्ट पद में ही बनाना चहिए। दक्षिणमुखी भवन व्यापार एवं व्यवसाय की दृष्टि से शुभ होता है। 20 दक्षिण मुखी भवनों का एक सर्वेक्षण किया गया जिनका विवरण यहाँ दिया गया है।

सर्वेक्षण–1

1. मकान मालिक का नाम : **श्री राजीव जग्गी।**

2. पता : **बी-100, ओल्ड पोस्ट ऑफिस स्ट्रीट, शकरपुर, दिल्ली-110092।**

3. कब से रह रहे हैं? : **1982 से।**

4. मकान कब खरीदा? : **1981 में।**

5. मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति? : **प्रॉपर्टी डीलर से।**

6. जब मकान बनवाया था, उस समय क्या आपका घर दक्षिण मुखी ही था? : **हाँ।**

7. यदि हाँ, तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये? : **हाँ, धीरे-धीरे मकान बनवाया, पहले भूतल बाद में प्रथम एवं द्वितीय तल का निर्माण हुआ।**

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

8. क्या आपको दक्षिण मुखी भवन वास्तुदोष का ज्ञान था? यदि नहीं, तो कब हुआ? : **नहीं, बाद में हुआ। तो हमने उत्तर में भी एक छोटा दरवाजा निकाला, तो बहुत राहत मिली।**

9. यहाँ आकर आपको कैसा लगा? : **पहले जब तक हमने उत्तर में दरवाजा नहीं बनाया था तब तक परेशानी रही बाद में हमने दक्षिण में दुकान भी बनवायी तब से सब ठीक होने लगा।**

10. क्या खोया? क्या पाया? : **माँ को खोया, वह गवर्नमेंट टीचर थी, उनकी असमय मृत्यु एवं पिता जी के ऊपर झूठा गबन का आरोप लगा, वे पोस्ट मास्टर थे। उनको नौकरी से सस्पेंड कर दिया गया। बाद में मकान में सुधार के बाद मैंने CA में रैंक पाया और मारूति उद्योग में अच्छी पोस्ट पर नौकरी की।**

11. आर्थिक, सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही? : **पहले आर्थिक स्थिति ठीक थी मगर अब हम पति-पत्नी CA हैं और बहुत अच्छा पैसा कमाते हैं। सामाजिक स्थिति बहुत बढ़िया है मगर काम का बोझ बहुत अधिक होने से मानसिक तनाव बना रहता है।**

निष्कर्ष : दक्षिण मुखी भवन वास्तु शास्त्र के अनुसार ठीक नहीं होता। यदि उसमें संशोधन कर दिया जाय तो बहुत हद तक दोष कम हो जाता है।

सर्वेक्षण–2

1. मकान मालिक का नाम : **श्रीमती कमला देवी।**

2. पता : **597, गुरु राम दास नगर, लक्ष्मी नगर, दिल्ली-110092।**

3. कब से रह रहे हैं? : **1989 से।**

4. मकान कब खरीदा? : **1-05-1989 में।**

5. मकान किससे खरीदा? एवं उनकी पूर्व स्थिति : **श्री मुंशी राम, ठीक-ठाक।**

6. जब मकान बनवाया था, उस समय क्या आपका घर दक्षिण मुखी ही था? : **हाँ, बना-बनाया लिया था, बाद में धीरे-धीरे ऊपर बनवाया।**

7. यदि हाँ, तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये : **हाँ, नीचे का कुछ हिस्सा बेचकर कर्जा चुकाने के बाद बनवाया।**

8. क्या आपको दक्षिण मुखी भवन वास्तुदोष का ज्ञान था? यदि नहीं, तो कब हुआ? : **नहीं, अभी थोड़े समय पहले ही हुआ।**

9. यहाँ आकर आपको कैसा लगा? : **बहुत बढ़िया कभी नहीं लगा। अब माली हालत और भी खराब हो रही है।**

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

10. क्या खोया? क्या पाया? : **पति की अकाल मृत्यु हुई। नीचे का हिस्सा बेचना पड़ा। दुकान भी कहीं और थी जो मजबूरी में बेचनी पड़ी। इस मकान में आकर मेरा स्वास्थ्य भी खराब रहने लगा।**

11. आर्थिक, सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही? : **आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। और मानसिक स्थिति भी खराब रहती है। सामाजिक स्थिति ठीक-ठाक है।**

निष्कर्ष : दक्षिण मुखी भवन वास्तु शास्त्र के अनुसार रहने के लिए उपर्युक्त नहीं रहता।

सर्वेक्षण–3

1. मकान मालिक का नाम : **निर्मला कुंअर।**

2. पता : **मकान नं. 39, फाजल गंज, सासाराम (बिहार)।**

3. कब से रह रहे हैं : **शादी के बाद से।**

4. मकान कब खरीदा : **शादी से पहले।**

5. मकान किससे खरीदा? एवं उनकी पूर्व स्थिति : **सर्विस मैन से खरीदा था। उसकी स्थिति भी ठीक-ठाक नहीं थी। बेटी की शादी करने के लिए घर बेचा था।**

6. जब मकान बनवाया था, उस समय क्या आपका घर दक्षिण मुखी ही था? : **हाँ**

7. यदि हाँ, तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये? : **बहुत व्यवधान आये। धन की कमी के कारण थोड़ा-थोड़ा करके बनवाया।**

8. क्या आपको दक्षिण मुखी भवन वास्तुदोष का ज्ञान था? यदि नहीं, तो कब हुआ? : **नहीं, अब ज्योतिषी के कहने पर हुआ।**

9. यहाँ आकर आपको कैसा लगा? : **ठीक-ठाक।**

10. क्या खोया? क्या पाया? : **दो लड़कियों के बाद एक लड़ा हुआ। लड़का अभी छोटा ही था कि मेरे पति की मृत्यु हो गई। पति के मरने के बाद दूध बेचकर गुजारा करना पड़ा। सभी घर वालों ने साथ छोड़ दिया। अब लड़का बिजनेस कर रहा है। लड़कियों की शादी भी अच्छे घर में कर दी है। अब पहले से अच्छा हो रहा है।**

11. आर्थिक, सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही? : **ठीक-ठाक।**

निष्कर्ष : बिना वास्तुशास्त्र का विचार किये दक्षिण मुखी भवन रहने के लिए उपर्युक्त नहीं रहता।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सर्वेक्षण–4

1. मकान मालिक का नाम : **श्री राम आशीष सिंह।**

2. पता : **मकान नं. 72, फाजल गंज, सासाराम (बिहार)।**

3. कब से रह रहे हैं? : **जन्म से।**

4. मकान कब खरीदा? : **पैतृक सम्पत्ति।**

5. मकान किससे खरीदा? एवं उनकी पूर्व स्थिति : **घर माता पिता का है। लेकिन धन-धान्य से भरा परिवार था। घर की एन्ट्री दूसरी तरफ से थी। लेकिन बंटवारे के बाद मेन गेट दक्षिण मुखी बनाना पड़ा उसके बाद एक-एक कर सब कुछ खत्म हो गया। अब खाने के लिए सोचना पड़ता है।**

6. जब मकान बनवाया था, उस समय क्या आपका घर दक्षिण मुखी ही था : **नहीं।**

7. यदि हाँ, तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये : **नहीं, थोड़ा-थोड़ा करके बनवाया।**

8. क्या आपको दक्षिण मुखी भवन वास्तुदोष का ज्ञान था? यदि नहीं, तो कब हुआ? : **नहीं। जब सब कुछ खत्म हो गया। लोगों के बताने-कहने पर ज्ञान हुआ।**

9. यहाँ आकर आपको कैसा लगा? : **अशांति, कलह, अपनों से विद्रोह।**

10. क्या खोया? क्या पाया? : **धन-दौलत, पैतृक भूमि, फार्म, घर का सामान, बेटे का पागल होना। तेजाब से जलाना, बेटी बीमारी से मर गई। बेटियों की शादी जैसे-तैसे की गई। भाई से अलग, रिश्तेदारों से अलग, सबसे दुश्मनी, अशांति, मानसिक संतुलन खोना। जैसे-तैसे बच्चों के साथ मुम्बई गया। उसके बाद हालत ठीक-ठाक है। बुढ़ापे का सहारा दूसरा बेटा है।**

11. आर्थिक, सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही? : **आर्थिक स्थिति खराब रही सब कुछ बिक गया। बेटे को रिक्शा चलाना पड़ा। पत्नी को मजदूरी करनी पड़ी। मजदूर बनकर रह रहे हैं। बेटा पागल हो गया। सारा परिवार अलग-थलग हो गया।**

निष्कर्ष : दक्षिण मुखी भवन वास्तु शास्त्र के अनुसार रहने के लिए उपर्युक्त नहीं रहता।

सर्वेक्षण–5

1. मकान मालिक का नाम : **श्री बवन सिंह।**

2. पता : **121, बलथुआ, पो. मोरसराय, जिला रोहतास (बिहार)।**

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

3. कब से रह रहे हैं? : 1990 से।

4. मकान कब खरीदा? : पैतृक जमीन पर घर बनवाये।

5. मकान किससे खरीदा? एवं उनकी पूर्व स्थिति : पैतृक था, पहले घर की स्थिति नबावों जैसी बहुत अच्छी थी।

6. जब मकान बनवाया था, उस समय क्या आपका घर दक्षिण मुखी ही था? : हाँ।

7. यदि हाँ, तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये : मकान धीरे-धीरे बना।

8. क्या आपको दक्षिण मुखी भवन वास्तुदोष का ज्ञान था? यदि नहीं, तो कब हुआ? : नहीं, अब हुआ है।

9. यहाँ आकर आपको कैसा लगा? : परेशानियों से सामना होता रहा एवं बहुत अच्छा नहीं लगा।

10. क्या खोया? क्या पाया? : भाई की असमय मृत्यु एवं लड़की की शादी में व्यवधान तथा बेटे एवं बहु के बीच में तलाक की नौबत, सारा दिन कानूनी लड़ाई लड़ना तथा पुत्री भी ससुराल से वापस आकर कई वर्षों से मायके में ही रहती है।

11. आर्थिक, सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही? : आर्थिक, सामाजिक व मानसिक स्थिति ठीक-ठाक नहीं है।

निष्कर्ष : दक्षिण मुखी भवन वास्तु शास्त्र के अनुसार मानव के रहने के लिए शुभ नहीं होता।

सर्वेक्षण–6

1. मकान मालिक का नाम : श्री रामाशीष सिंह।

2. पता : मकान नं. 40, फाजल गंज, सासाराम (बिहार)।

3. कब से रह रहे हैं? : शादी के समय से।

4. मकान कब खरीदा? : पिता ने खरीदा था।

5. मकान किससे खरीदा? एवं उनकी पूर्व स्थिति : सर्विस मैन से खरीदा था। ठीक-ठाक था।

6. जब मकान बनवाया था, उस समय क्या आपका घर दक्षिण मुखी ही था : हाँ।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

7. यदि हाँ, तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये : **आए, सबसे लड़ाई-झगड़ा, दुश्मनी।**

8. क्या आपको दक्षिण मुखी भवन वास्तुदोष का ज्ञान था? यदि नहीं, तो कब हुआ? : **नहीं। लोगों एवं ज्योतिषियों के कहने पर हुआ।**

9. यहाँ आकर आपको कैसा लगा? : **अर्थ की कमी एवं एक बड़ा परिवार की वजह से अच्छा नहीं चला। अशांति-कलह, लड़ाई-झगड़े होते रहे।**

10. क्या खोया? क्या पाया? : **आठ लड़कियों के बाद एक लड़का हुआ। पहले अच्छी आमदनी की वजह से भाई-भाई के दुश्मन हो गए। कई बार एक्सीडेंट, जान लेवा बीमारी, हमला, पुत्री की शादी के 5-6 दिन के अंदर दहेज देने के बाद भी हमेशा के लिए पागल करार, कोर्ट में जिल्लत, लड़की का मानसिक संतुलन खराब, पत्नी की भी हालत खराब, सब घरवाले सम्पत्ति लेकर अलग-थलग हो गए। व्याही लड़की भी घर में है। विधवा बहन एवं उसका परिवार घर में पड़ा है।**

11. आर्थिक, सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही? : **6-7 लड़कियाँ हैं एक छोटा लड़का है। कमाने वाला कोई नहीं। पहले धन आता था अब चारों तरफ से धन आना बंद है। अतः आर्थिक, सामाजिक व मानसिक स्थिति बहुत ही खराब है।**

निष्कर्ष : दक्षिण मुखी भवन में रहने वाले लोगों को अनेकों परेशानियों का सामना करना पड़ता है।

सर्वेक्षण–7

1. मकान मालिक का नाम : **श्री कमता सिंह।**

2. पता : **मकान नं. 154, ग्रा.+पो. मोरसराय, जिला रोहतास (बिहार)।**

3. कब से रह रहे हैं? : **जन्म से।**

4. मकान कब खरीदा? : **पैतृक।**

5. मकान किससे खरीदा? एवं उनकी पूर्व स्थिति : **पैतृक है, ठीक-ठाक थी जब घर का द्वार पूर्व में था।**

6. जब मकान बनवाया था, उस समय क्या आपका घर दक्षिण मुखी ही था? : **नहीं, बाद में जीर्णोद्वार हुआ।**

7. यदि हाँ, तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये? : **दक्षिण मुखी भवन छह सात महीने के अंतराल में बना।**

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

8. आपको दक्षिण मुखी भवन वास्तुदोष का ज्ञान था। यदि नहीं, तो कब हुआ? : नहीं, अभी।

9. यहाँ आकर आपको कैसा लगा? : जबसे दक्षिण मुखी घर बनवाया है तब से हाथ में पैसा नहीं रहता है।

10. क्या खोया? क्या पाया? : पिताजी की मानसिक स्थिति बिगड़कर असमय मृत्यु हुई। बच्चे संस्कारहीन हो गए। लड़कियों की शादी में बहुत विलम्ब हुआ। जैसे-तैसे निर्वाह करना पड़ा।

11. आर्थिक, सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही? : बहुत खराब रही।

निष्कर्ष : दक्षिण मुखी भवन में रहने वाले व्यक्ति के बच्चों को अनेकों परेशानियों का सामना करना पड़ता है।

सर्वेक्षण–8

1. मकान मालिक का नाम : श्री कामेश्वर मेहता।

2. पता : मकान नं. 15, ग्रा.+पो.+सासाराम जिला रोहतास (बिहार)।

3. कब से रह रहे हैं? : 1980 से।

4. मकान कब खरीदा? : 1978 में।

5. मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति? : दलाल से, ठीक-ठाक।

6. जब मकान बनवाया था, उस समय क्या आपका घर दक्षिण मुखी ही था : हाँ।

7. यदि हाँ, तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये? : नहीं, एक बार में ही मकान बन गया।

8. क्या आपको दक्षिण मुखी भवन वास्तुदोष का ज्ञान था? यदि नहीं, तो कब हुआ? : नहीं, अभी आप बता रहे हैं तब।

9. यहाँ आकर आपको कैसा लगा? : पहले ठीक लगा था लेकिन अब ठीक नहीं लगता है।

10. क्या खोया? क्या पाया? : धन-सम्पत्ति तो खूब है मगर एक ही बात का बहुत दुःख है कि हमारी कोई संतान नहीं है।

11. आर्थिक, सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही? : आर्थिक स्थिति तो बढ़िया है, लेकिन मानसिक और सामाजिक स्थिति ठीक नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

निष्कर्ष : दक्षिण मुखी भवन का द्वार ठीक पद में हो और उत्तर की अपेक्षा दक्षिण में खाली जगह कम हो तो बुरा नहीं होता है। यदि पद एवं दक्षिण में जगह खाली हो तो जन एवं धन में किसी एक चीज की हानि होती है।

सर्वेक्षण–9

1. मकान मालिक का नाम : **श्री उर्मिला देवी।**

2. पता : **सी-635, साउथ गणेश नगर, दिल्ली-110092।**

3. कब से रह रहे हैं? : **1983 से।**

4. मकान कब खरीदा? : **1983 में।**

5. मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति? : **राम चरण मास्टर से खरीदा, उनकी बहुत अच्छी स्थिति थी।**

6. जब मकान बनवाया था, उस समय क्या आपका घर दक्षिण मुखी ही था? : **हाँ**

7. यदि हाँ, तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये? : **पहले साधारण रहने योग्य बनाया। बाद में उसे तोड़कर नये सिरे से 2003 में बनवाया।**

8. क्या आपको दक्षिण मुखी भवन वास्तुदोष का ज्ञान था? यदि नहीं, तो कब हुआ? : **नहीं, बाद में हुआ।**

9. यहाँ आकर आपको कैसा लगा? : **मिला-जुला, ठीक-ठाक रहा।**

10. क्या खोया? क्या पाया? : **सिर्फ बीमारी एवं परेशानी लगी रही। जबसे दुकान बनायी तब से सिर्फ बेटे को आर्थिक परेशानी हुई परन्तु सुधर गयी, बाकी सब खुशहाल हैं।**

11. आर्थिक, सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही? : **ठीक-ठाक ही है।**

निष्कर्ष : दक्षिण मुखी भवन में दुकान बनवाने से आर्थिक हानि कम होती है।

सर्वेक्षण–10

1. मकान मालिक का नाम : **श्री चौधरी जुगर नागर।**

2. पता : **बी-65, साउथ गणेश नगर, दिल्ली-110092।**

3. कब से रह रहे हैं? : **1975 से।**

4. मकान कब खरीदा? : **पैतृक सम्पत्ति।**

6. मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति? : **पैतृक सम्पत्ति।**

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

7. जब मकान बनवाया था, उस समय क्या आपका घर दक्षिण मुखी ही था? : हाँ।

8. यदि हाँ, तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये : एक बार में ही पूरा घर बन गया।

9. क्या आपको दक्षिण मुखी भवन वास्तुदोष का ज्ञान था? यदि नहीं, तो कब हुआ? : नहीं, अभी हुआ। सामने मंदिर भी है।

10. यहाँ आकर आपको कैसा लगा? : बढ़िया लग रहा है।

11. क्या खोया? क्या पाया? : पाया ही पाया है। खोया कुछ भी नहीं।

12. आर्थिक, सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही? : बढ़िया रही।

निष्कर्ष : दक्षिण मुखी भवन के सामने मंदिर हो तो दोष कम लगता है।

सर्वेक्षण–11

1. मकान मालिक का नाम : श्री भोगी लाल सिसोदिया।

2. पता : यू-15C, उपाध्याय ब्लाक, शकरपुर, दिल्ली-110092।

3. कब से रह रहे हैं? : 1970 से।

4. मकान कब खरीदा? : 1968 में।

5. मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति? : गुजरों से।

6. जब मकान बनवाया था, उस समय क्या आपका घर दक्षिण मुखी ही था? : हाँ।

7. यदि हाँ, तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये : हाँ, सरकारी आदमी था धीरे-धीरे पैसा मिलता रहा और घर में पैसा लगाते रहे।

8. क्या आपको दक्षिण मुखी भवन वास्तुदोष का ज्ञान था? यदि नहीं, तो कब हुआ? : नहीं, अभी थोड़े समय में हुआ।

9. यहाँ आकर आपको कैसा लगा? : ठीक-ठाक ही है। बच्चे इलैक्ट्रिकल का कार्य करके अपना जीवन यापन करते हैं।

10. क्या खोया? क्या पाया? : संघर्ष करते हुए जिंदगी गुजर रही है। अगर यहाँ से पहले ऐसा नहीं था।

11. आर्थिक, सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही? : आर्थिक बढ़िया, सामाजिक अच्छा, मानसिक तनाव तो सदैव बना ही रहता है।

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

निष्कर्ष : दक्षिण मुखी भवन सदैव संघर्ष बना रहता है वास्तु पद के अनुसार द्वार न हो तो जन एवं धन में किसी एक की हानि होती है।

सर्वेक्षण–12

1. मकान मालिक का नाम : **श्री अनिल कुमार सक्सैना।**

2. पता : **यू. 54/1, उपाध्याय ब्लाक, शकरपुर, दिल्ली-110092।**

3. कब से रह रहे हैं? : **2006 से।**

4. मकान कब खरीदा? : **2006 में।**

5. मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति? : **बिल्डर से।**

6. जब मकान बनवाया था, उस समय क्या आपका घर दक्षिण मुखी ही था? : **हाँ।**

7. यदि हाँ, तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये? : **नहीं, मकान बना बनाया लिया था।**

8. क्या आपको दक्षिण मुखी भवन वास्तुदोष का ज्ञान था? यदि नहीं, तो कब हुआ? : **नहीं, आज ही हुआ है।**

9. यहाँ आकर आपको कैसा लगा? : **यहाँ आकर रहने को तो ठीक है लेकिन पड़ोसी अच्छा नहीं है। काम धन्धा भी ठीक नहीं है।**

10. क्या खोया? क्या पाया? : **संघर्ष करते हुए जिंदगी गुजर रही है। कर्ज पर कर्ज लिये जा रहे हैं। दो बच्चों की तन्ख्वाह भी कर्जे में लेने-देने पर चली जाती है। जबसे इस घर में आय हूँ। आत्महत्या करने की इच्छा होती है। बच्चे भी सुनी अनसुनी कर देते हैं।**

11. आर्थिक, सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही? : **आर्थिक खराब, सामाजिक अच्छा, मानसिक तनाव तो सदैव ही रहता है।**

निष्कर्ष : दक्षिण मुखी भवन में दोष ज्यादा पाये जाते हैं और सदैव संघर्ष बना रहता है

सर्वेक्षण–13

1. मकान मालिक का नाम : **श्री भूपाल सिंह बिष्ट।**

2. पता : **यू. 54/1, उपाध्याय ब्लाक, शकरपुर, दिल्ली-110092।**

3. कब से रह रहे हैं? : **1970 से।**

4. मकान कब खरीदा? : **1969 में।**

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

5. मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति? : जमींदारों से, ठीक-ठाक स्थिति थी।

6. जब मकान बनवाया था, उस समय क्या आपका घर दक्षिण मुखी ही था? : हाँ।

7. यदि हाँ, तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये? : आधा बेचकर, बाकी फ्लैट वाईज पूरा बना।

8. क्या आपको दक्षिण मुखी भवन वास्तुदोष का ज्ञान था? यदि नहीं, तो कब हुआ? : नहीं अभी।

9. यहाँ आकर आपको कैसा लगा? : कोई खास नहीं लगा, सच बताऊँ तो अच्छा ही नहीं लगा।

10. क्या खोया? क्या पाया? : सारी जमीन को बेचकर फ्लैट बनवाया, अब खोने को क्या है। सब खोया ही खोया है। पैतृक सम्पत्ति भी चली गई। दुकान खोलकर किसी तरह से परेशानियों में गुजर-बसर कर रहे हैं।

11. आर्थिक, सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही? : आर्थिक खराब, सामाजिक ठीक-ठाक, तनाव भरी जिंदगी है।

निष्कर्ष : दक्षिणमुखी भवन में रहने वाले व्यक्ति को तनाव भरी जिंदगी का सामना करना पड़ता है।

सर्वेक्षण–14

1. मकान मालिक का नाम : श्री आनन्द जैन।

2. पता मकान मालिक : एफ-183, लक्ष्मी नगर, दिल्ली-110092।

3. कब से रह रहे हैं? : 1990 से।

4. मकान कब खरीदा? : 1990 में।

5. मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति? : बिल्डर से खरीदा था, अच्छा था।

6. जब मकान बनवाया था, उस समय क्या आपका घर दक्षिण मुखी ही था? : हाँ

7. यदि हाँ, तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये? : नहीं, एक बार में ही सारा मकान बना।

8. क्या आपको दक्षिणमुखी भवन वास्तुदोष का ज्ञान था? यदि नहीं, तो कब हुआ? : नहीं, अभी थोड़े समय पहले हुआ।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

9. यहाँ आकर आपको कैसा लगा? : **सब ठीक-ठाक है। इसलिए अच्छा ही लगा है।**

10. क्या खोया? क्या पाया? : **सब कुछ पाया। जबसे इस घर में आया राजनीतिक क्रियाकलाप शुरू हुए।**

11. आर्थिक, सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही? : **आर्थिक अच्छी, सामाजिक ठीक-ठाक, दिमागी परेशानियाँ।**

निष्कर्ष : दक्षिणमुखी भवन में राजनीतिक क्रियाकलाप करने से वास्तु दोष कम लगता है।

सर्वेक्षण–15

1. मकान मालिक का नाम : **श्री सत्य नारायण मित्तल।**

2. पता : **यू. 124, शकरपुर, दिल्ली-110092।**

3. कब से रह रहे हैं? : **1965 से।**

4. मकान कब खरीदा? : **1965 में।**

5. मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति? : **गाँव के जमींदार से लिया था। स्थिति ठीक थी।**

6. जब मकान बनवाया था, उस समय क्या आपका घर दक्षिण मुखी ही था? : **नहीं।**

7. यदि हाँ, तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये? : **नहीं।**

8. क्या आपको दक्षिण मुखी भवन वास्तुदोष का ज्ञान था? यदि नहीं, तो कब हुआ? : **नहीं, भवन निर्माण के बाद में ज्ञात हुआ।**

9. यहाँ आकर आपको कैसा लगा? : **हमने मकान के नीचे में दुकान बनवाया उसके बाद अच्छा लगा।**

10. क्या खोया? क्या पाया? : **सारे बच्चों का जन्म यहीं हुआ। और उसकी परवरिश भी ठीक-ठाक हुई। छोटी बेटी का वैवाहिक जीवन बहुत खराब रहा। बेटी तलाकशुदा होकर घर पर बैठी है। हम पति-पत्नी दोनों बीमार रहते हैं। हार्ट पेशेंट हैं।**

11. आर्थिक, सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही? : **आर्थिक अच्छी, सामाजिक अच्छी, मानसिक अशांति एवं खराब।**

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

निष्कर्ष : दक्षिण मुखी भवन में रहने वाले लोगों से ज्यादा उनके बच्चों को दोष ज्यादा लगता है।

सर्वेक्षण–16

1. मकान मालिक का नाम : **श्री रवि शंकर।**

2. पता : **20, मित्रान, नजफगढ़, दिल्ली-110043।**

3. कब से रह रहे हैं? : **2006 अप्रैल से।**

4. मकान कब खरीदा? : **15 अप्रैल 2006 में।**

5. मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति? : **श्री तिलक मित्तल से, उनको पैसे के अभाव में इस घर को बेचना पड़ा।**

6. जब मकान बनवाया था, उस समय क्या आपका घर दक्षिण मुखी ही था? : **बना-बनाया लिया था।**

7. यदि हाँ, तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये? : **हाँ, अभी आधा-अधूरा बना है।**

8. क्या आपको दक्षिण मुखी भवन वास्तुदोष का ज्ञान था? यदि नहीं, तो कब हुआ? : **हाँ, मगर इस घर को मुनाफा बसूली के लिए लिया हूँ।**

9. यहाँ आकर आपको कैसा लगा? : **बहुत अच्छा नहीं लगा।**

10. क्या खोया? क्या पाया? : **घर में चार-पाँच लाख रुपये एवं पत्नी के गहनों की चोरी हुई।**

11. आर्थिक, सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही? : **आर्थिक बहुत ठीक, सामाजिक बहुत अच्छी, मानसिक ठीक-ठाक।**

निष्कर्ष : दक्षिणमुखी भवन किराये पर उठा देने से मालिक को दोष कम लगता है। अर्थात् किरायेदारों पर दोष ज्यादा लगता है।

सर्वेक्षण–17

1. मकान मालिक का नाम : **श्री रूप नारायण वर्मा।**

2. पता : **M-62, लक्ष्मी नगर, दिल्ली-110092।**

3. कब से रह रहे हैं? : **1979 से।**

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

4. मकान कब खरीदा? : **1978 में खरीदा।**

5. मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति? : **श्री सोहन लाल गुप्ता से खरीदा, धीरे-धीरे एक-एक कमरा करके बनवाया। पूर्व स्थिति ठीक-ठाक थी।**

6. जब मकान बनवाया था, उस समय क्या आपका घर दक्षिण मुखी ही था? : **हाँ।**

7. यदि हाँ, तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये? : **धीरे-धीरे एक-एक कमरा करके बनवाया।**

8. क्या आपको दक्षिण मुखी भवन वास्तुदोष का ज्ञान था? यदि नहीं, तो कब हुआ? : **नहीं, भवन बनवाने के बहुत बाद में।**

9. यहाँ आकर आपको कैसा लगा? : **अच्छा लगा।**

10. क्या खोया? क्या पाया? : **गृह क्लेश थोड़ा मगर वित्तीय समस्या एवं मानसिक तनाव अधिक रहता है।**

11. आर्थिक, सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही? : **आर्थिक ठीक-ठाक, सामाजिक भी ठीक-ठाक परन्तु मानसिक स्थिति खराब रहती है।**

निष्कर्ष : दक्षिण मुखी भवन सदैव मानसिक अशान्ति को अधिक देता है।

सर्वेक्षण–18

1. मकान मालिक का नाम : **श्री रविदत्त शर्मा एवं श्रीमती कौशल्या देवी।**

2. पता : **D-111, लक्ष्मी नगर, दिल्ली-110092।**

3. कब से रह रहे हैं? : **1980 से।**

4. मकान कब खरीदा? : **1979 में खरीदा।**

5. मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति? : **जमींदारों से।**

6. जब मकान बनवाया था, उस समय क्या आपका घर दक्षिण मुखी ही था? : **हाँ।**

7. यदि हाँ, तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये? : **हाँ, धीरे-धीरे घर बनवाया।**

8. क्या आपको दक्षिण मुखी भवन वास्तुदोष का ज्ञान था? यदि नहीं, तो कब हुआ? : **नहीं, अभी थोड़े दिन पहले।**

9. यहाँ आकर आपको कैसा लगा? : **बढ़िया लगा, मगर परेशानियाँ भी साथ-साथ लगी रहीं।**

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

10. क्या खोया? क्या पाया? : **एक दस वर्षीय पोते की बिजली के करेंट लगने से असमय मृत्यु हुई, जिसका दुःख सारे परिवार को है। बीच-बीच में व्यवसाय में बहुत बुरे दिन भी आये। मगर जबसे हमने घर में दुकान खोली तबसे बहुत हद तक राहत है।**

11. आर्थिक, सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही? : **आर्थिक ठीक-ठाक, सामाजिक बहुत बढ़िया, मानसिक संतोष जनक।**

निष्कर्ष : दक्षिण मुखी भवन में रहने वाले बच्चों को दोष ज्यादा लगता है। व्यवसायिक गतिविधियाँ चलाने से दोष कम हो जाता है।

सर्वेक्षण–19

1. मकान मालिक का नाम : **श्री अनिल गुप्ता।**

2. पता मकान मालिक : **E-45, लक्ष्मी नगर, दिल्ली-110092।**

3. कब से रह रहे हैं : **1980 से।**

4. मकान कब खरीदा : **1980 में खरीदा।**

5. मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति : **प्रॉपर्टी डीलर के माध्यम से।**

6. जब मकान बनवाया था, उस समय क्या आपका घर दक्षिण मुखी ही था? : **हाँ।**

7. यदि हाँ, तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये : **बना बनाया लिया था।**

8. क्या आपको दक्षिण मुखी भवन वास्तुदोष का ज्ञान था? यदि नहीं, तो कब हुआ? : **नहीं, अभी थोड़े दिन पहले।**

9. यहाँ आकर आपको कैसा लगा? : **ठीक-ठाक ही रहा मगर पड़ोसियों से आये दिन गाली-गलौज एवं झगड़ा होता रहता है।**

10. क्या खोया? क्या पाया? : **सबसे बड़ा बेटा पैरों से अपाहिज पैदा हुआ और इस घर को लेने के बाद परेशानी ही परेशानी रहीं। गृह क्लेश होते रहते हैं।**

11. आर्थिक, सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही? : **आर्थिक मध्यम, सामाजिक और मानसिक स्थिति बहुत खराब रहती है।**

निष्कर्ष : दक्षिण मुखी भवन में रहने वाले लोगों को ज्यादातर क्लेश का सामना करना पड़ता है। जिससे मानसिक एवं शारीरिक परेशानियाँ बनी रहती हैं।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सर्वेक्षण–20

1. मकान मालिक का नाम : **श्री वी.एन. दीक्षित।**

2. पता : **यू.-8A, शकरपुर, दिल्ली-110092।**

3. कब से रह रहे हैं? : **1975 से।**

4. मकान कब खरीदा? : **1975 में खरीदा।**

5. मकान किससे खरीदा एवं उनकी पूर्व स्थिति? : **गाँव के जमींदार से खरीदा, ठीक-ठाक था।**

6. जब मकान बनवाया था, उस समय क्या आपका घर दक्षिण मुखी ही था? : **हाँ।**

7. यदि हाँ, तो क्या आपको मकान बनवाने में कोई व्यवधान आये? : **थोड़ी-बहुत, धीरे-धीरे कमरे बनवाये।**

8. क्या आपको दक्षिण मुखी भवन वास्तुदोष का ज्ञान था? यदि नहीं, तो कब हुआ? : **नहीं, अभी थोड़े समय पहले हुआ।**

9. यहाँ आकर आपको कैसा लगा? : **अच्छा लगा।**

10. क्या खोया? क्या पाया? : **पहली पत्नी एवं माँ की असमय मृत्यु हुई। लेकिन अब मकान के किराये से अच्छे धन की प्राप्ति होती है।**

11. आर्थिक, सामाजिक और मानसिक स्थिति कैसी रही? : **आर्थिक बढ़िया, सामाजिक बढ़िया, मानसिक अशांति।**

निष्कर्ष : दक्षिण मुखी भवन में असमय मृत्यु होने के कारण पारिवारिक स्थिति खराब हो जाती है।

विश्लेषण (Analysis)

ऐसे तो सारे ब्रह्माण्ड में चार दिशाओं से पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण में ही घर बने हैं। इस हिसाब से तो 25 प्रतिशत लोग दक्षिण मुखी भवन में रहते हैं। तो प्रश्न उठता है कि क्या सभी एक ही प्रकार से दुखी हैं? और क्या उत्तर पूर्व में रहने वाले सभी सुखी हैं? तो इन दोनों प्रश्नों का उत्तर है– नहीं। फिर दक्षिण मुखी भवन मानव के निवास के लिए शुभ क्यों नहीं?

इस प्रश्न के उत्तर ढूँढ़ने के लिए मैंने अनेक दक्षिण मुखी भवन का सर्वेक्षण अलग-अलग जगहों पर किया और पाया कि दक्षिण मुखी भवन में रहने वाले सारे लोगों में कुछ न कुछ परेशानियाँ अवश्य हैं। बहुत से लोगों ने सत्य बताया और बहुत से लोगों ने लोक-लज्जा की वजह से, तो कुछ लोगों ने अपने को ऊँचा दिखाने के होड़ में अपनी कष्ट एवं परेशानियों को छुपाते

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

रहे। सर्वे के दौरान मैंने यह पाया कि दक्षिण मुखी भवन में रहने वालों के पड़ोस में रहने वाले लोगों से पता चला कि उनको बहुत सारी परेशानियों, बीमारियों एवं कष्टों का सामना करना पड़ रहा है। जबकि वहीं पर उनके भाई बन्धु जो उत्तर एवं पूर्व में रह रहे हैं उनको न तो इस तरह की कोई परेशानियाँ हैं और न ही वित्तीय समस्यायें।

मैंने सर्वे के दौरान यह पाया कि दक्षिण मुखी भवन में रहने वाले मुखिया की या तो असमय मृत्यु हो गई या उनको आत्महत्या करने की प्रबल इच्छा होती है, या फिर वह घर छोड़कर अन्यत्र जाना चाहते हैं। मैंने सर्वे के दौरान यह भी पाया कि दक्षिण मुखी भवन में रहने वाले ज्यादातर मनुष्यों के परिचितों को अकाल मृत्यु का सामना करना पड़ा। पैसे की भी बहुत समस्या रही। घर में रहने वाले ज्यादातर बच्चे मुखिया की बातों का अनसुनी कर देते हैं। दक्षिण मुखी भवन में रहने वाले मनुष्यों को सदैव घबराहट रहती है। बीमारियों का सामना भी ज्यादातर करना पड़ता है। अधिकांश पैसा लड़ाई-झगड़ा, कोर्ट कचहरी इत्यादि व्यर्थ के कार्यों में खर्च हो जाता है।

निष्कर्ष (Conclusion)

जैसा कि हम शोध कर चुके हैं कि वैज्ञानिक तथ्य, शास्त्रीय तथ्य एवं सर्वेक्षण इस बात के गवाह हैं कि दक्षिण मुखी भवन में रहने वाले लोगों को आर्थिक, सामाजिक, स्वास्थ्य एवं मानसिक रूप से परेशानियों का सामना करना पड़ता है। मगर दक्षिण मुखी भवन में यदि वास करना हो तो हमें निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए, जिससे दक्षिण मुखी भवन होने का दोष उसमें रहने वाले लोगों को कम से कम लगे–

1. दक्षिण मुखी भवन निर्माण करते समय यह ध्यान रखें कि दक्षिण का भाग ऊँचा हो, और उस हिस्से में घर की भारी-भरकम एवं अनुपयोगी सामग्री को रखा जाये। ऐसा करने से शुभ प्रभाव में वृद्धि होती है।

2. दक्षिण मुखी भवन के दक्षिण में अगर कोई नाला अथवा निम्न स्तर का भूखण्ड हो अपने घर से थोड़ा सा स्थान छोड़कर "कम्पाऊण्ड वाल" का निर्माण करवाना चाहिए। जिससे कि सुखद परिणाम मिलते हैं।

3. दक्षिण मुखी भवन के दक्षिण में यदि वर्षा और सीवरेज के जल की निकासी हो तो उसे प्रयत्नपूर्वक पूर्व या पश्चिम की ओर निकालने की व्यवस्था करनी चाहिए। इससे वहाँ के निवासियों को मान-सम्मान तथा अरोग्यता की प्राप्ति होती है।

4. दक्षिण मुखी भवन के कमरों का फर्श भवन के उत्तरी हिस्से में बने कमरों की अपेक्षा ऊँचा रखने से गृहस्वामी वैभव सम्पन्न हो जाता है।

5. दक्षिण मुखी भवन के दक्षिण में यदि कोई व्यवसायिक गतिविधि प्रारंभ कर दी जाये तो उसमें रहने वाले लोगों को दक्षिण मुखी भवन का दोष नहीं लगता। यदि लगता भी है तो कम लगता है।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

ईशान कोण का महत्त्व

–सोहनलाल अग्रवाल

मनुष्य मात्र का सुगमता से एवं शीघ्रता से कल्याण कैसे हो, इसका जितना गम्भीर विचार हिन्दू संस्कृति में किया गया है, उतना अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त मनुष्य जिन-जिन वस्तुओं एवं व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है और जो-जो क्रियाएँ करता है, उन सबको हमारे ऋषि-मुनियों ने बड़े वैज्ञानिक ढंग से सुनियोजित, मर्यादित एवं सुसंस्कृत, किया है और उन सबका पर्यवसान परम श्रेयकी प्राप्ति में किया है। इतना ही नहीं मनुष्य अपने निवास के लिए भवन निर्माण करता है तो उसको भी वास्तुशास्त्र के द्वारा मर्यादित किया है। वास्तुशास्त्र का उद्देश्य भी मनुष्य को कल्याण-मार्ग में लगाना है। वास्तु शब्द का अर्थ है– निवास करना है। जिस भूमि पर मनुष्य निवास करते हैं, उसे "वास्तु" कहा जाता है। मनुष्यों के निवास एवं कार्य करने योग्य भूमि एवं भवन को वास्तु कहते हैं। जिस शास्त्र में भूमि एवं भवन में निवास व कार्य करने वाले लोगों को अधिकतम सुविधा प्राप्ति के सिद्धान्तों, नियमों, विधियों एवं प्रविधियों का प्रतिपादन किया जाता है, उस शास्त्र को वास्तुशास्त्र कहते हैं। यह शास्त्र पञ्चमहाभूतों के तालमेल एवं प्राकृतिक शक्तियों के प्रबन्धन द्वारा मानव-जीवन एवं उसके क्रियाकलापों में उसको सुविधा एवं सुरक्षा देने के लिये प्रयत्नशील दिखलाई देता है।

यह शास्त्र पंच महाभूतों के साथ तालमेल तथा प्राकृतिक शक्तियों के उपयोग के द्वारा मानवीय जीवन की गतिविधियों को स्फूर्त करना चाहता है, जिससे उसको अपने जीवन में न केवल सन्तुष्टि ही मिले, अपितु वह प्रगति के मार्ग में विकास के माध्यम से जीवन में सफलता के नये आयाम स्थापित कर सके। इस शास्त्र की सबसे बड़ी खूबी है यह कि यह शास्त्र पंच महाभूतों से बने मानव के जीवन में इन्हीं पाँच महाभूतों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु व आकाश) से बने वातावरण के साथ उसका तालमेल बनाने में सर्वोच्च प्राथमिकता देता है। यह शास्त्र इस तथ्य को ध्यान में रखकर यह प्रतिपादित करता है कि मनुष्य को अपने आवास एवं अन्य कार्यों के लिए निर्मित भवनों में इन पाँच महाभूतों का किस तकनीक से उपयोग करना चाहिए? ताकि मनुष्य को अपने जीवन के क्रियाकलापों में ऊर्जा, स्फूर्ति, एवं संतुष्टि मिल सके।

इस शास्त्र की यह स्वयं सिद्ध मान्यता है कि मानव मात्र की शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं के स्तर को उन्नत रखने के लिए उसका पंच महाभूतों के साथ उचित तालमेल होना नितान्त आवश्यक है। वास्तुशास्त्र के अलावा अन्य सभी शास्त्रों में इन महाभूतों के सन्तुलन के बारे

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

में कोई उल्लेख नहीं मिलता है। वास्तु के तीन भेद होते हैं। 1. आवासीय, 2. व्यावसायिक, 3. धार्मिक।

आवासीय वास्तु मुख्य रूप से पर्णकुटी या झोपड़ी, लकड़ी के घर, मिट्टी एवं खपरैल से कच्चे घर, ईट लोहा एवं सीमेन्ट से बने पक्के घर, पत्थर से बनी हवेलियाँ एवं महल आदि को कहते हैं। निर्माण में भूमि के ढलान, भूखण्ड के आसपास का वातावरण, भूखण्ड के आकार, भूखण्ड के विस्तार, भूखण्ड के कटाव, भूखण्ड के समीपवर्ती मार्ग का विचार करना आवश्यक है। इन सभी बातों का विचार करने के बाद ही भूखण्ड पर भवन निर्माण के लिए 81-पद वास्तु का प्रतिपादन करना चाहिए। इस 81-पद वास्तु में दर्शाये गये देवताओं के गुण धर्म के अनुसार भवन में कक्षों का निर्माण करना चाहिए। भवन निर्माण के समय मर्म स्थान, अति मर्म स्थान तथा ब्रह्म स्थान का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिये।

81-पद वास्तुचक्र

ईशान — पूर्व — आग्नेय

शिखी 1	पर्जन्य 2	जयन्त 3	इन्द्र 4	सूर्य 5	सत्य 6	भृश 7	अंतरिक्ष 8	अनिल 9
दिति 32	आप 33	जयन्त	इन्द्र	सूर्य	सत्य	भृश 34	सावित्र 10	पूषा
अदिति 31	अदिति	आपवत्स 44	अर्यमा	अर्यमा 37	अर्यमा	सविता 38	वितथ	वितथ 11
भुजङ्ग 30	भुजग	पृथ्वीधर	ब्रह्मा	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विवस्वान्	बृहत्क्षत	बृहत्क्षत 12
सोम 29	सोम	पृथ्वीधर 43	ब्रह्मा	ब्रह्मा 45	ब्रह्मा	विवस्वान् 39	यम	यम 13
भल्लाट 28	भल्लाट	पृथ्वीधर	ब्रह्मा	ब्रह्मा	ब्रह्मा	विवस्वान्	गन्धर्व	गन्धर्व 14
मुख्य 27	मुख्य 42	राजयक्ष्मा	मित्र	मित्र 41	मित्र	इन्द्र 40	भृंगराज	भृंगराज 15
नाग 26	रुद्र 36	शोष	असुर	वरुण	पुष्पदंत	सुग्रीव	जय 35	मृग 16
रोग 25	पापयक्ष्मा 24	शोष 23	असुर 22	वरुण 21	पुष्पदंत 20	सुग्रीव 19	दौवारिक 18	पितर 17

उत्तर — दक्षिण

वायव्य — पश्चिम — नैर्ऋत्य

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

आवासीय भवन में कक्षों का निर्माण–

बृहत्संहिता, नारद संहिता, वास्तुराज वल्लभ जैसे मानक ग्रन्थों में आवासीय भवन को 16 भागों में विभाजित कर विभिन्न दिशाओं में विविध कक्षों के निर्माण का प्रतिपादन किया गया है। भवन की किस दिशा में कौन सा कक्ष बनाना चाहिये? इस विषय में सर्व सम्मत विचार इस प्रकार है– 1. **ईशान में** पूजागृह, 2. **ईशान व पूर्व के मध्य में** भण्डार गृह, 3. **पूर्व में** स्नानघर, 4. **आग्नेय एवं पूर्व के मध्य में** दधि विलोडन कक्ष, 5. **आग्नेय में** रसोईघर, 6. **आग्नेय व दक्षिण के मध्यमें** घी-तेल संग्रह कक्ष, 7. **दक्षिण में** शयन कक्ष, 8. **दक्षिण एवं नैऋत्य के मध्य में** शोचालय, 9. **नैऋत्य में** शस्त्र एवं भारी चीजों का भण्डार, 10. **नैऋत्य एवं पश्चिम के बीच में** अध्ययन कक्ष, 11. **पश्चिम में** भोजन कक्ष, 12. **पश्चिम एवं उत्तर के बीच में** रोदन गृह, 13. **वायव्य में** पशुशाला, 14. **वायव्य व उत्तर के बीच में** रति गृह, 15. **उत्तर में** कोषागार, 16. **उत्तर व ईशार के मध्य में** औषधि कक्ष। इन कक्षों के बीचों बीच में खुला आँगन या चौक रखा जाता है। यह स्थान परिवार के लोगों के साथ मिल जुलकर बैठने तथा पारिवारिक, सामाजिक एवं धार्मिक गतिविधियाँ को सम्पन्न करने के उपयोग में आता है।

आज के समय में इन 16 कक्षों की न तो जरूरत है और नहीं छोटे-छोटे भूखण्डों पर अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार मध्यम वर्गीय व्यक्ति को इतने कक्ष बनाना सम्भव भी है। आज के सन्दर्भ में वास्तुशास्त्र के नियमों को देखकर आवश्यक कक्ष बनाने चाहिएं।

दिशा-महत्त्व/परिचय

वास्तुशास्त्र के अध्ययन का सर्वाधिक बल इस बिन्दु पर है कि व्यक्ति अपनी प्रगति व उन्नति हेतु अपने निवास गृह में पृथ्वी, जल, तेज, वायु व आकाश का उचित रूप में उपयोग कैसे करे ताकि पंच महाभूतों से बने आवास में पाञ्चभौतिक तत्वों से निर्मित प्राणी की क्षमताओं को विकसित करने की शक्ति स्वयं सक्रिय हो सके।

पंच महाभूतों तथा प्राकृतिक शक्तियों के प्रयोग का एक ऐसा आदर्श उपयोग वास्तु निर्माण में किया जाय, जिससे मनुष्य मात्र का सर्वाधिक कल्याण हो सके, इसके लिए दिक् (दिशा) ज्ञान, दिशा निर्धारण की विधियों को जानना तथा इसका उपयोग करना, अति महत्त्वपूर्ण हैं। इसी में वास्तुशास्त्र के अध्ययन व प्रयोग हेतु, दिशा के ज्ञान का महत्त्व निहित है।

वास्तुशास्त्र का आधारभूत पहलू दिशा ज्ञान–

वास्तुशास्त्र को समझने, अध्ययन करने, व्यवहारिक जीवन में प्रयोग करने तथा इससे शुभ की प्राप्ति करने हेतु सर्वप्रथम दिशाओं का गहन ज्ञान होना अत्यावश्यक है। जब हम पूर्व दिशा की ओर मुख करते हैं तो हमारे बाई ओर उत्तर, दाहिनी ओर दक्षिण तथा पीठ पीछे पश्चिम दिशा होती हैं। जहाँ दो दिशाओं का मिलन होता है, वह कोण कहलाता है। ये कोण भी चार ही होते

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

हैं– (1) **ईशान कोण**– उत्तर और पूर्व के मध्य का कोण। (2) **आग्नेय कोण**– पूर्व और दक्षिण के मध्य का कोण। (3) **नैऋत्य कोण**– दक्षिण और पश्चिम के बीच का कोण। (4) **वायव्य कोण**– पश्चिम और उत्तर के बीच का कोण। बीच का स्थान **ब्रह्मस्थान** कहलाता है।

1. पूर्व दिशा– ग्रहों के राजा, पिता के प्रतिनिधि, आत्माकारक तथा सृष्टि, प्रकाश व ऊर्जा पुंज सूर्य इस पूर्व दिशा से उदय होते हैं। पूर्व दिशा के देवता इन्द्र हैं। मकान में पूर्व दिशा में खुला स्थान रखना, गृहस्वामी, परिवार के मुखिया की दीर्घ आयु को दर्शाता है।

2. दक्षिण दिशा– यम दक्षिण दिशा के अधिष्ठित देव हैं। मंगल ग्रह दक्षिण दिशा के स्वामी है। दक्षिण दिशा में वास्तुशास्त्र सम्मत निर्माण से समृद्धि, सुख सम्पन्नता की प्राप्ति होती है।

3. पश्चिम दिशा– पश्चिम दिशा के देवता वरुण हैं। शनि ग्रह पश्चिम दिशा के स्वामी हैं। इस दिशा में वास्तु सम्मत निर्माण ख्याति, भाग्य व प्रसिद्धि देने वाला होता है।

4. उत्तर दिशा– धन-धान्य, समृद्धि दायक कुबेर उत्तर दिशा के अधिष्ठित देवता हैं। बुध ग्रह उत्तर दिशा के स्वामी हैं। उत्तर दिशा में खाली स्थान व कच्ची भूमि छोड़ना समृद्धि व धनदायक होता है।

5. ईशान कोण– पूर्व व उत्तर दिशा के मिलन स्थान को ईशान कोण की संज्ञा दी गई है। ईश/शिखी इस स्थान के देवता हैं। इस स्थान को भगवान शिव और जल का स्थान भी माना गया है। ईशान में हमेशा सफाई, स्वच्छता शुद्धता रखनी चाहिए। इस स्थान पर कुआँ बोरिंग जैसे जलीय स्रोत तथा पूजा स्थान की व्यवस्था सर्वश्रेष्ठ शुभ फल देने वाली होती है। यहाँ गन्दगी, कूड़ा-करगट, स्टोर, शोचालय बिल्कुल नहीं होना चाहिए।

6. आग्नेय कोण– दक्षिण और पूर्व के मध्य का कोण आग्नेय कोण कहलाता है। यह अग्नि देवता का स्थान होता है। यह रसोई, अग्नि सम्बन्धी इलेक्ट्रोनिक उपकरणों के लिए सर्वोचित स्थान है। शुक्र ग्रह इस दिशा के स्वामी हैं। आग्नेय कोण में वास्तुशास्त्रानुरूप व्यवस्था होना परिवारिक सदस्यों के स्वास्थ्य के लिए अति उत्तम होता है।

7. नैऋत्य कोण– दक्षिण व पश्चिम दिशा के बीच के स्थान को नैऋत्य कोण के नाम से जाना जाता है। इस दिशा का आधिपत्य निरुति/पूतना राक्षसी के पास है। इस स्थान के स्वामी राहु और केतु हैं। पृथ्वी इस क्षेत्र का मुख्य तत्व है। इस स्थान को ऊँचा तथा भारी होना चाहिए। यह कोण समकोण होना चाहिए। इस स्थान पर गड्ढे, बोरिंग, कुएँ इत्यादि अशुभ फलदायक होते हैं।

8. वायव्य कोण– उत्तर और पश्चिम दिशा के मध्य के कोणीय स्थान को वायव्य कोण कहा जाता है। इस स्थान पर रोग का आधिपत्य है। वायु इस स्थान का प्रमुख तत्त्व है। इस स्थान पर निर्मित उचित, अनुचित/व्यवस्था का प्रभाव सम्बन्धियों, मित्रों, पड़ोसियों से अच्छे-बुरे सम्बन्धों

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

का कारण बनता है।

कोणीय दिशाओं का विस्तृत/गहन वर्गीकरण सभी कोणीय दिशाएँ दो दिशाओं के लम्बीय कोण पर आधारित हैं। अतः गहन व विस्तृत अध्ययन के लिए प्रत्येक कोणीय दिशा को पुनः दो भागों में वर्गीकृत किया जाता है।

कोणीय दिशाओं का विस्तृत वर्गीकरण

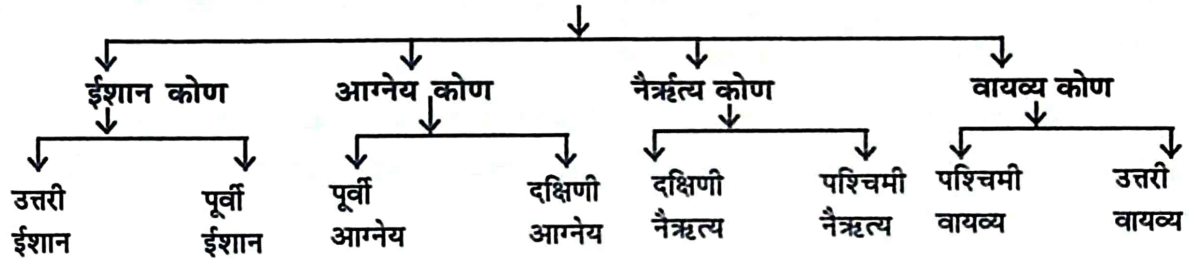

पंचमहाभूतों के साथ-साथ तीनों प्राकृतिक ऊर्जाओं (गुरुत्व, चुम्बकीय एवं सौर ऊर्जाओं/शक्तियों) के सामंजस्य व संतुलन पर ही वास्तुशास्त्र आधारित है। इन ऊर्जाओं के प्रवाह की विशेष दिशा होती है जैसे सौर ऊर्जा पूर्व से पश्चिम की ओर प्रवाहित होती है, उसी प्रकार चुम्बकीय ऊर्जा का प्रवाह उत्तर से दक्षिण के मध्य होता है तथा वास्तु सम्बन्धी कोई भी गम्भीर कार्य करने से पूर्व सम्बन्धित भूखण्ड व भवन के संदर्भ में दिशा निर्धारण अति आवश्यक हैं।

दिशा निर्धारण की निम्नलिखित विधियाँ होती हैं–

1. सूर्योदय आधारित विधि– इस विधि में सूर्य के उदय होने की दिशा से दिशा निर्धारण किया जाता है। सूर्योदय की दिशा की ओर मुख करके खड़े होने से बाई ओर उत्तर, दांयी ओर दक्षिण तथा पीठ पीछे पश्चिम दिशा होती हैं। सूर्योदय की दिशा पूर्व होती है लेकिन इस विधि में सटीकता नहीं होती हैं क्योंकि सूर्य सही पूर्वीय दिशा से केवल सितम्बर 23 और मार्च 21 को ही उदय होता है और इन दो दिनों में ही दिन और रात की अवधि बराबर होती हैं।

2. शंकु स्थापन विधि– प्राचीन काल में यह विधि दिशा निर्धारण के लिए अपनाई जाती रही हैं। इसमें 12 अँगुल लम्बा शंकु (लकड़ी का टुकड़ा) भूखण्ड के मध्य में स्थापन कर दिन के अलग-अलग प्रहरों में उसकी छाया के अनुसार दिक् साधन किया जाता था। यह विधि भी सूर्य पर आधारित हैं।

3. ध्रुव तारा विधि– इस विधि में सप्त ऋषि तारों अथवा ध्रुव तारे की आकाश में स्थित से दिशा साधन किया जाता है। ध्रुव तारे की स्थित से उत्तर दिशा निर्धारित कर अन्य दिशाओं का भी निर्धारण किया जाता है। यह रात्रि के समय सम्भव होता है। बादलों के होने पर कठिनाई होती हैं।

4. दिशा सूचक यन्त्र (कम्पास) विधि– आधुनिक समय में दिशा निर्धारण के लिए कम्पास (दिशा सूचक यन्त्र) का प्रयोग प्रचलन में आ रहा है। आजकल कम्पास आसानी से

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

उपलब्ध हो जाते हैं। चौबीस घंटे, चाहे दिन हो या रात, इस दिशा सूचक यन्त्र (compass) से दिशा निर्धारण किया जा सकता है। सामान्यतः अधिकतर दो प्रकार के कम्पास उपलब्ध हैं–

(i) पीवोटल निडल (Pivotal Needle) कम्पास– यह अधिक प्रचलन में हैं। इसमें सुई सदा उत्तर दिशा की ओर संकेत करती है। इसे प्रयोग करने हेतु इस कम्पास को भूखण्ड आवास अथवा कार्य स्थल के मध्य में स्थित करते हैं तथा सुई के स्थिर होने के बाद कम्पास को धीरे-धीरे घुमाते सुई को 'N' उत्तर दिशा पर स्थिर करते हैं। तत्पश्चात् अन्य तीन दिशाओं का निर्धारण कर लिया जाता है।

(ii) फ्लोटिंग डिस्क (Floating Disc) कम्पास– इस कम्पास को भी भूखण्ड, आवास अथवा कार्य स्थल के मध्य स्थित किया जाता है। स्थिर होने पर यह स्वयं दिशाओं का निर्धारण कर देती है।

बृहत्संहिता, नारद संहिता, वास्तु राज वल्लभ जैसे सर्वमान्य मानक ग्रन्थों के अनुसार सोलह कक्षीय आवासीय भवन में ईशान कोण, ईशान व पूर्व के मध्य तथा ईशान व उत्तर के मध्य अपेक्षित वास्तुसम्मत कक्ष है। जैसे–ईशान एवं पूर्व के मध्य में भण्डार गृह, ईशान कोण में पूजा कक्ष, ईशान एवं उत्तर के मध्य औषधि कक्ष। तत्कालीन समाज के कुलिन तथा अभिजात्य वर्ग को दृष्टि में रखकर ही भवन में कक्ष निर्माण का प्रतिपादन वास्तुशास्त्र के ग्रंथों में किया गया है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक के मानव जीवन के ऐतिहासिक के विकास में न केवल समय का अन्तर आया है, बल्कि इस अन्तराल में परिस्थितियों में, सामाजिक व आर्थिक मूल्यों में, परिवारिक व्यवस्थाओं में, जनसंख्या के आकार में, गाँव, देहात, नगर की जनसंख्या में, फैलाव तथा घनत्व में, रोजी रोटी/रोजगार/कारोबार की पसंद की सोच में, भवन निर्माण की तकनीक के विकास में, मानव द्वारा प्रयोग की जाने वाले सुख सुविधा के घरेलू व कारोबार उपकरणों के विकास व आविष्कार में, जीवन स्तर व हैसियत के पैमानों में, विनिमय के लेन-देन के माध्यमों में जीवन-शैली इत्यादि में अकल्पनीय आसमान के पर्याप्त अन्तर आए हैं।

परिणामस्वरूप आज वास्तु ग्रन्थों के अनुसार 16 कक्षों का निर्माण न तो आवश्यक है और न ही इसकी उपयोगिता है। इस संदर्भ में मुख्य बात यह है कि अन्य शास्त्रों की भांति वास्तु शास्त्र ने भी देश, काल व परिस्थितियों के साथ अपने नियमों व सिद्धांतों में परिवर्तन का लचीलापन सदैव बनाए रखा है। लेकिन वास्तुशास्त्र की मूल संकल्पना आज भी ज्यों की त्यों है। अतः वास्तु शास्त्र के ग्रन्थों में प्रतिपादित भवन में कक्षों का निर्माण एक निर्देशन मात्र है। परिणामस्वरूप यह प्रत्येक दिशा की प्रकृति, स्वभाव एवं गुण धर्मों का अधिकतम उपयोग करने के लिए उस दिशा में समान प्रकृति के क्रियाकलापों (गतिविधियाँ) व्यवस्थाओं को संचालित करने का निर्देश देकर उसका अधिकतम व कल्याणकारी उपयोग करने का मार्गदर्शन करता है।

इसलिए पूर्वोक्त वास्तविकताओं के दृष्टिगत आज के आधुनिक संदर्भ में ईशान कोण में, पूर्व व ईशान कोण के मध्य तथा उत्तर व ईशान कोण के मध्य में इन दिशाओं की प्रकृति, स्वभाव

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

व गुण-धर्मों के आधार पर वास्तुशास्त्र की मूल संकल्पना के अनुरूप क्या-क्या बनाया जा सकता है तथा कौन-कौन से कार्य किये जा सकते हैं। यह निम्नलिखित तालिका में दिखाया गया है।[1]

दिशा	क्या-क्या सम्भव है
ईशान कोण में	1. पूजाघर, 2. कुंआ, बोरिंग वाटर टैंक, 3. द्वार, 4. बराण्डा 5. लिविंग रूम, 6. ड्राईंग रूम, 7. पोर्टिको 8. लान (घास का मैदान एवं तलहार)
पूर्व व ईशान कोण के मध्य	1. कुंआ, बोरिंग पम्प, 2. सैप्टिक टेंक, 3. द्वार, 4. गोबर गैस प्लांट, 5. पूजाघर, 6. सूतिका गृह, 7. सामान्य कक्ष, 8. स्टोर, 9. बेसमेन्ट एवं 10. तुलसी, पौधे, लान आदि
उत्तर व ईशान कोण के मध्य	1. औषधि कक्ष, 2. कन्याओं का शयन कक्ष, 3. द्वार, 4. कुँआ/बोरिंग, 5. पूजाघर, 6. लिविंग रूम 7. ड्राईंग रूम, 8. बेसमेन्ट, 9. पोर्टिको

इशान के अशुभ फल

1. ईशान कोण पर उत्तर दिशा में कटान– निर्धनता, शत्रुता एवं परिवार में मेल जोल की कमी के कारण अशुभ है। वास्तुशास्त्र में ईशान दिशा का बहुत महत्व है। क्योंकि ईशान कोण में वास्तु पुरुष का शिर होता है। अतः किसी प्रकार का कटाव अशुभ माना जाता है। गृहस्वामी को रोग अकाल मृत्यु, मानसिक तनाव व अशान्ति देता है।

2. ईशान कोण के पूर्व दिशा में कटाव– गरीबी, अशान्ति एवं व्यापार में हानिदायक होने से अशुभ है। उसका वंश तीसरी चौथी पीढ़ी तक पहुँचते-पहुँचते समाप्त हो जाता है।

3. ईशान कोण पर गोलाई होना– ऐसे भूखण्ड के भवन पर रहने वाले को किसी भी हाल में शुभ नहीं है।

4. ईशान कोण के ऊँचा होने पर या निर्माण करने पर– भवन निवासियों को हानि व शोक पुत्र की दृष्टि से अशुभ, पुत्र मानसिक व शारीरिक दृष्टि से विकलांग होता है।

5. ईशान कोण के कटे फटे होने से– पुत्र पुत्रियों की शिक्षा अपूर्ण, अपेक्षित सफलता का न मिलना, अध्ययन में रुचि न होना, उनके विवाह में बाधाएँ या विलंब का होना आदि फल मिलते हैं।

---

1. भारतीय वास्तुशास्त्र, प्रो0 शुकदेव चतुर्वेदी, पृ0 132।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

6. ईशान कोण में कूड़ा कचरा– ईंट पत्थर का ढेर, लोहा लकड़ी आदि रखने पर, पुत्रों के साथ-साथ परिवार के अन्य सदस्यों को भी रोगग्रस्त दुर्घटनाग्रस्त हो जाने तथा कलह के कारण वातावरण के अशांत एवं तनावग्रस्त बने रहने की सम्भावना रहती है।

7. प्रथम तल पर ईशान कोण में पूजा कक्ष हो तो उसके ऊपर अन्य तलों में शौचालय अथवा स्नानघर, भण्डार कक्ष रखने पर– पिता पुत्र में वेमनस्य, पिता के मृत्यु उपरांत पुत्र की गंभीर दुर्दशा, गले, लीवर, जांघ, मांस, पिंड में रोग, चर्बी की अधिकता आदि फल देखने में आते हैं।

8. ईशान कोण में यदि शौचालय स्थित हो तो– सन्तति का बिमार होना व्यापार-व्यवसाय में असफलता, दासत्व, सन्तानों का कुसंस्कारित हो, सन्तति का अकाल मृत्यु को प्राप्त होना, किसी कन्या को पति सुख का अभाव होना आदि फल मिलते हैं।

9. ईशान कोण में गमलों में काँटेदार, दूधवाले, चौड़ी पत्ती वाले पौधे नहीं रखने चाहिये– किसी बीमार, वृद्ध व्यक्ति को ईशान कोण में उत्तर की तरफ रखना चाहिये जिससे रोग मुक्ति हो जाती है।

शुभ फल–

1. ईशान कोण में भूखण्ड में उत्तर की ओर विस्तार– यह विस्तार प्रगति एवं अभिवृद्धि दायक होने के कारण अत्यन्त शुभ हैं। आध्यात्म में रुचि, चिंतन में पवित्रता, पुत्र प्राप्ति, शिक्षापूर्ति, एवं धन लाभ होता है।

2. ईशान कोण में पूर्व की ओर भूखण्ड में विस्तार– यह सुख एवं समृद्धिदायक होने के कारण शुभ एवं श्रेष्ठ है। निवासी उच्च शिक्षित, धनवान प्रतिष्ठित, धार्मिक, सफल, यशस्वी एवं महत्वाकांक्षी होता है।

3. ईशान कोण में पूर्व व उत्तर दोनों ओर विस्तार– यह विस्तार प्रगति एवं समृद्धिदायक होने से पूर्ण रूप से श्रेष्ठ है।

4. ईशान कोण में कोने की माप– 90° अथवा 90° से कुछ कम शुभ है। किसी भी हालत में 90° से अधिक नहीं होनी चाहिये।

5. ईशान कोण की सकारात्मक ऊर्जा – प्रेरणा एवं महत्वकांक्षा का बोध देती है। उसकी प्राप्ति में भावनात्मक उत्साह प्रदान करती है। दिशाहीन तथा प्रेरणाहीन व्यक्तियों को इस भाग को अपना अधिक समय व्यतीत करना श्रेयस्कर सिद्ध होता है।

6. ईशन कोण में कूप अथवा हैण्ड पम्प के होने पर– पुत्र सुख, स्त्री सुख, आरोग्य, ज्ञान, एवं विद्या की प्राप्ति, संस्कारों एवं विचारों में पवित्रता, विविध सम्पत्ति, प्रिय जनों के हित

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

का इच्छुक, ईर्ष्या व द्वेष के भाव मन में न रखने वाला, कृषि, वाहन का सुख धार्मिक प्रवृत्ति, शीलवान, नवीन गृह-प्राप्ति जिसमें मृत्युपर्यन्त निवास का सुख प्राप्त हो। माता/पिता किसी एक की अल्पआयु में मृत्यु, उन्नति, राजकृपा सदाचारी एवं सुसंस्कृत तथा उच्च कुल होने के साथ-साथ समाज के प्रतिष्ठित लोगों में उठने-बैठने का अवसर प्राप्त होता है।

आवासीय भवन के ईशान कोण में वास्तुसम्मत कक्ष/व्यवस्थाएँ/क्रियाकलाप होने के शुभ फल तथा वास्तु विरुद्ध कक्ष, व्यवस्थाएँ/कार्यकलापों के होने के अशुभ फल होते हैं।

1. ईशान कोण में अतिथिशाला– यहाँ अतिथिशाला, पंद्रह वर्ष से कम आयु के बच्चों का शयन कक्ष रखा जा सकता है। किंतु नवविवाहित युवा दम्पत्ति का शयन कक्ष उन्हें रोग, आर्थिक समस्याएँ, पारस्परिक मनमुटाव, भाग्य संबंधी परेशानी दे सकता है। गृहस्वामी का यहाँ रहना, सोना, आर्थिक स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

2. ईशान में सीढ़ियाँ होने पर– प्राय: प्रवास, पैत्रक धन का न मिलना, मित्रों का अभाव, पुत्र कष्ट या विलम्ब से पुत्र प्राप्ति, आलस्य, विश्वासघात, चोरों से हानि, ज्ञान का घमण्ड, मूर्खता में धन व्यय, मानसिक चिंता/रोग, व्यापार में असफलता मिलती है।

3. ईशान में पाकशाला बनाने से– निवासियों में कलह, गृहस्वामिनी/वृद्ध स्त्रियों की कष्टपूर्ण मृत्यु, धन लाभ नहीं, अशान्ति, शत्रुओं से पराजय, अकारण प्रवास, पुत्रों को कष्ट, मित्रों से सुख नहीं, परिवारिक सदस्य दुखी, शारीरिक कष्ट, दुर्घटना भय, पराधीनता अग्नि भय, गृहस्वामिनी रोगिनी, एक ही पुत्र वह भी क्लेशी होता है।

4. ईशान कोण में भोजनालय– ऊपर लिखे दोष के अलावा, निवासियों में ईर्ष्या व्यापार में हानि, अर्जित धन नाश, राज कोप, व्यसनों में आसक्ति, पेट विकार, गर्भपात, सन्तति विवाह में बाधा, भवन का विकृत होना आदि फल होते हैं।

5. ईशान कोण में भण्डार कक्ष का बनाना– गृहस्वामी को मानसिक तनाव, पुत्र प्राप्ति में बाधा, कन्यायों की अधिकता, पढ़ाई में रुकावट, धन नाश, व्यापार में असफलता, गरीबी, गृहस्वामी दुखी, निंदा पात्र, प्रगति में रुकावट, तामसी प्रवृत्ति, बलहीन, लोभी आदि समस्याएँ होती हैं।

6. ईशान कोण में अध्ययन कक्ष– वास्तुशास्त्र के अनुसार जल तत्व का संबंध मन, विचार, भावनाओं तथा ध्यान की एकाग्रता से माना जाता है। भवन के ईशान में जल का वास मान जाता है। कुआ, हैण्ड पम्प, स्नानघर जल तत्व के स्थान हैं। भवन के भीतर या बाहर इनकी स्थिति के फलाफलों का प्रभाव शिक्षा पर भी पड़ता है। जिस भवन के ईशान कोण में अध्ययन कक्ष हो, बच्चे परीक्षा में अच्छी सफलता प्राप्त करते हैं। विद्याध्ययन सुचारू रूप से निर्विघ्न चलता है। ध्यान एकाग्र करने में कठिनाई नहीं होती। यदि जन्मकुण्डली में शिक्षा प्राप्ति में बाधा अथवा अपूर्ण

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

रहने का भी योग हो तो भी इन दुष्फलों की तीव्रता में कमी आती है।

7. ईशान कोण में शयन कक्ष– विवाहित युगल का रहना अच्छा नहीं, पति पत्नी में मनोमालिन्य, किसी एक का स्वास्थ्य खराब रहना जैसे परिणाम मिलते हैं। यहाँ 15 वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिए शयन कक्ष उपयुक्त होता है। वे सवस्थ एवं अध्ययनरत रहते हैं। परीक्षा में अच्छा प्रदर्शन करते हैं। गृहस्वामी के लिए यहाँ शयन कक्ष क्लेह, आर्थिक समस्याएँ, पुत्र प्राप्ति में विलम्ब एवं बाधा, व्यापार में असफलता, मानसिक चिन्ताएँ व सास बहु में झगड़ा पैदा करता है।

8. ईशान कोण में शौचालय– जिस भवन के ईशान कोण में शौचालय स्थित होता है, उस भवन के निवासियों को अति चिन्ता, कष्ट, दुःख, अल्पायु, मित्रों का अभाव, पैतृक धन सम्पदा का नाश, दारिद्रय, धन हानि, नीच संगति, मानसिक रोग, दूषित तथा कुत्सित विचार शत्रु पीड़ा, परिवार के किसी सदस्य विशेषकर पुत्र की अकाल मृत्यु या आत्मघात, विद्या प्राप्ति में बाधा, शिक्षा पूर्ण न होना, गुणहीनता जैसे फल मिलते हैं। दूसरों की निन्दा, परछिद्रान्वेषण, मूर्खता, आलस्य, पाप प्रवृत्ति, पुत्र का न होना, एक ही पुत्र का होना वह भी उदण्ड, अयोग्य, कुमार्गगामी, मलिन-दुर्बुद्धि, दुश्चरित्र जैसे फल मिलते हैं।

9. ईशान कोण में पूजास्थल– पूजाघर के लिए सबसे उपयुक्त स्थल ईशान कोण है। गृहस्वामी एवं उसके पुत्र सच्चरित्र, विचारवान तीक्ष्ण बुद्धि वाले, प्रतिभाशाली, सुखी, भावुक, यशस्वी, धर्म अनुरागी, दयालु, अच्छे वक्ता, विद्यावान, सतकर्मी, सदगुणी, सदाचारी, पितृ भक्त होते हैं। इन्हें राजकृपा, प्रतिष्ठा, उन्नति के अवसर, धन लाभ, प्रभु सहायता, बन्धु-बाधव सुख, व्यापार में सफलता, शत्रुओं से भी सेवित होते हैं। इनको पुत्र कष्ट व उनकी अयोग्यता, दुश्चरित्रता का सामना नहीं करना पड़ता।

व्यक्तिगत भवनों का निरीक्षण (Survey)

इस लघु शोध के अन्तर्गत दस आवासीय भवनों का निरीक्षण किया गया, सभी भवनों में गृहस्वामी स्वयं रहते हैं। सभी गृह आयताकार एवं विदिशामुखी हैं। जिनके नक्शे व विभिन्न कक्षों की व्यवस्था का विवरण दो तालिकाओं में दिया गया है।

निष्कर्ष इस प्रकार है–

1.	निरीक्षित भवनों की संख्या	01	02	03	04	05
2.	गृह स्वामी का नाम एवं पता	धरमवीर बी. 318 प्रशात विहार	टी.सी.गुप्ता 7/डी-11/111 रोहणी	सुरेश गोयल 5/ए-3/26 रोहणी	एल.एल.अग्रवाल 7/एफ.26/18 रोहणी	नरेन्दर 3/डी-14/132 रोहणी

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

३. कितने वर्षों से	२०	१८	१९	१९	१६
४. भूखण्ड का क्षेत्रफल	१००	२६	६०	१२३	३२
५. भूखण्ड की दिशा	वायव्य	नैर्ऋत्य	आग्नेय	नैर्ऋत्य	ईशान
६. पूर्व में	शयन कक्ष शौचालय एवं बाथरूम	शौचालय	ड्रॉइग रूम	मुख्य शयन कक्ष	खुला + लीविंग रूम
७. पश्चिम में	गेस्ट रूम	शयन कक्ष	शयन कक्ष	डॉइग रूम	खुला
८. दक्षिण में	चौक	लिविग रूम	सिढ़ियाँ	सिढ़ियाँ/स्टोर	शौचालय एवं बाथरूम
९. उत्तर में	सिढ़ियाँ	रसोई घर	शयन कक्ष	अध्ययन कक्ष	सीढ़ियाँ
१०. अग्नि कोण में	बच्चों का शयन कक्ष	स्टोर	ड्रॉइग रूम	खुला/शौचालय बॉथरूम	ड्रांइग रूम स्टोर
११. ईशान कोण में	ड्रॉइग रूम	सीढ़ियाँ	शौचालय बाथरूम	शयन कक्ष	लिविग रूम
१२. वायाय कोण में	लिविंग रूम	ड्राईगं रूम	शयन कक्ष	रसोई घर लिविगं रूम	लिविंग रूम रसोई घर
१३. नैऋत्य कोण में	रसोइ घर मुख्य शयन कक्ष	शयन	रसोई घर	खुला ड्राँईग रूम	चौक

आवासीय गृह निरीक्षण (survey) तालिका-2

1. निरीक्षित भवनों की संख्या	06	07	08	09	10
2. गृह स्वामी का नाम एवं पता	शिव कुमार 3/डी-14/133 रोहणी	सतीश 2/pk÷-ö/ÿúý रोहणी	ओम-प्रकाश B-üúÿ प्रशांत विहार	एल.एल.अग्रवाल B-û÷ú प्रशांत विहार	नरेन्दर B-ýúú प्रशांत विहार
३. कितने वर्षों से रह रहे हैं।	१९	१७	२०	१९	१६
४. भूखण्ड का क्षेत्रफल	३२	४५ - Flat	७०	८०	१००
५. भूखण्ड की दिशा	वा.	वा.	आ.	वा.	आ.
६. पूर्व में है।	शौचालय एवं बाथरूम	लिविंग	सिढ़ियॉ	गयन कक्ष शौचाल बाथरूम	सिढ़ियाँ

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

७. पश्चिम में है।	सिढ़ियाँ	बॉभरूम	शोंचालय बाथरूम	डॉइग रूम	शयन कक्ष
८. दक्षिण में है।	खुला	रसोई घर	लिविंग रूम	चौक	लिविंग रूम
९. उत्तर में है।	लिविंग रूम	लिविंग रूम	खुला	गेस्ट रूम	खुला
१०. अग्नि कोण में है।	खुला	शयन कक्ष	लिविंग रूम	रसोई घर लिविंग रूम	बराम्दा
११. ईशान कोण में है।	रसोई घर लिविंग रूम	लिविंग रूम	रसोई घर लिविंग रूम	लिविंग रूम सीढ़ियाँ	शौचालय एवं बाथ रूम
१२. वायाय कोण में है।	डॉईग रूम	लिविंग रूम	खुला	लिविंग रूप	शयन कक्ष खुला
१३. नैऋत्य कोण में है।	शयन कक्ष स्टोर	रसोई घर बॉथरूम	लिविंग रूम शयन कक्ष	ड्राईग रूम	रसोई घर

1. पहले निवास में ईशान कोण में– ड्राईग रूम है, जहाँ अध्ययन भी घर के सदस्य करते थे। परिवार में स्वास्थ्य खराब संबंधी समस्यायें, बच्चों की पढ़ाई में रुकावट, सर्विस पदोन्नति हेतु न्यायालय में जाना आदि अशुभ फल देखने को मिले, ये बाकी व्यवस्थाएँ वास्तु विरुद्ध होने से हो सकती है।

2. दूसरे निवास में ईशान कोण में सिढ़ियां हैं– गृहस्वामी को हृदयघात हुआ, पत्नी अस्वस्थ रहती है। गृहस्वामी के संबंधी ने साथ, विश्वासघात किया। निर्माण शास्त्र सम्मत नहीं है।

3. तीसरे घर में ईशान कोण में शौचालय व बाथ रूम है– गृहस्वामिनी का Heart valve का operation हुआ, सास की बीमारी में अत्यधिक व्यय से ग्रसित रहें। निर्माणशास्त्र सम्मत नहीं है।

4. चौथे घर में ईशान में खाली है, लेकिन मुख्य शयनकक्ष का भी कुछ हिस्सा घेरता है। पत्नी अस्वस्थ रहती है। गृहस्वामी को मानसिक चिन्ता, व्यवसाय में हानि, बच्चों की पढ़ाई पूर्ण व अच्छी रही/निर्माण शास्त्र सम्मत नहीं है।

5. पाँचवे घर में ईशान कोण में लिविंग रूम था– पुत्र की पढ़ाई में रुकावट, पत्नी का स्वभाव अहंकारी पुत्र को मानसिक विकार है। यह अन्य शास्त्र विरुद्ध विन्यास का भी प्रभाव हो सकता है।

6. छटे घर में ईशान कोण में Kitchen+Living Room है– पत्नी को Breast Cancer operation हुआ तथा पैर के Fracture से ग्रस्त रही निर्माण शास्त्र सम्मत नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

7. सातवे घर में ईशान कोण में लिविंग रूम है– घर में सामान्य स्थिति है, मानसिक चिंता गृहस्वामी को जरूर थोड़ी है। एक लड़के ने 'C.A.' किया दूसरे ने M.B.A. अच्छी नौकरी में है।

8. आठवे घर में ईशान कोण में किचन +लिविंगरूम +पूजा घर है– चार धाम यात्रा, पुत्री, पुत्रवधु, दामाद को सरकारी नौकरी, सामान्य स्थिति है। गृहस्वामी को 2006 में हृदयघात हुआ। अब ठीक हैं।

9. नौवे घर में ईशान कोण में लिविंगरूम, सीढ़ियाँ, पूजा घर है– इसके घर में दो लड़कियाँ तथा एक पुत्र का जन्म हुआ, बच्चों के विवाह सम्पन्न हुए, नौकरी में पदोन्नति मिली, गृहस्वामी को असाध्य बीमारी है।

10. दसवें घर में ईशान कोण में शौचालय व मुख्य शयन कक्ष है– बच्चे का विवाह सम्पन्न, पौते का जन्म, गृहस्वामी को सामान्य बिमारी, पत्नी गम्भीर व लम्बी बीमारी से ग्रसित

इस प्रकार वास्तु विरुद्ध तथा वास्तु अनुरूप निर्माण से शुभाशुभ फल देखने में आए हैं।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

आग्नेय कोण का महत्त्व

—धर्मवीर

वास्तुशास्त्र के अध्ययन का सर्वाधिक बल इस बिन्दु पर है कि व्यक्ति अपनी प्रगति व उन्नति हेतु अपने निवास गृह में पृथ्वी, जल, तेज, वायु व आकाश का उचित रूप में सर्वश्रेष्ठ उपयोग कैसे करे ताकि पंच महाभूतों से बने आवास में पाँच भौतिक तत्वों वाले प्राणी की क्षमताओं को विकसित करने की शक्ति स्वयं सक्रिय हो सके। इसी प्रकार वास्तुशास्त्र में मनुष्य की सफलता, प्रगति, सन्तुष्टि एवं कल्याण हेतु तीन प्राकृतिक शक्तियों एवं ऊर्जाओं का प्रयोग सर्वोचित ढंग से करने पर बल दिया जाता हैं, ये तीन शक्तियाँ–(1) गुरुत्व शक्ति, (2) चुम्बकीय शक्ति, (3) सौर ऊर्जा। सौर ऊर्जा का प्रवाह पूर्व से पश्चिम की ओर होता है। इसी प्रकार चुम्बकीय ऊर्जा का प्रवाह उत्तर से दक्षिण की ओर होता है। इन उपरोक्त पंच महाभूतों के प्रयोग तथा प्राकृतिक शक्तिओं के प्रयोग का एक ऐसा आदर्श सम्मिश्रित उपयोग वास्तु निर्माण में किया जा सके जिससे मनुष्य मात्र का सर्वाधिक कल्याण हो सके, इसके लिये दिक् (दिशा) ज्ञान की विधियों को जानना तथा इनका उपयोग मनुष्य कल्याण की दृष्टि से करना, भी अन्य प्रविधियों एवं अवधारणाओं के साथ-साथ, अति महत्त्वपूर्ण है। इसी में, वास्तुशास्त्र के अध्ययन व प्रयोग हेतु, दिशा के ज्ञान का महत्त्व निहित है।

दिशाओं के भेद

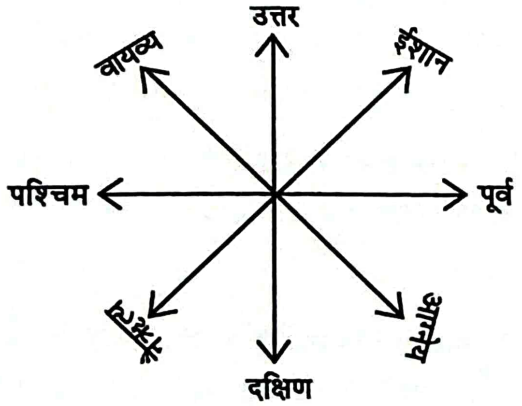

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

दिशा ज्ञान

वास्तु शास्त्र को समझने, अध्ययन करने, व्यवहारिक जीवन में प्रयोग करने तथा इससे शुभत्व की प्राप्ति करने हेतु सर्वप्रथम दिशाओं का गहन ज्ञान होना आवश्यक है। जब हम **पूर्व** दिशा की ओर मुख करते हैं तो हमारे बाईं ओर **उत्तर**, दाहिनी ओर **दक्षिण** तथा पीठ पीछे **पश्चिम** दिशा होती है।

जहाँ दो दिशाओं का मिलन होता है वह कोण कहलाता है। दो दिशाओं शक्तिओं/उर्जाओं का पर सम्मिश्रण होने के कारण कोण महत्त्वपूर्ण हो जाता है। ये कोण भी दिशाओं के मध्य में होने के कारण चार होते हैं जैसे–

(क) ईशान कोण – उत्तर और पूर्व दिशा के मध्य का स्थान।

(ख) आग्नेय कोण – पूर्व और दक्षिण दिशा के मध्य का स्थान।

(ग) नैर्ऋत्य कोण – दक्षिण और पश्चिम दिशा के बीच का स्थान।

(घ) वायव्य कोण – पश्चिम और उत्तर दिशा के बीच का स्थान।

मध्य स्थान या बीच का स्थान **ब्रह्मस्थान** कहलाता है।

भूखण्ड पर दिशाएँ

वायव्य (उत्तर-पश्चिम)	उत्तर	ईशान (उत्तर-पूर्व)
पश्चिम	ब्रह्म स्थान (खुला स्थान)	पूर्व
नैर्ऋत्य (दक्षिण-पश्चिम)	दक्षिण	आग्नेय (दक्षिण-पूर्व)

विभिन्न दिशाओं तथा कोणों का संक्षिप्त परिचयात्मक विवरण–

(i) **पूर्व दिशा** – गृहों में राजा, पिता के प्रतिनिधि, आत्माकारक, तथा सृष्टि प्रकाश व ऊर्जा पुंज सूर्य इस पूर्व दिशा से उदय होते हैं। पूर्व दिशा के देवता इन्द्र हैं। मकान में पूर्व दिशा में खुला स्थान रखना, गृह स्वामी/परिवार के मुखिया की दीर्घ आयु को दर्शाता है।

(ii) **दक्षिण दिशा** – यम दक्षिण दिशा के अधिष्ठित देव हैं। ज्योतिष के अनुसार मंगल ग्रह दक्षिण दिशा के स्वामी हैं। दक्षिण दिशा में वास्तुशास्त्र सम्मत निर्माण से समृद्धि-सुख सम्पन्नता की प्राप्ति होती है।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

(iii) **पश्चिम दिशा** – पश्चिम दिशा के देवता वरुण हैं। शनि ग्रह पश्चिम दिशा के स्वामी हैं। इस दिशा में वास्तु सम्मत निर्माण ख्याति, भाग्य व प्रसिद्धि देने वाला होता है।

(iv) **उत्तर दिशा** – धन-धान्य, समृद्धिदायक कुबेर उत्तर दिशा के अधिष्ठित देवता हैं। बुध ग्रह उत्तर दिशा के स्वामी हैं। उत्तर दिशा में खाली स्थान व कच्ची भूमि छोड़ना समृद्धि व धनदायक होता है।

(v) **ईशान कोण** – पूर्व व उत्तर दिशा के मिलन स्थान को ईशान कोण की संज्ञा दी गई है। ईश/शिखी इस स्थान के देवता है। इस स्थान को भगवान शिव और जल का स्थान भी माना गया है। ईशान में हमेशा सफाई, स्वच्छता शुद्धता रखनी चाहिए। इस स्थान पर कूआँ बोरिंग जैसे जलीय स्रोत तथा पूजा स्थान की व्यवस्था सर्वश्रेष्ठ शुभ फल देने वाली होती है। यहाँ गन्दगी, कूड़ा करकट, स्टोर शौचालय बिल्कुल नहीं बनाना चाहिए।

(vi) **आग्नेय कोण** – दक्षिण और पूर्व के मध्य का कोण आग्नेय कोण कहलाता है। यह अग्नि देवता का स्थान होता है। यह रसोई, अग्नि सम्बन्धी इलैक्ट्रोनिक उपकरणों के लिए सर्वोचित स्थान है। शुक्र ग्रह इस दिशा के स्वामी हैं। आग्नेय कोण में वास्तुशास्त्रानुरूप व्यवस्था होना परिवारिक सदस्यों के स्वास्थ्य के लिए अति उत्तम होता है।

(vii) **नैर्ऋत्य कोण** – दक्षिण व पश्चिम दिशा के बीच के स्थान को नैऋत्य कोण के नाम से जाना जाता है। इस दिशा का आधिपत्य निर्ऋति/पूतना का है। ज्योतिष के अनुसार इस स्थान के स्वामी राहु और केतु हैं। पृथ्वी इस क्षेत्र का मुख्य तत्व है। अतः इस स्थान को ऊँचा तथा भारी होना चाहिए। यह कोण समकोण होना चाहिए। इस स्थान पर गड्ढे, बोरिंग, कुएँ इत्यादि का निर्माण अशुभ फलदायक होते हैं।

(viii) **वायव्य कोण** – उत्तर और पश्चिमदिशा के मध्य के कोणीय स्थान वायव्य कोण कहा जाता है। इस स्थान पर रोग का आधिपत्य है। वायु इस स्थान का प्रमुख तत्व है। इस स्थान पर निर्मित उचित-अनुचित/व्यवस्था का प्रभाव संबंधियों, मित्रों, पड़ोसियों से अच्छे-बुरे संबंधों का कारण बनता है। वास्तुशास्त्र सम्मत उपयोग से इस कोण को शुभ परिणामदायक बनाया जा सकता है।

कोणीय दिशाओं का विस्तृत वर्गीकरण–

सभी कोणीय दिशाएँ दो दिशाओं के लंबीय कोण पर आधारित हैं। अतः गहन व विस्तृत अध्ययन के लिए प्रत्येक कोणीय दिशा को पुनः दो भागों में वर्गीकृत किया जाता है। यथा–

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

वायव्य	उत्तरी वायव्य	उत्तर	उत्तरी ईशान	ईशान
पश्चिमी वायव्य				पूर्वी ईशान
पश्चिम		ब्रह्म स्थान		पूर्व
पश्चिमी नैऋत्य				पूर्वी आग्नेय
नैऋत्य	दक्षिणी नैऋत्य	दक्षिण	दक्षिणी आग्नेय	आग्नेय

दिशा निर्धारण विधियाँ–

पंचमहाभूतों के साथ-साथ तीनों प्राकृतिक ऊर्जाओं (गुरुत्व, चुम्बकीय एवं सौर ऊर्जाओं/शक्तियों) के सामंजस्य व संतुलन पर ही वास्तुशास्त्र आधारित है। इन ऊर्जाओं के प्रवाह की विशेष दिशा होती है। वास्तु सम्बन्धी कोई भी कार्य करने से पूर्व सम्बन्धित भूखण्ड व भवन के संदर्भ में दिशा निर्धारण अति आवश्यक है। दिशा निर्धारण की निम्नलिखित विधियाँ हैं–

1. सूर्योदय आधारित विधि– इस विधि में सूर्य के उदय होने की दिशा से दिशा निर्धारण किया जाता है। सूर्योदय की दिशा की ओर मुख करके खड़े होने से बांई ओर उत्तर, दांयी ओर दक्षिण तथा पीठ पश्चिम पीछे दिशा होती है। सूर्योदय की दिशा पूर्व होती है। लेकिन इस विधि में सटीकता नहीं होती है क्योंकि सूर्य सही पूर्वीय दिशा से केवल सितम्बर 23 और मार्च 21 को ही उदय होता है और इन दिनों में दिन और रात की अवधि बराबर होती है।

2. शंकु स्थापन विधि– प्राचीन काल में यह विधि दिशा निर्धारण के लिए अपनाई जाती रही है। इसमें 12 अँगुल लम्बा एक शंकु भूखण्ड के मध्य में स्थापन कर दिन के अलग-अलग प्रहरों में उसकी छाया के अनुसार दिक् साधन किया जाता था। यह विधि भी सूर्य पर आधारित है।

3. सप्तऋषि/ध्रुवतारा विधि– इस विधि में सप्तऋषि तारों अथवा ध्रुव तारे की आकाश में स्थित से दिशा साधन किया जाता है। ध्रुव तारे की स्थिति से उत्तर दिशा निर्धारित कर अन्य दिशाओं का निर्धारण किया जाता है। इससे रात्रि में एवं बादलों के होने पर कठिनाई होती है।

4. दिशा सूचक यंत्र/कम्पास विधि– आधुनिक समय में दिशा निर्धारण के लिए कम्पास (दिशा सूचक यंत्र) का प्रयोग प्रचलन में आ रहा है। आजकल कम्पास आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। चौबीस घंटे, चाहे दिन हो या रात, इस दिशा सूचक यंत्र (compas) से दिशा

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

निर्धारण किया जा सकता है। सामान्यतः अधिकतर दो प्रकार के कम्पास उपलब्ध हैं–

(i) पीवोटल निडल (Pivotal Needle) कम्पास– यह अधिक प्रचलन में है। इसमें सुई सदा उत्तर दिशा की ओर संकेत करती है। इसे प्रयोग करने हेतु इस कम्पास को भूखण्ड, आवास अथवा कार्य स्थल के मध्य में स्थित करते हैं। तथा सुई के स्थिर होने के बाद कम्पास को धीरे-धीरे घुमाते सूई को 'N' उत्तर दिशा पर स्थिर करते दिशाओं का ज्ञान हो जाता है।

(ii) फ्लोटिंग डिस्क (Floating Disc) कम्पास– इस कम्पास को भी भूखण्ड, आवास अथवा कार्य स्थल के मध्य स्थित किया जाता है। स्थिर होने पर यह स्वयं दिशाओं का निर्धारण कर देती है। जहाँ हाई टैंशन वायर (High Tension Wires) होते हैं वहाँ कम्पास कार्य नहीं कर पाता है।

अग्निकोणीय निर्माण –

वास्तुशास्त्र में इस कोण को अत्यधिक पवित्र कोण माना गया है जो न्यायसंत भी है, क्योंकि अग्नि में तपकर ही कोई वस्तु या पदार्थ परिशुद्धता को प्राप्त करता है। इसी कारण से गृह निर्माण के समय अग्नि कोण में ही पाकशाला/रसोई घर की व्यवस्था सुनिश्चित करने पर वास्तुशास्त्र सर्वाधिक बल देता है। यहाँ पाकशाला होने से गृह स्वामी प्रतिदिन हवन-यज्ञ का प्रतिभागी सिद्ध होता रहता है। भोजन-सामग्री अग्नि में पककर देवता प्रसाद हो जाती है और इसे ग्रहण करने से मनुष्य की समस्त व्यावहारिक क्रियाएँ शुद्ध होने लगती हैं। जैसा कि उपनिषद में कहा गया है–**आहारशुद्धिः व्यवहारशुद्धिः। व्यवहारशुद्धिः सत्यशुद्धिः।।** आग्नये कोण का सम्बन्ध व्यय, स्वास्थ्य, मुकदमे बाजी कलह, आकस्मिक धनहानि, यकृत, पाँव का तलवा, नेत्र, ऋण, द्वितीय पुत्र से है। बृहत्संहिता, नारदसंहिता, वास्तुराजवल्लभ जैसे सर्वमान्य मानक ग्रथों के अनुसार–सोलह कक्षीय आवासीय भवन में आग्नेय कोण में रसोई घर, आग्नेय एवं पूर्व के मध्य में दधि विलोडन कक्ष तथा आग्नेय एवं दक्षिण के मध्य में घी तेल संग्रह कक्ष बनाना वास्तुसम्मत हैं–तत्कालीन समाज के कुलीन तथा अभिजात्य वर्ग को दृष्टि में रखकर भवन में कक्ष निर्माण का प्रतिपादन वास्तुशास्त्र के ग्रंथों में किया गया है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक के मानव जीवन के इतिहास के विकास में न केवल समय का अन्तर आया है, बल्कि इस अन्तराल में परिस्थितियों में, सामाजिक व आर्थिक मूल्यों में, पारिवारिक व्यवस्थाओं में, जनसंख्या के आकार में, जनसंख्या के गाँव, देहात, नगर में फैलाव तथा घनत्व में, रोजी-रोटी/रोजगार/कारोबार की पसन्द की सोच में, भवन निर्माण की तकनीक के विकास में, मानव द्वारा प्रयोग की जाने वाले सुख-सुविधा के घरेलू व कारोबार उपकरणों के विकास व आविष्कार में, जीवन स्तर व हैसियत के पैमानों में, विनिमय के/लेन-देन के माध्यमों में, जीवन-शैली इत्यादि में अकल्पनीय जमीन-आसमान के पर्याप्त अन्तर आए हैं। परिणामस्वरूप आज वास्तु ग्रंथों के अनुसार 16 कक्षों का निर्माण न तो आवश्यक है और न ही इसकी उपयोगिता है। इस संदर्भ में मुख्य बात यह है कि अन्य शास्त्रों की भाँति वास्तुशास्त्र ने भी देश, काल व परिस्थितियों के साथ अपने नियमों व सिद्धान्तों में

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

परिवर्तन का लचीलापन सदैव बनाए रखा है। लेकिन वास्तुशास्त्र की आत्मा अर्थात् मूल संकल्पना आज भी ज्यों की त्यों है।

आग्नेय कोण में संभव वास्तुसम्मत कक्ष/व्यवस्थाएँ/क्रियाकलाप

पूर्व व आग्नेय के मध्य में	आग्नेय कोण में	आग्नेय एवं दक्षिण के मध्य में
1. मंथन कक्ष	1. रसोई घर,	1. घी-तेल भण्डार,
2. रसोई घर	2. द्वार,	2. सामान्य स्टोर,
3. सीढ़ियाँ	3. आफिस,	3. शयन कक्ष
4. शौचालय	4. लिविंग रूम,	4. ड्राइनिंग रूम
5. स्नानागार	5. ड्राइंग रूम,	5. ड्राइंग रूम
6. बायलर	6. पोर्टिको,	6. सीढ़ियाँ
7. जैनरेटर/ईनवर्टर	7. अतिथि कक्ष,	7. द्वार
8. मैन स्विच बोर्ड, एवं	8. बैसमैट, तथा	8. शौचालय, व
9. अतिथि गृह।	9. खुला लान।	9. पेइंग गैस्ट रूम।

अतः वास्तु ग्रंथों में प्रतिपादित भवन में कक्षों का निर्माण एक निर्देशनमात्र है। परिणामस्वरूप यह प्रत्येक दिशा की प्रकृति, स्वभाव एवं गुण धर्मों का अधिकतम उपयोग करने के लिए उस दिशा में समान प्रकृति के क्रिया-कलाप/गतिविधियों/व्यवस्थाओं को संचालित करने का निर्देश देकर उसका अधिकतम व कल्याणकारी उपयोग करने का मार्गदर्शन करता है। इसलिए पूर्वोक्त वास्तविकताओं के दृष्टिगत आज के आधुनिक/वर्तमान संदर्भ में आग्नेय कोण में, पूर्व और आग्नेय के मध्य में तथा आग्नेय एवं दक्षिण के मध्य में इन दिशाओं की प्रकृति/स्वभाव व गुण धर्मों के आधार पर वास्तुशास्त्र की मूल संकल्पना के अनुरूप क्या-क्या बनाया जा सकता है यह दिखाया है।

आग्नेय कोण में विभिन्न दोष/विशिष्ट परिस्थितियों के होने के शुभाशुभ फल–

आग्नेय कोण के कटे-फटे, टेढ़े-मेढ़े होने पर– स्वामी के द्वितीय पुत्र प्रभावित, धन अपव्यय, स्वास्थ्य नाश, व्यवसाय हानि, यकृत सम्बन्धी रोग, ऋणग्रस्तता, नेत्र सम्बन्धी विकृतियाँ, गृह स्वामिनी को कष्ट जैसे अशुभ फल होते हैं।

आग्नेय कोण के आगे निकले/बढ़े होने पर– रोग, अकारण वाद-विवाद, मुकदमे बाजी, अग्निभय तथा कलह जैसे अशुभ फल होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

आग्नेय कोण का पूर्वी भाग आगे निकला हुआ/बढ़ा होने पर– गृहस्वामी की अधिक कन्या सन्तति, अयोग्य पुत्र, कंजूस स्वामी, द्वितीय पुत्र की अकाल मृत्यु, गृहस्वामी को रोग व अन्य सदस्यों को यकृत-संकुचन रोग, कालान्तर में पुत्र के अभाव में भवन कन्याओं को प्राप्त होने से जैसे अशुभ फल प्राप्त होते हैं।

आग्नेय कोण का दक्षिणी भाग बाहर निकला होने/बढ़ा होने पर– पुत्र, यश, धन प्राप्ति, किन्तु कभी धनागम एकदम रुकना/बन्दा होना, पुरुषों का स्वास्थ्य खराब, कलह के अवसर, प्रायः अशान्ति, बच्चों की शिक्षा कुप्रभावित विशेषतः द्वितीय पुत्र प्रभावित, धनक्षय, दारिद्र्य तथा ऋण की निरन्तरता, व्यवसाय हानि की निरंतरता, आय कम, व्यय अधिक होने से धन संग्रह न होना, अकल्पित धन हानि व व्यय, चोरी का भय आदि जैसे शुभाशुभ फल होते हैं।

भवन के पूर्व आग्नेय पर मार्गबेध होने पर– भवन निवासी पुरुषों में चारित्रिक दोष की संभावना, गृह स्वामिनी का प्रभावशाली बनना, जैसे फल/परिणाम प्राप्त होते हैं।

आग्नेय कोण के नीचा होने/ढालदार होने पर– आय से अधिक व्यय, धन नाश, ऋण, दारिद्र्य, रोग, मुकदमेबाजी, आकस्मिक विपत्ति, कन्याओं की अधिकता, पुरुष सदस्य के अपंग होने का भय आदि जैसे दुष्फल प्राप्त होते हैं।

आग्नेय कोण क्षेत्र को ऊँचा रखने/विशेषतः आग्नेय कोण को पूर्व तथा ईशान कोण की अपेक्षा ऊँचा रखने पर– अर्थ लाभ, व्यवसाय में लाभ एवं प्रगति, उत्तम स्वास्थ्य, ऐश्वर्य, सम्पदा, सुख भोग जैसे श्रेष्ठ व शुभ फल एवं परिणामों की प्राप्ति होती है।

भवन के पूर्व आग्नेय में या दक्षिण आग्नेय में बने चबूतरे का पूर्व से एवं उत्तर के चबूतरे, तथा भवन के आंगन से ऊँचा होने पर– धन, ऐश्वर्य संपदा, मानसिक शान्ति जैसे शुभ फलदायी परिणाम प्राप्त होते हैं।

आग्नेय कोण में रसोईघर/पाकशाला– सभी मूल ग्रंथों में सहमति है कि इस क्षेत्र में पाकशाला/रसोईघर धनलाभ, व्यवसाय में लाभ, उत्तम स्वास्थ्य, पुत्र प्राप्ति, मानसिक शान्ति, उन्नति, सम्मान, निद्रा सुख, कार्य सिद्धि, विद्या लाभ, बुद्धिमता, राजसम्मान, पुत्र सुख, अरिष्ट नाश, शूरता, सुन्दरता, पराक्रमी स्वभाव, उत्तम भाग्य, सुशील व गुणी पत्नी, गृहस्वामी को ऋण मुकदमेबाजी दुर्घटनाओं, आकस्मिक धन हानि आकस्मिक विपत्ति, रोगों, दारिद्रय जैसे अरिष्टों से सुरक्षा/इनकी सम्भावनाओं को कम करने जैसे शुभ फल प्राप्त होते हैं।

आग्नेय कोण में भोजनालय– यहाँ भोजनालय होने पर व्यापार में लाभ, सुख दीर्घायु, मित्रों-भाइयों का सुख व सहयोग, राजकृपा, तथा विभिन्न अरिष्टों (जैसे–आकस्मिक हानि/दुर्घटना, पुत्र कष्ट, ऋण मुकदमे, शत्रुओं आदि) से सुरक्षा, आत्मपूज्य स्पष्टवक्ता गृहस्वामी, स्वस्थ, गुणवती, पतिप्रिय गृहस्वामिनी जैसे शुभ फल प्राप्त होते हैं। ऋण हो तो मृत्यु पूर्व ऋण से मुक्ति होती है। किन्तु धन संग्रह न होना, प्रकृति उग्र, स्वाधीन, पर द्रव्य का इच्छुक, द्विभार्या योग जैसे

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

अशुभ फल की भी संभावना होती है। यह मिश्रित फलदायक है।

आग्नेय कोण में भण्डार कक्ष– इसके शुभ व अशुभ दोनों प्रकार के फल होते हैं। इस क्षेत्र में भण्डार कक्ष होने से व्यवसाय ठीक चलाता है, दारिद्र्य, आकस्मिक हानि, दुर्घटना, राजकोप तथा विद्युत दंश से सुरक्षा, किसी विषय में प्रवीणता, विद्वता जैसे शुभ फल प्राप्त होते हैं। लेकिन गृहस्वामी कृतघ्न, अपने कार्य को छोड़ने वाला, शत्रुओं से परास्त होना, स्वजनों से वैर, स्वयं की हानि करने वाला, स्वघर में अप्रसन्न लेनिक बाहर प्रसन्न रहना, प्रथम सन्तान कन्या, गुप्त शत्रुओं द्वारा बाधा, गुप्त धन संचय, स्वयं यशस्वी हो तो पुत्र पौत्रों की अवनति, प्रथम सन्तान पुत्र हो तो उसकी मृत्यु होना, यदि जीवित रहे तो धन हानि जैसे अशुभ फल प्राप्त होते हैं। मृत्यु के बाद गृहस्वामी की कीर्ति रहती है।

आग्नेय कोण में सीढ़ियाँ होने के फल– भवन निवासियों में आलस्य धर्मभ्रष्टता, बुद्धिमता, वाकचातुर्य, दीनता, धनहानि, राजकोप निन्दा, शरीर में विकलता, व्यसन, अति व्यय, रोग पापी, अपमान, विजय, व्यवसाय हानि, दीर्घायु, दृढ़ निश्चयी, पागलपन, यदा बच्चों का सीढ़ियों से गिरकर चोट लगना जैसे शुभाशुभ परिणाम प्राप्त होते हैं।

आग्नेय कोण में स्नानागार कूप अथवा हैण्डपम्प होने का फल– गृहस्वामी परिवार सदस्यों का शत्रुभय, नेत्र विकार, धन नाश, मानसिक क्लेश, अपव्यय-अतिव्यय के कारण दारिद्र्य, मनोरथ सिद्ध न होना, क्रोधी स्वभाव, दूसरे के द्वेष का पात्र होना, व्यसनचित्त, कलह, व्यापार-हानि, अपमान, पति पत्नी में अकारण मतभेद, पराजय, अल्पवीर्य कलह, ऋण, आकस्मिक विपत्ति, पैतृक-सम्पत्ति नाश आलस्य, रोग जैसे अशुभ फल प्राप्त होते हैं।

आग्नेय कोण में अध्ययन कक्ष के फल– शिक्षा अधूरी, लेकिन बौद्धिक उर्वरता होती है। एकाग्रचितता में कठिनाई होती है। लेकिन प्रयत्नपूर्वक ध्यान केन्द्रित कर अध्ययन करने के काफी सकारात्मक परिणाम हो सकते हैं।

आग्नेय में शयन कक्ष होने के परिणाम– नवविवाहित युगल का यहाँ शयन कक्ष होने से अधिक योन सक्रियता के कारण पत्नी की स्वास्थ्यक्षीणता, दाम्पत्य जीवन ठीक-ठाक रहता है। गृहस्वामी का शयन कक्ष यहाँ होने पर यदि गृहस्वामिनी का स्वास्थ्य ठीक रहे तो धनागम नहीं होता। यदि स्वामिनी अस्वस्थ हो तो धनागम होता है। गृहस्वामी आलसी, सुखी, सुस्वादु, अधिक व्यय, चिन्तित गृह स्वामिनी लेकिन गृहस्वामी की उसमें अनुशक्ति, दम्भयुक्त असत्यवादी, धर्म में कम श्रद्धा, स्वजन विरोध द्वेषयुक्त, यदा-कदा ऋणग्रस्त लेकिन अन्ततोगत्वा ऋण मुक्त होने वाला, स्त्री-पुत्रों को सुख न देना जैसे शुभ-अशुभ परिणाम होते हैं।

आग्नेय कोण में शौचालय के फल– यहाँ शौचालय होने से, शत्रुओं पर विजय, दीर्घायु, कन्याओं की अधिकता, बहुत धनवान, परस्त्रीगामी, निरोग, चंचल चित्त, शील रहित, पुराने सम्पत्ति नष्ट करने वाला, पराक्रमी, राज सम्मान/कृपा सु युक्त, राजकोप रहित, धैर्यवान, व्यापार व कन्याओं

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

सम्बन्धित लम्बा खर्च, व्यापार लाभ, मुकदमों में व्यय, किसी लम्बी बीमारी, लकवा, कोमा आदिसे गृहस्वामिनी की मृत्यु से शुभाशुभ फल प्राप्त होते हैं।

आग्नेय कोण में पूजाघर/पूजास्थल होने के फल– यहाँ पूजा कक्ष रखने से गृहस्वामी धनवान, सत्कर्मी, दीर्घायु, आलसी अकुशलवाचक, पीड़ित, क्रोधी, अपमानित, धोखा देने वाला, धर्मभ्रष्ट, मित्र द्वेषी, नीचों का सेवक, गुरुजन द्वेषी, योग्य, दान न देने वाला, मदान्ध, लोभी, शत्रु पीड़ित, अल्पपुत्रता लेकिन पुत्र प्राप्ति, पत्नी सुख, लम्बा खर्च, द्वेष का पात्र, आकस्मिक धन हानि, पराजय दान से यश न मिलना, राजकोप, स्वजनों का विरोध, दाम्पत्य सुख में विकृति आदि जैसे शुभाशुभ फल प्राप्त होते हैं।

आवासीय भवन में आग्नेय कोण में अपेक्षित वास्तु सम्मत पाकशाला, घी–तेल भण्डार गृह जैसे कक्ष/व्यवस्थाएँ/क्रिया–कलापों के आग्नेय कोण के अलावा अन्य दिशाओं में स्थित होने के शुभाशुभ परिणाम/फल–

ईशान कोण में पाकशाला/रसोईघर होने पर कलह से मानसिक तनाव अशान्ति, परिवार सदस्यों में मनोमालिन्य, मतभेद, वाक्युद्ध जैसे अशुभ परिणाम होते हैं।

ईशान कोण में सामान्य भण्डार कक्ष होने से पुत्र प्राप्ति में विलम्ब, पुत्रों सम्बन्धि दुष्फल (लेकिन पुत्र प्राप्ति में बाधा नहीं), कलह, मानसिक तनाव, आर्थिक समस्याएँ, ऋण, व्यापार हानि, अल्प शिक्षित/अशिक्षित अयोग्य मन्दबुद्धि, मानसिक रोगी पुत्र, पुत्रों का अभाव, कन्याएँ अधिक, उच्च रक्त चाप की शिकायत जैसे अशुभ फल होते हैं।

पूर्व में रसोई घर (पाकशाला) होने से गृहस्वामी पुत्रवान, धनवान, सम्मानित, प्रतिष्ठित दीर्घायु, निरोगी, आलस्यहीन/स्फूर्तिमय, तेजस्वी, शत्रुविजयी, ऋणहीन, आत्मनिर्भर, प्रभावशाली, किन्तु स्वभावतः क्रोधी, अडियल, जिद्दि, गृहस्वामिनी के स्वास्थ की चिन्ता से चिन्तित, गृहस्वामी से पूर्व गृहस्वामिनी के शरीर त्याग की सम्भावना जैसे शुभाशुभ फल प्राप्त होते हैं।

पूर्व में सामान्य भण्डार कक्ष रखने से गृहस्वामी को व्यापार में हानि/कम लाभ/बाधाएँ, ज्येष्ठ पुत्र को रोग, उपेक्षा अपमान, अप्रभावी व्यक्तित्व, पदच्युति, स्थानान्तरण पदावनति, निलम्बन जैसे अशुभ फल संभावित होते हैं। भण्डार कक्ष का द्वार दक्षिणाभिमुखी होने पर इन अशुभ फलों की संभावना और बढ़ जाती है।

आवासभवन के दक्षिण में रसोई/पाकशाला रखने से गृहस्वामी को प्रतिकूल परिस्थितियों पर विजय, धन लाभ, व्यापार ठीक चलना, जैसे शुभ फल प्राप्त होते हैं। स्वास्थ्य की समस्यायें रहती हैं अतः गृहस्वामिनी को पूर्वाभिमुख भोजन बनाना चाहिए अन्यथा समस्याएँ अधिक उत्पन्न होती हैं।

दक्षिण में सामान्य भण्डार कक्ष होने से गृहस्वामी पुत्रवान, धनवान, व्यापार लाभ, उन्नतिशील, उत्साही, ऊर्जावान, स्वस्थ, बुद्धिमान, पराक्रमी, यशस्वी, शत्रुविजयी, वाक्पटु, जैसे शुभ

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

फल प्राप्त होते हैं। लेकिन भवन का मुख्य द्वार ठीक स्थित न हो तो अशुभ फल भी होत हैं। जैसे असन्तुष्ट व आत्महत्या तक प्रवृत्त हो सकता है।

नैर्ऋत्य कोण में पाकशाला (रसोईघर) रखने से गृहस्वामिनी को रक्ताल्पता, सिरदर्द, चक्कर आना, शरीर में भारीपन एवं आलस्य जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।

नैर्ऋत्य में सामान्य भण्डार कक्ष होने से गृहस्वामी पुत्रवान, धनवान, भाग्यवान, प्रभावशाली सम्मानित, सफल, बुद्धिमान, राज कृपा पात्र, प्रभावशाली, दीर्घायु होने के शुभ फल प्राप्त होते हैं। लेकिन परद्रव्य इच्छुक, क्रोधी, व्यसनासक्त हो तो अस्थिर धनागम, धननाश, रोग, दारिद्रय जैसे कष्ट होते हैं।

पश्चिम में पाकशाला होने पर दृष्टिदोष, राजकृपा, मानसिक अशान्ति, पैतृक, स्वअर्जित सम्पत्ति का नाश अनुचित निर्णय, वाचाल, साहित्य में रुचि, निरुत्साही, सफलता पुत्र प्राप्ति में विलम्ब, पुत्रहीनता, अल्पपुत्रत्व परोपकारी, साहसी, संयमी, धन संग्रह न होना, संग्रहित धन का टिक न पाना जैसे शुभाशुभ फल प्राप्त होते हैं। पाकशाला द्वार पश्चिमाभिमुख हो तो ऋण पैतृक सम्पत्ति नाश आदि भी संभव है।

पश्चिम में सामान्य भण्डार कक्ष होने से गृहस्वामी धनवान सम्मानित, प्रतिष्ठित, दीर्घायु, आकस्मिक समस्याओं से सुरक्षा, बुद्धिमान, जननायक, विजयी, क्रूर, कंजूस, देवी कोप की सम्भावना, व्यवसाय परिवर्तन, अस्थिरता, पुत्रवान लेकिन पुत्र सुख से वंचित, परोपकार में रत जैसे शुभाशुभ फल मिलते हैं।

वायव्य कोण में पाकशाला रहने पर खर्चाधिक्य आर्थिक समस्याएँ, प्राय आगुन्तकों का आना-खाना पीना, वाद-विवाद, अल्प शिक्षा रक्त विकार, ऋण ग्रस्तता, आदि फल होते हैं। लेकिन अन्य रचनात्मक सकारात्मक निर्माण अपव्यय को छोड़कर अन्य उपरोक्त दुष्फलों में कमी कर संतुलन प्रदान करते हैं।

वायव्य कोण में सामान्य भण्डार गृह होने से गृहस्वामी धनवान, राजकोप से निर्धन, मिलन सारिता का अभाव न्यायप्रियता, असत्यवादिता, विद्वान, व्ययशील, ऋणगस्तता जैसे शुभ-अशुभ दोनों प्रकार के फल प्राप्त होते हैं।

उत्तर में पाकशाला (रसोई कक्ष) रखने से– धन नाश, ऋण, व्यापर में हानि, पुत्र हानि। अल्प पुत्रत्व, तेजस्विता न्यायप्रियता, मित्रों से सहयोग, अधिक शत्रु, शत्रुओं पर विजय, राजाकाय का अभाव, स्त्री में आसक्ति, मूत्र-कच्छ/गण्डमाला जैसे रोग, पत्नी को गर्भाशय, कटि रोग, अधिक खर्चीलापन, व्यभिचारी प्रवृत्ति, शंकालु जैसे शुभाशुभ परिणाम होते हैं। पश्चिम की मुख कर भोजन बनाने से ऋणग्रस्त होकर भवन बेचना तक पड़ सकता है।

उत्तर में सामान्य भण्डार कक्ष रखने से गृहस्वामी धनवान शनैः शनैः धनागम, पुत्रवान, यशस्वी, दीर्घायु, शत्रुहंता, निरोग कीर्तिवान बुद्धिमान, अभिमानी भाग्यवान सुखी, राजकृपापात्र,

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

व्ययशीलता जैसे शुभाशुभ फल प्राप्त होते हैं। लेकिन उत्तर का भण्डार कक्ष चाहे सदैव अशुभ फलदायी न हो लेकिन अन्ततोगत्वा धनहानि, ऋणग्रस्तता देकर दारिद्रय प्राप्त कराता है, अतः इससे बचना श्रेयस्कर है।

आग्नेय मुखी भूखण्ड–

आग्नेय मुखी भूखण्ड एक विदिशा या कोणीय भूखण्ड का प्रकार है। विदिशा/कोणीय भूखण्ड की अन्य प्रकार नैर्ऋत्य-मुखी, वायव्य-मुखी एवं ईशान मुखी भूखण्ड हैं। दिशाओं के आधार पर भूखण्ड निम्न दो प्रकार के होते हैं–

(i) दिशा भूखण्ड– जिस भूखण्ड में चुम्बकीय किरण उसके बीचों-बीच से होकर निकले अर्थात् जो भूखण्ड उत्तराभिमुख या पूर्वाभिमुख या दक्षिणाभिमुख भूखण्ड हो या पश्चिमाभिमुख भूखण्ड हो, दिशा-भूखण्ड या दिशाभिमुखी भूखण्ड कहलाता है।

(ii) विदिशा/कोणाभिमुख भूखण्ड– जिस भूखण्ड में चुम्बकीय किरण भूखण्ड के अक्ष पर 45° का कोण बनाती हुई गुजरे अर्थात् मुख्य दिशाएँ भूखण्ड के कोनों पर हों अर्थात् जो भूखण्ड ईशानमुखी या आग्नेयमुखी या नैर्ऋत्य मुखी या वायव्यमुखी हो, उसे विदिशा भूखण्ड या कोणाभिमुखी भूखण्ड की संज्ञा से जाना जाता है।

केवल ईशान मुखी विदिशा भूखण्ड ही निवास के लिये उपयुक्त होते हैं। अन्यथा सभी विदिशा भूखण्ड कुछ विशेष व्यावसायिक कार्यों के लिये उचित/शुभ होते हैं।

आग्नेयमुखी भूखण्ड की उपयोगिता– आग्नेय कोण पर स्थित होने के कारण ऐसे भूखण्ड अग्नि सम्बंधित कार्यों के लिए उत्तम हैं। जैसे–होटल, ढाबा, रेस्टोरेंट, हलवाई की दुकान, आटोमोबाइल, विभिन्न मशीनों के इंजन, भवन निर्माण सामग्री आदि।

यदि अन्य पक्ष (जैसे मिट्टि, वातावरण आदि) अनुकूल हों तो 15°-30° तक कोणीय भूखण्ड प्रयोग किया जा सकता है।

2. ध्यान रहे विदिशा भूखण्ड में भवन निर्माण भूखण्ड की भुजाओं के समानान्तर हो

3. मुख्य द्वार की स्थापना वास्तु चक्र के अनुसार शुभ पदों में ही हो।

4. ईशान कोण में ज्यादा खाली जगह छोड़ें।

दस आवासीय भवनों का सवेक्षण– विश्लेषण, विवेचन एवं निष्कर्ष–

आवास क्रम संख्या-1

आवास स्वामी का नाम– श्री धर्मवीर।

पता – B-318 प्रशान्त विहार, रोहिणी सैक्टर-14, दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

आग्नेय कोण में कक्ष/व्यवस्था– बच्चों का शयन कक्ष।

रसोई की दिशा– नैऋत्य कोण।

क्या आग्नेय कोण में कक्ष व्यवस्था वास्तु सम्मत है या वास्तुविरुद्ध? नहीं, वास्तु सम्मत नहीं है।

शुभाशुभ फल/परिणाम/घटनाएँ– स्वामी की अदालत में मुकदमे के माध्यम से नौकरी ने उन्नति, पत्नी की नौकरी में उन्नति। पुत्र ने विघ्न से शिक्षा ली, पत्नी की बीमारी, बच्चों की शिक्षा में विघ्न। मकान की उपरी मंजिलें बनाने में रुकावट उत्पन्न हुई।

निषकर्षात्मक विवेचना/टिप्पणी– उपरोक्त अशुभ फल आग्नेय कोण में वास्तु विरुद्ध व्यवस्था के कारण तो है लेकिन भवन में कुछ और भी वास्तु दोष कारण हैं जैसे उत्तर में सीढ़ियाँ, ईशान में शौचालय, भवन के मध्य में स्तम्भ (Pillar) आदि। स्वामी को वास्तु दोषों के निवारण हेतु उपाय करने चाहिएँ।

आवास क्रम संख्या-2

आवासीय भवन स्वामी का नाम–श्री टी.सी.गुप्ता।

पता – 7/D-11/111, रोहिणी दिल्ली।

आग्नेय कोण में कक्ष/व्यवस्था – स्टोर।

रसोईघर किस दिशा में है – उत्तर में।

स्टोर किस दिशा में – आग्नेय।

क्या आग्नेय कोण में कक्ष व्यवस्था वास्तु सम्मत है या वास्तु विरुद्ध हाँ आंशिक रूप से वास्तु सम्मत है।

शुभाशुभ फल/परिणाम/घटनाएँ– बिना विघ्न के निरन्तर नौकरी व आदरपूर्ण अवकाश ग्रहण किया। स्वामी को Heart Attack, पत्नी को निरन्तर शारीरिक कष्ट, स्वामी के साथ विश्वासघात हुआ।

निष्कर्षात्मक विवेचना/टिप्पणी – रसोईघर उत्तर में है जिसके कारण पत्नी को निरन्तर कष्ट रहा है। भवन में कुछ वास्तु सम्मत व्यवस्थाएँ भी दिखाई पड़ती है। इसलिए बुरे फल कम हैं।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

आवास क्रम संख्या - 3

आवास/भवन स्वामी का नाम –श्री सुरेश कुमार गोयल।

पता– रोहिणी, दिल्ली।

आग्नेय कोण में कक्ष/व्यवस्था– ड्राइंग रूम।

रसोईघर किस दिशा में है– नैर्ऋत्य कोण में।

आग्नेय कोण में व्यवस्था/कक्ष वास्तु सम्मत है या वास्तुविरुद्ध– वास्तु सम्मत नहीं है। ड्राइंग रूम आंशिक रूप से ठीक है

शुभाशुभ फल/परिणाम/घटनाएँ – गृहस्वामी के Piles का Operation, Heart Valve replacement २००६ में हुआ।

निष्कर्षात्मक विवेचना/टिप्पणी – रसोई घर का नैऋत्य में होना। इस कारण स्वास्थ्य सम्बन्धि अशुभ फल स्पष्ट हैं। वास्तु सुधार किया जाना चाहिए।

आवास क्रम संख्या - 4

आवास/भवन स्वामी का नाम– श्री एस.एल. अग्रवाल।

पता – 7/F-26/18, रोहिणी, दिल्ली।

आग्नेय कोण में कक्ष/व्यवस्था– खुला, शौचालय, स्नानागार।

रसोईघर किस दिशा में है– वायव्य कोण।

स्टोर किस दिशा में– दक्षिण।

आग्नेय कोण में कक्ष व्यवस्था वास्तु सम्मत है या विरुद्ध– वास्तु सम्मत नहीं है। लेकिन खुला क्षेत्र आंशिक रूप से ठीक है। रसोई घर का वायव्य में होना अशुभ है।

शुभाशुभ फल/परिणाम/घटनाएँ– पत्नी अस्वस्थ, स्वामी मानसिक चिन्ता से ग्रस्त, सहायक व्यवसाय में कम लाभ, बच्चों की श्रेष्ठ शिक्षा, रोजगार में उन्नति।

निष्कर्षात्मक विवेचना/टिप्पणी– आग्नेय कोण की वास्तु विरुद्ध व्यवस्था के अशुभ परिणाम स्पष्ट हैं। लेकिन अध्ययन कक्ष उत्तर में होने से बच्चों की शिक्षा श्रेष्ठ रही है।

आवास क्रम संख्या - 5

आवास/भवन स्वामी का नाम –श्री नरेन्द्र शर्मा।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

पता – 3/D - 14/132, रोहिणी, दिल्ली।

आग्नेय कोण में कक्ष/व्यवस्था– ड्राइंग रूम, स्टोर।

रसोईघर किस दिशा में है– वायव्य कोण में।

स्टोर किस दिशा में– आग्नेय।

क्या आग्नेय कोण में कक्ष व्यवस्था वास्तु सम्मत/विरुद्ध है, कुछ सीमा तक वास्तु सम्मत है। लेकिन रसोई वायव्य में है जो ठीक नहीं है।

शुभाशुभ फल/परिणाम/घटनाएँ– पुत्र की शिक्षा में रुकावट, नौकरी में निलंबन, कत्ल का झूठा अरोप (2005) में, अभी निलंबन जारी, पत्नी DDA में नौकरी पर, पत्नी Dominant, Married Life disturbed and Mentally disturbed.

निष्कर्षात्मक विवेचना/टिप्पणी– रसोई वायव्य में है। साथ ही सीढ़ियाँ उत्तर में, चौक नैऋत्य में। उत्तर भारी, नैऋत्य हल्का है इसीलिए उपरोक्त अशुभ परिणाम स्पष्ट हैं।

आवास क्रम संख्या - 6

आवास/भवन स्वामी का नाम – श्री शिव कुमार गोयल।

पता – 3/D - 14/133, रोहिणी, दिल्ली।

आग्नेय कोण में कक्ष/व्यवस्था– खुला क्षेत्र।

रसोईघर किस दिशा में है– ईशान कोण में।

स्टोर किस दिशा में– नैऋत्य कोण।

क्या आग्नेय कोण में कक्ष व्यवस्था वास्तु सम्मत/विरुद्ध है? नहीं, वास्तु सम्मत नहीं है। रसोई ईशान में अशुभ है।

शुभाशुभ फल/परिणाम/घटनाएँ– पत्नी को 1991 में Breast Cancer Surgery और दाएँ पैर की 2004 में हड्डी का टूटना। परिवार में 8 साल तक आर्थिक समस्या व बीमारी।

निष्कर्षात्मक विवेचना/टिप्पणी– रसोई घर के ईशान कोण में होने से तथा दक्षिण में खुला स्थान, दक्षिण को हल्का बनाने से उपरोक्त अशुभ फल हो रहे हैं।

आवास क्रम संख्या - 7

आवास/भवन स्वामी का नाम – श्री सतीश।

पता – 2/PKT - 6/503, रोहिणी, दिल्ली।

आग्नेय कोण में कक्ष/व्यवस्था– शयन कक्ष।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

रसोईघर किस दिशा में है– दक्षिण नैऋत्य।

क्या आग्नेय कोण में कक्ष व्यवस्था वास्तु सम्मत है या वास्तु विरुद्ध है, नहीं, वास्तु सम्मत नहीं है।

शुभाशुभ फल/परिणाम/घटनाएँ– घर में सामान्य स्थिति ठीक, गृहस्वामी को मानसिक चिन्ता।

निष्कर्षात्मक विवेचना/टिप्पणी– आग्नेय व्यवस्था वास्तु विरुद्ध है परन्तु कुछ अन्य व्यवस्थाएँ ठीक हैं। वास्तु विरुद्ध आग्नेय व्यवस्था के बुरे परिणाम भविष्य में संभावित हो सकते हैं।

आवास क्रम संख्या - 8

आवास/भवन स्वामी का नाम – श्री ओमप्रकाश शर्मा।

पता – 3-205, प्रशान्त विहार, रोहिणी सैक्टर-14, दिल्ली।

आग्नेय कोण में कक्ष/व्यवस्था– लिविंग एवं डाईनिङ्ग रूम।

रसोईघर किस दिशा में है– ईशान कोण।

क्या आग्नेय कोण में कक्ष व्यवस्था वास्तु सम्मत है या वास्तु विरुद्ध?– वास्तु सम्मत नहीं है। रसोई का ईशान में होना भी अशुभ है। पहले यह आग्नेय में थी।

शुभाशुभ फल/परिणाम/घटनाएँ– तीर्थ यात्रा चार धाम, चारों बच्चों की शादी, पुत्रवधु को सरकारी नौकरी तथा पुत्री को भी सरकारी नौकरी, स्वामी को 2006 में Heart Attack, हुआ तथा एक व्यावसायिक कार्यालय खोला।

निष्कर्षात्मक विवेचना/टिप्पणी– अभी कुछ वर्ष पूर्व ही रसोई घर को आग्नेय से ईशान में ले गये हैं। उसके बाद स्वामी को 2006 में हृदय आघात हुआ । परिणाम स्पष्ट है। स्वामी को रसोई घर फिर से आग्नेय में परिवर्तित करना चाहिए।

आवास क्रम संख्या - 9

आवास भवन स्वामी का नाम – श्री शशि भूषण।

पता – B-170, प्रशान्त विहार, रोहिणी सैक्टर-14, दिल्ली।

आग्नेय कोण में कक्ष/व्यवस्था– रसोई घर, लिविंग रूम।

रसोईघर किस दिशा में है– आग्नेय।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

क्या आग्नेय कोण में कक्ष व्यवस्था वास्तु सम्मत है या विरुद्ध? हाँ, वास्तु सम्मत है।

शुभाशुभ फल/परिणाम/घटनाएँ– बच्चों (एक पुत्र सहित) का जन्म, बच्चों (दो पुत्रियों) की शादी, रोजगार में उन्नतियाँ, गृहस्वामी को गम्भीर बीमारी।

निष्कर्षात्मक विवेचना/टिप्पणी– रसोई घर के आग्नेय में होने से शुभ फल प्राप्त हुए हैं लेकिन खुला स्थान दक्षिण में तथा सीढ़ियाँ ईशान में होने से ईशान भारी तथा दक्षिण हल्का है जिस कारण अशुभ परिणाम भी हैं।

आवास क्रम संख्या - 10

आवास भवन स्वामी का नाम – श्री जी.एस. ढींगरा।

पता – B-300, प्रशान्त विहार, रोहिणी सैक्टर-14, दिल्ली।

आग्नेय कोण में कक्ष/व्यवस्था– गैलरी, Past of Drg. room.

रसोईघर किस दिशा में है– नैर्ऋत्य कोण में।

आग्नेय कोण में कक्ष व्यवस्था वास्तु सम्मत/विरुद्ध है– नहीं वास्तु सम्मत नहीं है।

शुभाशुभ फल/परिणाम/घटनाएँ– एक पुत्र व एक पुत्री का विवाह, दो पौत्रों का जन्म। गृहस्वामी को छोटे-छोटे रोग, पत्नी को Diabetes, Cervical की लम्बी बीमारी। पुत्रवधु को Thyroid की बीमारी।

निष्कर्षात्मक विवेचना/टिप्पणी– रसोई घर के नैर्ऋत्य कोण में तथा सीढ़ियों के पूर्व में होने से अशुभ फल हैं। लेकिन हैंड पम्प ईशान में है तथा ईशान खुला भी है। इस कारण शुभ फल भी हैं।

समग्र सर्वेक्षण (Survey) पर निष्कर्षात्मक विवेचन/व्याख्या/टिप्पणी

समग्र सर्वेक्षण (Survey) से निम्नलिखित निष्कर्ष रूप में कुछ बिन्दु उभरे हैं–

1. सर्वेक्षण किए गए सभी आवासीय भवन दिल्ली के रोहिणी क्षेत्र से हैं।

2. सभी भूखण्ड भवन कोणाभिमुखी हैं। ईशानाभिमुख भूखण्ड को छोड़कर सभी कोणीय भूखण्ड आवास के लिए शुभ नहीं होते। वे कुछ व्यवसायिक कार्य के लिए प्रयोग किए जा सकते हैं जिसकी आवास नियमों में आज्ञा नहीं है।

3. लगभग सभी भवन औसतन 22 से 25 वर्ष पहले बनाए गए थे। उस समय अधिकतर भवन स्वामी वास्तु-जागरूक नहीं थे। तथा मकान का नक्शा D.D.A. से पास कराने के कारण वास्तु सम्मत नक्शा बनाने के बहुत कम विकल्प थे।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

4. सभी सर्वेक्षित भवन मध्यम या निम्न मध्यम वर्ग के हैं तथा साइज छोटे 25/32 मीटर से 100 गज। मीटर के आस पास तक हैं, जिनमें कक्षीय व्यवस्था बहुत स्पष्ट रूप में बनाना संभव नहीं होता है। केवल वास्तु सम्मत क्रिया कलाप की व्यवस्था सम्बन्धित दिशा के गुण धर्म के अनुरूप किया जाना सम्भव है।

5. किसी एक दोषपूर्ण या वास्तु सम्मत कक्ष व्यवस्था की बजाय भवन में कुल मिलाकर दोषों और शुभ व्यवस्थाओं से सभी शुभाशुभ फलों का मिलान ज्यादा उचित होता है।

6. बहुत बड़े पैमाने पर सैकड़ों या हजार भवनों का सर्वेक्षण करने से वास्तु सम्मत/विरुद्ध कक्ष व्यवस्थाओं तथा उनके शुभाशुभ परिणामों में सहसंबंध (corelation) को अधिक सटीकता से समझना सम्भव हो सकता है।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

वास्तुशास्त्र एवं रंग-विन्यास

श्री दिलीप कुमार

हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों ने मानव के लिए अपने अनुपम अनुभव के आधार पर अथक परिश्रम एवं लगन से वास्तु विज्ञान की रचना की है। उन्होंने अपने ग्रन्थों में मानव के निवास स्थान के लिए प्रकृति के विभिन्न नियम एवं इनका मानव जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव के बारे में विशेष ज्ञान प्रदान किया है। वास्तु भारत का प्राचीन शास्त्रीय ज्ञान है। इसकी प्रामाणिकता वेद एवं पुराणों के समान ही है। वास्तु के सिद्धान्तों का अनुपालन मनुष्य के जीवन में सुख एवं शान्ति का परिचायक है। यदि हम अपने बड़े-बूढ़ों से भी भवन निर्माण के बारे में चर्चा करते हैं, तो वे भी यही कहते हैं कि भवन पूर्वोन्मुख होना चाहिए, भूखण्ड का आकार सिंहमुखाकार न हो; यह वास्तु का एक मुख्य नियम है अर्थात् हमारे बुजुर्ग भी वास्तु के प्रति सचेत हुआ करते थे। वास्तु विद्या का वर्णन ज्योतिषशास्त्र के संहिता भाग में सर्वाधिक रूप से उपलब्ध होता है। ज्योतिष के विचारणीय पक्ष "दिग्-देश-काल" के कारण ही वास्तुशास्त्र ज्यौतिष के संहिता विभाग में समाहित हुआ। घर एक गृहस्थ के लिए आवश्यक है इसीलिए भविष्य पुराण में कहा गया है कि गृहस्थ की सभी क्रियायें स्वगृह में ही सिद्ध होती हैं न कि परगृह में। अतः अपने गृह का वास्तुशास्त्रसम्मत निर्माण करना चाहिए।

सामान्यतः विद्वजन वास्तु का तात्पर्य भवन-निर्माण सम्बन्धित ज्ञान के रूप में मानते हैं। वास्तुशास्त्र के अन्तर्गत संपूर्ण देश एवं नगरों की निर्माण योजना से लेकर छोटे-छोटे भवनों और उसमें रखी जाने वाली वस्तुओं तक की योजना सम्मिलित है परंतु सामान्यतः इसे भवन निर्माण कला से संबंध किया जाता है। वास्तु 'वस्' से बना है। 'वस्' का अर्थ है वास करना। 'वास्तु' मात्र भवन-निर्माण कला का पर्यायवाची शब्द नहीं है, अपितु 'वास्तु' का क्षेत्र भवन निर्माण कला से अत्यंत विशाल एवं विस्तृत है। भवन निर्माण कला एक चमत्कारी गहन विद्या है। वास्तु का संस्कृत में शाब्दिक अर्थ—मनुष्य तथा देवताओं का निवास स्थान है। समरांगण सूत्रधार में वर्णित है—

देशः पुरम् निवासश्च सभावेश्मासनानि च।
यद्यदीदृशमन्यच्च तत्तच्छ्रेयस्करं मतम्॥
वास्तुशास्त्रादृते तस्य न स्याल्लक्षणनिश्चयः।
तस्माल्लोकस्य कृपया शास्त्रमेव दुदीर्यते॥ (1.4-5)

अर्थात् संपूर्ण राष्ट्र, नगर, सभा-भवन, प्रासाद, महल व सामान्यजन के गृह एवं विभिन्न प्रकार के पलंग, बैठने की आसन आदि वस्तुओं तथा इनके अतिरिक्त वे सभी वस्तुएँ जिनका

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

निर्माण कार्यों में प्रयोग होता है, सभी के लिए वास्तुशास्त्र के सिद्धांतों का पालन ही कल्याणकारी होता है।

वास्तु का वर्तमान पुनःप्रचलन केवल मानव-आवास तक सीमित है, परंतु वास्तुशास्त्र के ध्येय अथवा क्षेत्र, जो कि स्थापत्य भी कहलाता है, का विस्तार मंदिरों के अभिकल्प अथवा नमूने, मूर्ति विद्या, शहरी आवास योजनाओं, सड़कों, रेलवे लाइनों, नहरों आदि का निर्माण ही नहीं अपितु उससे कहीं आगे है। दक्षिण भारत के अधिकतम मंदिर जैसे– तिस्पति में भगवान बेंकटेश्वर का मंदिर, मदुराई में मीनाक्षी मंदिर, पुट्टापर्थी में साई बाबा का आश्रम, उज्जैन महाकालेश्वर मंदिर वास्तु पर आधारित हैं। राजस्थान की राजधानी जो कि सन् 1727 में महाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय द्वारा स्थापित की गयी थी, वास्तु के अनुसार ही निर्मित है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि वास्तुशास्त्र के सिद्धांतों के अतिरिक्त अन्य कोई ज्ञान यह निश्चित नहीं कर सकता कि भवन का निर्माण सही हुआ है अथवा नहीं। यदि कोई निर्माण कार्य वास्तु के नियमों के अनुसार नहीं हुआ तो इन स्थानों में काम करने वाले, वास करने वाले व्यक्तियों के विचार तथा कार्यशैली विकासवादी नहीं होगी जिससे व्यर्थ की परेशानियाँ एवं मानसिक अशांति की संभावनाएँ बढ़ जायेंगी। इसके विपरीत यदि भवन निर्माण अथवा मकान में निवास करने में वास्तुशास्त्र के नियमों को व्यवहार में लाया जाये, तो समस्त दैवी शक्तियाँ उन व्यक्तियों के सोच-विचार तथा कार्यशैली को विकासवादी बनाने में सहायक होती हैं जो इन निर्माण स्थलों में वास करते हैं अथवा कार्य करते हैं। प्राचीन भारत में भवन निर्माण मात्र एक शैली ही नहीं अपितु एक पवित्र एवं धार्मिक संस्कार माना जाता था।

वास्तु में सूर्य का महत्त्व

वास्तुशास्त्र के अनुपम सिद्धांतों का निर्धारण सूर्य की स्थिति एवं ब्रह्माण्ड पर उसके प्रभाव को ध्यान में रखकर किया गया है। वास्तु सिद्धांतों में सूर्य के प्रकाश एवं ताप का महत्वपूर्ण स्थान है। वास्तुशास्त्र के सिद्धांतों में प्रकृति से सामंजस्य स्थापित करने का पूर्ण प्रयास किया गया है। वास्तुशास्त्र के सिद्धान्तों को इस प्रकार बनाया गया है कि प्राकृतिक स्रोतों द्वारा सर्वाधिक ऊर्जा उपलब्ध हो ताकि भवन में निवास करने वालों को उत्तम स्वास्थ्य, सुख एवं शांति प्राप्त हो सके।

वास्तुशास्त्र में अन्य सभी ग्रहों की अपेक्षा सूर्य का महत्वपूर्ण स्थान है। सूर्य ही हमें ऊर्जा प्रदान करता है। सूर्य की गर्मी से ही पृथ्वी पर जीवन संभव है। सूर्य पूर्व दिशा में उदय होता है और पश्चिम में अस्त होता है। सूर्य के प्रकाश एवं ताप का हमारे जीवन पर ऋतुओं के रूप में एवं अनेक प्रकार से स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है। सूर्य के प्रकाश में जो सात रंग है उनका प्रभाव हमारे जीवन में उर्जा पाने की दृष्टि से सर्वाधिक होने के कारण पूर्व और पश्चिम दिशाओं का विशेष महत्व है। भवन का निर्माण इस प्रकार होना चाहिए कि सूर्य की जीवनदायिनी किरणों (रंगों के रूप में) के प्रवाह में कोई बाधा न आए। वास्तुशास्त्र का प्रमुख नियम है कि भवन-निर्माण में उत्तर दिशा वाला भाग दक्षिण दिशा वाले भाग की अपेक्षा नीचा रखा जाए। इसी से जुड़ा दूसरा नियम यह है कि पूर्व की दिशा का भाग पश्चिम दिशा वाले भाग से नीचा रहे। इसी प्रकार पूर्व

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

एवं उत्तर-पूर्व की ओर अन्य दिशाओं की अपेक्षा अधिक खुली जगह होनी चाहिए ताकि प्रातःकाल के सूर्य की किरणों का लाभ भवन में निवास करने वालों को मिल सके।

वास्तु एवं चुम्बकीय तरंगे

उत्तरी ध्रुव से दक्षिण ध्रुव की ओर सतत् प्रवाहित होने वाली चुम्बकीय तरंगों के प्रवाह में कोई बाधा उत्पन्न न हो सके, वास्तुशास्त्र में इसका भी ध्यान रखा गया है। यदि मनुष्य की शारीरिक उर्जा और उसके निवास में प्रवाहित चुम्बकीय तरंगों का तालमेल ठीक नहीं होगा, तो परिणाम विपरीत ही होंगे। भवन में जहाँ द्वार है, उससे 180 अंश पर यदि बंद दीवार है तो उर्जा का चक्र पूरा नहीं होगा। यदि उस दरवाजे के सामने दूसरा दरवाजा या खिड़की या उसी प्रकार की पेन्टिंग टंगी हो तो, ऋणात्मक और धनात्मक उर्जाओं का चक्र पूरा हो जाएगा और इस प्रकार निश्चित रूप से उस द्वार से गुजरने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह शुभ होगा। चुम्बकीय तरंगों अबाधित प्रवाह के लिए वास्तुशास्त्र का एक मुख्य नियम है कि शयन के समय सिर दक्षिण एवं पैर उत्तर दिशा की ओर रहें।

वास्तु एवं प्रकृति

इस संसार का निर्माण पंचतत्वों से हुआ है। ये पंचतत्व हैं– पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश एवं जल। ये पाँच तत्व ही प्रकृति हैं। इनका संतुलन ही प्राकृतिक संतुलन कहलाता है। प्राकृतिक असंतुलन के कारण ही वर्तमान में ऋतुओं की अवधि में परिवर्तन हो रहा है। गर्मियों में भीषण गर्मी, सर्दियों में अत्यंत सर्दी एवं बरसात में अतिवृष्टि का कारण इन्हीं पाँच तत्वों का असंतुलन ही है। भवन निर्माण में भी इन्हीं पाँचतत्वों का उचित समावेश ही उसमें निवास करने वाले मनुष्य के जीवन में सुख एवं शांति की वृद्धि करता है।

इसकी व्याख्या इस प्रकार भी की जा सकती है कि हमारा शरीर इन्हीं पाँचतत्वों से मिलकर बना है। जब हमारे शरीर में इन पाँचतत्वों का संतुलन बिगड़ जाता है, तो यह रोगग्रस्त हो जाता है; जैसे– अग्नि तत्व की अधिकता से एसिडिटी, आदि रोग, पृथ्वी तत्व की अधिकता से पथरी आदि रोग हमारे शरीर में व्याप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार जब हमारे भवन में इन पाँचतत्वों का संतुलन बिगड़ जाता है; तो उसका वातावरण रोगग्रस्त हो जाता है और इसका प्रभाव भवन में निवास करने वालों के जीवन में अनेक परेशानियाँ उत्पन्न कर देता है। जिस प्रकार शरीर में रोग के उपचार के लिए दवाइयों, शल्य चिकित्सा आदि का प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार भवन के वातावरण को शुद्ध करने के लिए और इन पाँचतत्वों का उचित संतुलन बनाने के लिए वास्तु का विचार करना होता है।

आधुनिक युग एवं वास्तुशास्त्र

प्राचीन समय में विशालकाय भवन, दुर्ग, मंदिर, राजप्रासाद, पाठशाला, पुस्तकालय, तालाब, सरोवर, कूप बावड़ी, बाग-बगीचों, मंत्रियों का निवास, सिपाहियों का निवास, पुरोहित का निवास

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

व सामान्यजन के निवास के लिए भी वेद-पुराण और शास्त्रों में वर्णित स्थापत्य कला एवं वास्तुविद्या को ही आधार बनाकर निर्मित किए जाते थे परंतु सैकड़ो वर्षों की गुलामी और पाश्चात्य एवं विदेशी प्रभाव की चली उल्टी हवा में हमारी भवन निर्माण और स्थापत्य कला विकृत होती गई। साथ ही जनसंख्या की तीव्र गति से होती बढ़ोतरी ने महानगरों, नगरों और कस्बों तक में भूमि की कमी उत्पन्न कर दी। भूमि की इस कमी ने बहुमंजिली इमारतों (फलैट सिस्टम) को जन्म दिया, ताकि भूमि का उपयोग ज्यादा से ज्यादा हो सके। पाश्चात्य जगत की उल्टी गंगा की चकाचौंध, लोहे व सीमेन्ट से बने भवनों के आधुनिक कारीगरों (आर्किटेक) ने वास्तुशास्त्र के नियमों की अवहेलना शुरू कर दी तथा कम से कम जगह के उपयोग में वास्तुशास्त्र को विकृत कर दिया– कहाँ किस चीज का निर्माण हो यह सोचे बिना ही वे अपने आपको बढ़ाने में लगे रहें। इन अशास्त्रीय पद्धति से बने विशाल भवनों में लोग दुःख, कलेश, रोग से संतप्त एवम् उदासीन रहने लगे और मानव जीवन की सार्थकता को खोने लगे। मनुष्य अति विलासी एवं भौतिक जीवन से तंग आकर साथ ही दैविक जीवन की परेशानियों से ऊबरकर पुनः यह सोचने को बाध्य हुआ कि आखिर क्या बात है? क्यों जीवन में परेशानियाँ हैं और इसी प्रवाह ने उसे वास्तुशास्त्र की ओर मुड़ने को मजबूर किया। भारत में सोई पड़ी वास्तुविद्या पुनः जाग्रत हुई और वास्तु के नियमानुसार चलने पर लोगों ने घर में सुख, शांति, व्यापार में लाभ एवं जीवन में आश्चर्यजनक सुख की अनुभूति की।

विदेशों में भी आज भारतीय वास्तुकला को लेकर बड़ा चिंतन एवं विचार-विमर्श हो रहा है। अनेक शोध कार्य हो रहे हैं। सबसे बड़ा कार्य जर्मनी ने किया जहाँ हमारे वास्तु ग्रन्थों का अंग्रेजी भाषा एवं अन्य विदेशी भाषाओं में अनुवाद एवं प्रकाशन हुआ। आज विदेशों में भी जब कोई नूतन भवन निर्माण होता है तो सर्वप्रथम घर का मुख्य द्वार, शयन कक्ष, अध्ययन कक्ष आदि कहाँ बनाए जाएँ– तथा उसके पश्चात उसके साज सज्जा, रंग रोगण का कार्य कैसे किया जाए– इस पर पूर्ण विचार होता है। यह सब वास्तुशास्त्रों के नियमानुसार ही किया जा रहा है। वैज्ञानिक प्रगतिशील एवं अत्याधुनिक देश के रूप में पूरे विश्व में अपनी पहचान बनाने वाले अमेरिका में भी अब वास्तुग्रन्थों को लेकर भवन निर्माण होने लगे हैं। अमेरिका के शहर लॉस एंजिल्स में हाल में ही जनवरी 1995 को आर्किटेक्टो ने एक अथर्ववेद स्थापत्यकला पर आधारित विश्व का प्रथम भवन बनाने का दावा किया है।

वास्तुशास्त्र की उपयोगिता

छोटे गाँव, कस्बों एवं मध्य श्रेणी के शहरों में तो लोग अपनी इच्छानुसार भूमि लेकर वास्तुपद्धति के द्वारा भवन निर्माण कर सकते हैं परंतु महानगरों में तैयार फलैट खरीदने वालों के पास परिवर्तन करने का पूर्ण क्या आंशिक विकल्प भी नहीं होता। सरकारी निर्माण तथा बने बनाये मकान में खरीदते समय इस बात का प्रमाण पत्र लिया जाता है कि आप रंग-रोगन के अलावा मूल ढाँचे में या अन्य किसी भी प्रकार का निर्माण या बदलाव करने पर दंड के भागी बनेंगे। इस प्रकार बिल्डर और आर्किटेक्टों के द्वारा मनमाना ढंग से बनाए गए बहुमंजिली इमारतों में लोग नाना प्रकार

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

के क्लेश और दु:खों से परेशान रहते हैं। अधिकांशत: यह शिकायत रहती है कि जब से यह मकान खरीदा है घर में गृहणी बीमार रहती है, धंधे की प्रगति रुक गई है, मानसिक तनाव हमेशा रहता है, संतान कहना नहीं मानती है, भाइयों में परस्पर शत्रुता हो रही है, विवाह विच्छेद यानी तलाक हो रहे हैं, आदि-आदि।

महानगरों के इन विशाल भवनों में पूर्ण रूप से वास्तु नियम लागू नहीं हो सकते हैं, क्योंकि फलैट के मुख्य द्वार को बदलना असंभव है, कटे हुए कोणों को बढ़ाना व बढ़े हुए कोणों को कम करना भी असंभव सा प्रतीत होता है। इन परिस्थितियों में ना तो गृहस्वामी अपने घर को छोड़ने की स्थिति में होता है न तो उसमें रहकर गृह सुख का लाभ ही ले पाता है। किंतु इस परिस्थिति में अपने घर या फलैट में शयन कक्ष, अध्ययन कक्ष, पलंग, बैठने की दिशा, आलमारी, आंतरिक सज्जा, बाह्य सज्जा, परदे एवं कुशन के रंगों में परिवर्तन, दिवारों के रंग विभिन्न कक्षों के हिसाब से तथा जो मन को मनभावन लगे का परिवर्तन करके अपने घर या फलैट में आमूलचूल परिवर्तन के विना परेशानियों से पार पाया जा सकता। मध्यकालीन सभ्यता में जब राजा महाराजा का शासन चलता था तो भारतीय वास्तु शिल्प में भी अनेक बदलाव और परिवर्तन आए। वैदिक काल में जहाँ पर्णकुटी आश्रम तथा सामान्य नागरिकों के घर परिकल्पित किये गये थे, उसकी जीती-जागती तस्वीर आज भी भारतीय ग्रामीण वास्तु में पायी जाती है। महाभारत में वास्तु शिल्प की अद्‌भुत कलाएँ देखने में आईं। आज के तकनीकी और मशीन औजारों की तुलना में प्राचीन काल के शिल्पकार अनुभवी नहीं होते हुए भी कलात्मक संरचनाओं में बेजोड़ कारीगर कहलाते थे। उनके रंगों का समन्वय जो कि आज भी दक्षिण भारत के मंदिरों में बाहरी द्वार पर देखा जाता है अनुठा है।

विश्व विज्ञान और रंग

प्रकाश तरंग के रूप में होता है और प्रकाश का रंग उसके तरंग-दैर्घ्य पर आधारित है। तरंग दैर्घ्य और कंपन की आवृत्ति परस्पर में व्यस्त प्रमाण (Inverse-Proportion) से सम्बन्धित है। सूर्य का प्रकाश त्रिपार्श्व काँच में गुजरने पर प्रकाश-विक्षेपण के कारण सात रंगों मे विभक्त होता दिखाई देता है। उस रंग की पंक्ति को वर्णपट कहते हैं। उनमें से लाल रंग का तरंग दैर्घ्य सबसे अधिक और बैंगनी रंग का तरंग दैर्घ्य सबसे कम होता है। दूसरे शब्दों में लाल प्रकाश की कंपन आवृति सबसे कम और बैंगनी की सबसे अधिक होती है। दृश्य प्रकाश में जो विभिन्न रंग दृष्टिगोचर होते हैं, वे विभिन्न प्रकम्पनों की आवृत्ति या तरंग दैर्घ्य के आधार पर होते हैं–

रंग	तरंगदैर्घ्य 1A°= कम्पन 1/1000000 से.मी.	आवृत्ति (प्रति सैकिंड)
(COLOUR)	(WAHELENGTH)	(FREQUENCY)
R लाल	7400-6200A°	4000-5000 खरब

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

O नारंगी	6200-5852A°	5000-5400 खरब
Y पीला	5850-5750A°	5400-5500 खरब
G हरा	5750-5000A°	5500-6000 खरब
B नीला	5000-4450A°	6000-6600 खरब
I जामुनी	4450-4350A°	6600-6750 खरब
V बैंगनी	4350-3900A°	6750-7600 खरब

रंग की परिभाषा

सूर्य से प्रसारित होने वाले प्रकाश-तरंग जब पदार्थ से होकर गुजरते हैं, तब उस पदार्थ की स्वयं की विशिष्टता के कारण एक विशेष तरंग दैर्घ्य को छोड़कर शेष सभी उस पदार्थ के द्वारा शोषित हो जाते हैं। इस प्रकार जब दूब में से प्रकाश की तरंगे गुजरती हैं, दूब की विशिष्टता के कारण ही हरे को सूचित करने वाली तरंग-दैर्घ्य को छोड़कर शेष तरंग दैर्घ्य वाली सभी तरंगे दूब के द्वारा शोषित हो जाते हैं। हमारी आँख तक केवल वे ही तरंगे पहुँचते हैं, जिनका तरंग दैर्घ्य हरे रंग को सूचित करता है और इसीलिए हमें दूब हरी दिखाई देती है। सुप्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक और नोबल पुरस्कार विजेता प्रो. सी.वी.रमन ने रंग की प्रक्रिया पर गहन शोध कार्य किया है। उपरोक्त कथन की पुष्टि रमन के इस कथन से होती है कि "सूर्य के प्रकाश में जो पदार्थ का रंग हमें दिखाई देता है वह पदार्थ के ऊपर पड़ने वाले सूर्य किरणों में विद्यमान समस्त प्रकाश तरंगों में से जिस द्रव्य का पदार्थ बना हुआ है, उस द्रव्य द्वारा विसरण और छितराव के पश्चात् जो तरंगे आँख तक पहुँचती है तथा आँख द्वारा उनका संश्लेषण होता है, उनसे उत्पन्न होता है।" किसी भी पदार्थ का रंग तीन बातों पर निर्भर होता है—1. आपतित प्रकाश की प्रकृति, 2. पदार्थ द्वारा शोषित प्रकाश और 3. विभिन्न रंगों की अनवशोषित प्रकाश किरणें। इन तीनों के कारण आँख पर उत्पन्न अनुभूति ही पदार्थ का रंग है।

रंग के प्रकार

रंग के दो प्रकार होते हैं प्राथमिक रंग और पूरक रंग। नीला, पीला और लाल— ये तीनों प्राथमिक रंग कहलाते हैं। इन रंगों को उचित अनुपात में मिलाने पर दूसरे रंग प्राप्त किए जा सकते हैं। जबकि अन्य रंगों को मिलाने से ये प्राथमिक रंग प्राप्त नहीं किये जा सकते हैं। जब दो रंगों को मिलाने से तीसरा रंग प्राप्त होता है, तो उन दो रंगों को एक दूसरे का "पूरक" रंग कहते हैं। आयुर्वेद के अनुसार हमारे शरीर में बात्त, पित्त और कफ ये तीन दोष होते हैं। वैसे ही ये तीन प्राथमिक रंग हैं जिसका अनुपात जीवन में बना रहना चाहिए। प्रकृति के रहस्य अधिकांशतः प्रकाश की भाषा में यानी रंगों में अंकित हैं। उनका उद्घाटन प्रकाश की सांकेतिक भाषा को समझने से हो सकता है। अणुसिद्धान्त और प्रकाश के वास्तविक स्वरूप के ज्ञान के आधार पर अब यह बात

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

सिद्ध हो चुकी है कि प्रत्येक द्रव्य या प्रत्येक प्रकार का अणु अपनी आण्विक संरचना के आधार पर एक विशेष तरंग दैर्घ्य को ही उर्जा के रूप में उत्सर्जित या गृहीत करता है। इसी के आधार पर प्रत्येक द्रव्य का वर्णपट में एक निश्चित स्थान होता है, जो दूसरे किसी द्रव्य का नहीं होता। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रत्येक प्रकार का अणु अपने अस्तित्व और व्यक्तित्व को अपने विशिष्ट हस्ताक्षर द्वारा अभिव्यक्त करने की क्षमता रखता है और यह हस्ताक्षर उस द्रव्य विशेष या अणु विशेष की 'अंगुलियों की छाप' बन जाती है जो केवल उसके अपने व्यक्तित्व (संरचना-विशेष) को ही व्यक्त करती है।

रंग और मनोविज्ञान

वैज्ञानिकों के अनुसार हमारा सारा जीवन-तंत्र रंगों के आधार पर चलता है। आज के मनोवैज्ञानिकों और वैज्ञानिकों ने यह खोज की है कि व्यक्ति के अंतर मन को, अवचेतन मन को और मस्तिष्क को सबसे अधिक प्रभावित करने वाला है– रंग। रंग हमारे समूचे व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। सभी प्राणियों के स्वास्थ्य और व्यवहार पर प्रकाश और रंगों का गहरा प्रभाव है। वनस्पति-जगत के लिए सूर्य का प्रकाश जीवनदाता है। मनुष्य एवं अन्य प्राणियों की शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक दशाओं तथा आचार-व्यवहार पर विभिन्न रंगों का क्या-क्या प्रभाव पड़ता है–इस विषय में प्राचीन एवं आधुनिक दोनों विज्ञानों में काफी गवेषणा की गई है तथा आज यह मानना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि "शारीरिक क्रियाकलापों पर सबसे अधिक प्रभाव डालने वाले तत्वों में आहार के अतिरिक्त यदि किसी का हाथ है तो यह है प्रकाश यानि रंग का।"

अनेक प्रयोगों से यह ज्ञात किया जा चुका है कि विभिन्न रंगों का व्यक्ति के रक्तचाप, नाड़ी और श्वसन की गति एवं मस्तिष्क के क्रियाकलापों पर तथा अन्य जैविकी क्रियाओं पर विभिन्न प्रकार का प्रभाव पड़ता है। इसी परिणामस्वरूप आज अनेक प्रकार की बीमारियों की चिकित्सा में विभिन्न रंगों का उपयोग किया जा सकता है। यानि रंगों का प्रभाव का मतलब आपके पहनने वाले कपड़े का रंग, घर के दिवालो का रंग, घर के बाकि सामान के रंगों का प्रभाव व्यक्ति के ऊपर पड़ता है।

मनःकायिक बीमारियों पर रंगों का प्रभाव

रंग व्यक्ति की बीमारियों को कैसे और क्यों प्रभावित करते हैं– इस विषय पर सभी चिकित्सक एकमत नहीं हैं। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि रंगों का प्रभाव सीधे शरीर पर न होकर, मानस पटल पर होता है। उसके अनुसार रंगों द्वारा ऐसी मनोदशाओं का निर्माण होता है जो शरीर को एवं मन को स्वस्थ कर देती है किन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि आधे से अधिक बीमारियाँ मनःकायिक ही होती हैं। इस बात को सभी चिकित्सक और शोधकर्ता स्वीकार करते हैं कि विद्युत-चुम्बकीय तरंग-क्रम का अमुक हिस्सा, जैसे कि "एक्स" किरणें, सूक्ष्म तरंगे एवं पराबैंगनी किरणें, व्यक्ति के स्वास्थ्य पर उल्लेखनीय प्रभाव डालती हैं किन्तु पूरे दृश्य प्रकाश (रंग) के प्रभाव के विषय में उनमें मतभेद है। फिर भी अनेक प्रयोगों द्वारा यह स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध हुए

CC-0. In Public Domain. Digitized by Siddhanta eGangotri Research Aacharya

हैं कि प्रकाश हमारे अन्तःस्रावी ग्रन्थि तंत्र एवं नाड़ी तंत्र को निश्चित रूप से प्रभावित करता है। इस बात को भी यहाँ पर ध्यान में रखना चाहिए कि हमारा शरीर एवं मन सबका संचालन अन्तःस्रावी ग्रन्थि तंत्र एवं नाड़ी तंत्र के द्वारा संचालित होता है जो कि हमारे सुखी जीवन का सबसे बड़ा कारण है तथा जहाँ से हमें एक रास्ता एवं स्वयं का मनोबल मिलता है। रंग चित को सबसे अधिक प्रभावित करता है। हमारा सारा जीवन तंत्र रंगों के आधार पर चलता है।

नाड़ी-ग्रन्थि-तंत्र पर रंगों का प्रभाव

वर्तमान समय के वैज्ञानिक अपने शोध के फलस्वरूप इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि विद्युत-चुम्बकीय उर्जा किसी अज्ञात रूप में हमारी पिच्युटरी और पोनियल ग्रन्थियों एवं मस्तिष्क की गहराई में विद्यमान हाइपोथैलेमस को प्रभावित करती हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार शरीर के ये अवचन अन्तःस्रावी ग्रन्थियों एवं पूरे तंत्र का नियमन करते हैं, जो स्वयं शरीर के अनेक मूलभूत क्रियाकलापों और आक्रमण, भय आदि भावनात्मक प्रतिक्रियाओं का नियंत्रण करते हैं।

हेराल्ड वोह्लफार्थ नामक प्रकाश जीव विज्ञान शास्त्री (फोटो बायोलोजिस्ट) और "जर्मन अकादमी ऑफ कलर साइन्स" के अध्यक्ष ने एक विद्यालय के बच्चों पर कुछ प्रयोग करने के पश्चात यह रिपोर्ट दी है कि दो अंधे बच्चों के रक्त चाप नाड़ी की गति और श्वास की गति पर प्रकाश का वही प्रभाव देखा गया है जो कि अन्य सात सामान्य दृष्टिकोण वाले बच्चों पर देखा गया था। बायो-सोसल रीसर्च की एक पत्रिका में उपर्युक्त प्रयोग की जो रिपोर्ट छपी थी, उसके अनुसार, जब विद्यालय के कमरों की दीवारों के रंगों को नारंगी और सफेद से बदलकर रोयल ब्लू (नीला) और हल्का ब्लू कर दिया गया तो सामान्य बतियों के स्थान पर इन्द्रधनुषी बत्तियों को लगा दिया तो बच्चों का प्रकुंचन (ऊपर का) रक्तचाप 120 से घटकर 100 तक आ गया। उनका व्यवहार पहले से अधिक अच्छा और अनुशासनबद्ध हुआ तथा इनकी एकाग्रता बढ़ गई। यह उदाहरण हमारे विषय वस्तु को एक दृष्टिकोण देने में पूर्ण समर्थ है। प्रयोग के आधार पर वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर भी पहुँचें है कि– प्रकाश से रंग के रूप में प्राप्त विद्युत-चुम्बकीय उर्जा की अल्पमात्राएँ, हमारे एक या एक से अधिक तंत्रिका संचारी (न्यूरो ट्रांसमीटर) को, जो एक तंत्रिका से दूसरी तंत्रिका तक या तंत्रिका से मांसपेशी तक संदेश पहुँचाने वाले रासायनिक संदेशवाहक है–उसे प्रभावित करती है। प्रयोगों के द्वारा ऐसे प्रमाण भी उपलब्ध हुए हैं जो प्रकाश हमारी आँखों के दृष्टिपटल पर टकराता है, वह हमारी पीनियल ग्रन्थि में से निकलने वाले मेलाटोनिन नामक महत्वपूर्ण स्ताव के संश्लेषण को प्रभावित करता है। यह मेलाटोनिन नामक हार्मोन एक अन्य सेराटोनिन नामक तंत्रिका-संचार के उत्पादन-मात्रा का निर्णय करने में सहायक होता है।

हमारे शास्त्रों के आधार पर भी स्वस्थ और अस्वस्थ, मृत और जीवित, जीवन्त और निर्जीव सभी वस्तुओं से एक तरंग निकलता रहता है जो कि भिन्न-भिन्न होता है यानी न तो वह उष्मा है, न ध्वनि है या जो भी है वह सिर्फ विविध रंगों में ही दृश्य है। हमारे ऋषि मुनियों के सारे कथन इन रंगों के ऊपर निर्भर करता था। जैसे– 1. सुनहला रंग – आध्यात्मिकता 2. हल्का नीला या

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

नीला - रोग हरने की शक्ति, 3. **गुलाबी** - प्रेम, स्नेह, 4. **लाल** - तृष्णा, क्रोध, 5. **हरा** - बौद्धिकता, 6. **भूरे या गहरे मटियाले** रंग - रोगग्रस्ता, 7. **मुझार्या या निस्तेज** - मृत्यु की सन्निकटता दर्शाता है। रंग - एक आध्यात्मिक दृष्टिकोण का द्योतक है। रंग शब्द का अर्थ आणविक आभा, कांति, प्रभा या छाया भी है। प्राचीन शास्त्रों में शरीर के वर्ण, आणविक आभा एवं उससे प्रभावित होने वाले आत्म-परिणाम– इन तीनों अर्थों में रंग का उल्लेख मिलता है। शरीर, वर्ण और आणविक आभा को द्रव्य-रंग और आत्म परिणाम को भाव-रंग कहा जा सकता है।

पाँच तत्वों से बना मनुष्य भी कृष्ण रंग में परिणत होता है अर्थात् उसकी आणविक आभा (पर्यावरण) कृष्ण होती है। जैसे रंग हम ग्रहण करते हैं वैसे ही हमारे भाव, आचार व व्यवहार बन जाते हैं। स्फटिक के सामने जैसा रंग आता है, वह वैसा ही दीखने लग जाता है। उसका अपना कोई रंग नहीं होता। सामने जिस रंग के परमाणु आते हैं, परिणाम भी वैसे हो जाते हैं। मनुस्मृति में सत्व रजस् और तमस् के जो लक्षण और कार्य बतलाये गए हैं, वे रंग के लक्षण से तुलनीय हैं। हमारे भीतर वास्तव में कषाय का एक तंत्र है। वहाँ जो कुछ भी जाता है, वह रंगीन हो जाता है, जो भी माल बाहर से जाता है वह रंगों में जाता है तथा पुनः वह रंगीन में ही आता है। हिसा, असव्य, क्रोध, अहंकार, कपट आदि का आचरण करने वाला व्यक्ति बाहर से काले, नीले आदि मलिन रंगों के परमाणु आकर्षित करता है। हमारा तंत्र उन्हें कषाय तक पहुँचाता है। जब विपाक होता है, तब कषाय से रंगीन होकर तंत्र के माध्यम से रंगों के रूप में वे बाहर आते हैं और भिन्न-भिन्न प्रकार की वृत्तियों और वासनाओं को प्रकट करने से अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की मदद लेते हैं।

रंग-जीवन तंत्र का आधार

हमारा सारा जीवन तंत्र-रंगों के आधार पर चलता है। आज के मनोवैज्ञानिकों और वैज्ञानिकों ने यह खोज की है कि व्यक्ति के अन्तर-मन को, अवचेतन मन को और मस्तिष्क को सबसे अधिक प्रभावित करने वाला है–रंग। रंग हमारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। यह बहुत बड़ी सच्चाई है। हम सबसे ज्यादा रंग से प्रभावित होते हैं। वास्तुशास्त्र के अनुसार भी पाँच मुख्य कारक शब्द, रूप यानी रंग, रस, गंध और स्पर्श है। उनमें रस का भी प्रभाव है, शब्द का भी प्रभाव है तथा गंध एवं स्पर्श का भी अपना प्रभाव होता है, किन्तु रंग जितना प्रभाव डालता है उतना कोई नहीं डालता है। हम सब रंगों से प्रभावित होते हैं। हमारे जीवन का दृष्टिकोण वैसा ही होता जाता है। हमारी मृत्यु का, हमारे पूर्वजन्म का, हमारे पुनर्जन्म का संबंध भी रंग से है। हमारे भावों, हमारे विचारों का संबंध रंग से है। जिस प्रकार के रंग हम ग्रहण करते हैं वैसे ही हमारे भाव बन जाते हैं। जब हम हिंसा का विचार करते हैं तब काले रंग के परमाणु आकर्षित होते हैं और हमारी आत्मा के परिणाम भी काले रंग के अनुरूप बन जाते हैं। जैसा सान्निध्य मिलता है वैसा ही दीखने लग जाता है। स्फटिक का अपना रंग नहीं होता है। उसके सामने जैसा रंग आता है वह वैसा ही बन जाता है। आत्मा के परिणामों का अपना कोई रंग नहीं होता। सामने जिस रंग के परमाणु आते हैं आत्मा के परिणाम उस रंग में बदल जाता है।

CC-0. In Public Domain. Digitized by Muthulakshmi Research Academy

एक व्यक्ति मरता है, वह अगले जन्म में पैदा होता है। पूछा गया कि अगल जन्म में क्या होगा? कैसा होगा? उत्तर मिलेगा– जिस रंग में मरेगा उसी रंग में पैदा होगा। यानि ज्ञान और ध्यान के साथ, कर्म और जीवन के साथ, मृत्यु और पुनर्जन्म के साथ–सबके साथ रंगों का संबंध है। स्थूल व्यक्तित्व का ऐसा कौन-सा विषय है जिसके साथ रंगों का संबंध ना हो। यह अंगुली हिलती है, इसका भी अपना रंग है। एक अंगुली है जिसका नाम है–तर्जनी। इसका काम है तर्जना देना। इसे ही तर्जनी क्यों कहा गया? इसे तर्जनी इसलिए कहा गया कि इसका रंग तर्जना देने वाला है। हमारी अंगुलियों का, हमारे घुटने का, हमारी एड़ी का, हमारे पैर तक के भाग, हमारे कटि तक के भाग का रंग और शरीर के ऊपरी भाग तक का रंग अलग-अलग है। सारा रंग ही रंग है। जो भी हम खाते हैं, वह आहर पर्याप्ति के कोष में जाता है। आहार पर्याप्ति की वे कोशिकाएँ सबसे पहले उन परमाणुओं को रंग और रूप में बदलती है, उनको रंग देती हैं। हमारा सारा विचार रंग से संबद्ध है। सारे व्यक्तित्व को रंग प्रभावित किए हुए है।

हम लोगों ने मेढ़क, सर्प तथा अन्य जानवरों को देखा है कि कैसे वातावरण के परिवर्तन के कारण उनके रंग में परिवर्तन आ जाता है। मनुष्य भी वातावरण के परिवर्तन के आधार पर रंग में परिवर्तन देखा जाता है। एक अन्य बात है कि सभी ग्रहों का भी अपना रंग है। सूर्य का अपना रंग है, चन्द्रमा का अपना रंग है, मिट्टी का अपना रंग है, रत्नों का अपना रंग है, वास्तु का अपना रंग है, वातावरण का अपना रंग है तथा स्वयं का अपना रंग है तथा इन सब रंगों का आपस में सही तारतम्य तथा समायोजन ही जीवन है। यह जो सूरज का प्रकाश है इसका जीवन के साथ अत्यंत ही गहरा संबंध है। जहाँ सूरज का प्रकाश है वहाँ जीवन है। जहाँ सूरज का प्रकाश नहीं है, वहाँ जीवन नहीं है। यानी रंग है तो जीवन है अगर रंग नहीं है तो जीवन नहीं है। हमारी दुनिया का जीवन सूर्य के आधार पर चल रहा है। यदि सूर्य का प्रकाश बदं हो जाए तो पाचनतंत्र गड़बड़ा जायगा, पाचन शक्ति मंद हो जाती है। लंबे समय तक सूरज दिखाई न दे और आदमी खाता ही चला जाए तो उसका परिणाम होगा बीमारी को निमंत्रण देना। यही कारण है कि रात्री भोजन को कई धर्मों में निषेध किया गया है। सूर्य के अस्त हो जाने पर हृदय तंत्र तथा पाचनतंत्र भी संकुचित हो जाता है एवं रक्त संचार की गति धीमी हो जाती है। अतः वैज्ञानिक दृष्टि से चिंतन करें तो ऐसा लगता है कि अधिकांश बीमारियों या दर्द रात्रि के समय में ही अधिक सताते हैं जिसका कारण है सूर्य के प्रकाश यानी रंग का अभाव।

अतः अगर हमारे वास्तु में सूर्य के प्रकाश का अभाव है तो सारा कुछ गड़बड़ है। अगर उसे बदलने का कोई तरीका नहीं है तो हमें सिर्फ रंग का सहारा लेना पड़ेगा जिससे कि प्रकाश पुंज तथा रंगों के कृत्रिम मिलन से जो परमाणु निकले उनका जीवन तंत्र पर सही प्रभाव पड़ सके। यही हमारा विषय भी है। जो कि वास्तुशास्त्र एवं रंग की मूल संकल्पना पर आधारित है।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

विभिन्न प्रकार के रंग और उनके कार्य, गुण दोष एवं उपयोग

हमारे शरीर में आयुर्वेद के अनुसार वात, पित और कफ, ये तीन दोष हैं। हम तीन रंगों को लें–नीला, हरा और लाल। हमारे देश में ही प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में बच्चों का निर्धारित समय से पहले प्रसव हो जाता है। ऐसे बालक प्रायः घातक पीलिया की बीमारी के शिकार हो जाते हैं। ऐसे बालकों का उपचार पहले प्रायः बाहर से रक्त चढ़ाकर किया जाता था। अब उनका उपचार रक्त–आधान के बदले नीले प्रकाश की किरणों के स्नान से किया जाता है। एक प्रयोग के अनुसार स्कूल के कमरों में बत्तियों के साथ पराबैंगनी प्रकाश वाली बत्तियों को लगाने पर विद्यार्थियों का विकास तेजी से होता है, तथा जुकाम, नजले आदि की बीमारियों की घटनाओं में कमी आती है।

आगे हम विभिन्न रंगों तथा उसके गुण, दोष तथा उपयोग एवं सम्बन्ध के विषय में चर्चा करेंगे जिसको मूल आधार मानकर हम अपने जीवन में विशेषतया वास्तु यानी अपने भवन में जो कि वास्तुशास्त्र के नियमानुसार भवनादि का निर्माण कर लिए जाने पर 'गृह–सज्जा' का कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है। अगर गृहसज्जा एवं निवासकर्ता के अनुकूल समुचित प्रकार से की जाती है तभी वास्तु निर्माण सफल माना जाता है। अन्यथा वास्तु में निवेश करने पर तनाव, उलझने, असन्तोष, थकावट इत्यादि दोष उभरकर सामने आते हैं। साथ ही अव्यवस्थित सज्जा तथा रंग रोगन अभ्यागतों पर भी कुप्रभाव डालती है। गृहसज्जा से तात्पर्य मात्र भौतिक सुन्दरता से ही नहीं अपितु प्राकृतिक तत्वों एवं शक्तियों के सन्तुलन एवं समुचित प्रबन्धन तथा आध्यात्मिक उन्नति से युक्त भौतिक सुविधाओं की व्यवस्था करना भी है। जिससे निवासकर्ता सुखपूर्वक रह सके। सम्प्रति गृहसज्जा हेतु प्रायः सज्जाकार (डेकोरेटर्स) की सेवाएँ ली जाती हैं जो सामान्यतया निवासकर्ता की रुचि एवं भौतिक आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए गृहसज्जा सुनिश्चित करता है और ज्योतिष एवं वास्तुशास्त्र की अनदेखी कर दी जाती है।

समराङ्गणसूत्रधार के अनुसार भवन के दरवाजे पर दोनों ओर बेंतछड़ व म्यानयुक्त तलवार धारण किए हुए अलंकृत दो प्रतिहारों या प्रतिहारियों का निवेशन करना चाहिए। जिसकी प्रतिकृतियाँ बड़े–बड़े भवनों में परिलक्षित होती है। द्वार पर सुन्दर आकृतियाँ, बेंतलता इत्यादि का चित्रण किया जा सकता है। द्वार केवल सफेद, काला या लाल रंग प्रयुक्त नहीं करना चाहिए। दरवाजे पर दो या दो से अधिक रंग भी प्रयुक्त किये जा सकते हैं। यानि आगे के पृष्ठों पर प्रत्येक रंगों की मूल–संकल्पना के आधार पर इनका उपयोग किया जाना चाहिए। यानि गृह सज्जा के समय, वास्तु, ज्योतिष एवं रंग तीनों का समायोजन शास्त्र एवं वैज्ञानिक ढ़ग से इसका उपयोग हो सके यही रंगों की मूल संकल्पना बताने का उद्देश्य है।

सूर्य की रश्मियों में सात रंग पाये जाते हैं–1. बैंगनी (Violet) 2. नीला (Blue) 3. आसमानी (Indigo) 4. हरा (Green) 5. पीला (Yellow) 6. नारंगी (Orange) 7. लाल (Red)

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

बैंगनी

यह रंग व्यक्ति में सर्वोच्च गुणों को दर्शाता है व आध्यात्मिक लालसा वाला होता है। यह रंग बालों, आँखों, पाचन व मस्तिष्क के लिए लाभकारी है। अध्यात्म के विकास में इस रंग का बहुत महत्व है। मनुष्य की हिंसात्मक वृत्तियों को बदलने में यह रंग महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

नारंगी

यह रंग शारीरिक सुख, भोग, भोजन, सुरक्षा एवं आकर्षण को दर्शाता है। तथा यह परेशानी को भी चिह्नीत करता है। यह लाल एवं पीले का मिश्रण होने के कारण भौतिक एवं प्रेम का समन्वय इस रंग में है।

नीला रंग

इसका प्रभाव व्यक्ति में उच्च लालसा व प्रतिष्ठा का परिचायक है। रोग हरने की शक्ति का स्रोत है। शीतल, सुखद और संकोचक है तथा इसका प्रभाव अम्लीय होता है। यह कीटाणुनाशक होता है तथा इसका प्रभाव मुँह, गला और गले के ऊपरी भाग मस्तिष्क तक होता है। हर प्रकार की वातनजनित सूजन को मिटाता है। शरीर में किसी भी प्रकार की जलन को शांत करता है। मानसिक उत्तेजना को मिटाता है। मन को शांत और शिथिल करता है। सत्य, श्रद्धा और भक्ति की प्रेरणा देने वाला होता है। यह रंग हमारे मन, बुद्धि और विवेक को ज्यादा प्रभावित करता है। यह विश्व के लोगों द्वारा सबसे ज्यादा पसंद किया जाने वाला रंग है।

गुलाबी रंग

यह रंग प्रेम, आकर्षण एवं सद्भावना का प्रतीक है परंतु यह अपनी शीतलता के कारण व्यक्ति को शारीरिक रूप से कमजोर भी करता है। एक निष्क्रियता का बोध उत्पन्न कर देता है।

हरा रंग

प्रकृति– मध्यम, संतुलक तथा शोधक (Neutral Harmonising & Eleminating) है। यह रंग पीले तथा नीले का मिश्रण होने के कारण आपसी सदभाव, प्रेम, शांति एवं पारिस्थितीकि प्रभाव को प्रभावित करता है। यह आँखों को इस तरह प्रभावित करता है कि आँख को इसे देखने के लिए कोई श्रम नहीं करना पड़ता है यानी आँखों पर जोर नहीं पड़ता है।

लाल रंग

यह रंग शारीरिक स्वस्थता, शक्ति, पुरुषत्व को इंगित करता है। यह उग्रता का भी द्योतक है तथा यह रंग आँखों के ऊपर ज्यादा जोर देता है। बाकि रंगों में यह रंग सबसे ज्यादा चमलता दिखलाई देता है।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

पीला रंग

यह आस्था का परिचायक है। सबके मनोबल को बढ़ाता है तथा भाईचारा को बढ़ावा देता है। यह नयी सोच के लिए उद्वेलीत करता है। यह डर, डिप्रेशन भी पैदा करता है। मनोविज्ञान की दृष्टि से यह एक सशक्त रंग है।

इन्द्रधनुष (सात रंग) और वास्तु

इन्द्रधनुष जो कि साफ तौर पर प्रकृति की ओर से सात रंग को आकाश में दिखलाता है तथा पुनः प्रकृति एवं पेड़, पौधों, फूलों, पक्षियों के रंगों के रूप में सारे रंग दिखाई देते हैं।

V	Violet	बैंगनी
I	Indigo	नीला
B	Blue	आसमानी
G	Green	हरा
Y	Yellow	पीला
O	Orange	नारंगी
R	Red	लाल

जब सूर्य का प्रकाश सर्वप्रथम क्षितिज पर पड़ता है तब सबसे पहले बैंगनी रंग का सबसे ज्यादा प्रभाव ईशान कोण पर तथा लाल रंग का प्रभाव आग्नेय कोण पर पड़ता है। जैसा कि हम जानते हैं कि बैंगनी रंग शांति का एवं स्वच्छता का परिचायक है अतः ईशान कोण में अवस्थित जल स्त्रोत एवं कुंआ, तरण ताल, अल्ट्रा वायलट रंग को बढ़ावा देते हैं जो कि बहुत ही धनात्मक प्रभाव देता है। इसी तरह आग्नेय कोण पर लाल रंग का प्रभाव उस कोण पर वास्तुसम्मत कार्य व्यालर, रसोईघर, इलेक्ट्रिक संबंधी चित्रों को धनात्मक उर्जा प्रदान करता है। सूर्य की किरणों का सूर्योदय से सूर्यास्त तक पूर्व से पश्चिम की तरफ जाने से तथा इसके तेज में कमी एवं ज्यादा तथा उसका प्रभाव विभिन्न दिशाओं एवं कोणों पर पड़ता है।

पंचमहाभूत और रंग

पंचमहाभूत	विशेष गुण	शरीर के अंग	प्रकृति में रंग
पृथ्वी	गंध	नाक	हरा
जल	रस	जीभ	नारंगी

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

तेज	रुप	आँख	लाल
वायु	स्पर्श	चर्म	बैंगनी
आकाश	शब्द	कान	नीला

जैसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश इन पाँचों महाभूतों में से किसका महत्व और उपयोगिता अधिक है यह कहना कठिन है। उसी तरह हरे, नारंगी, लाल, बैंगनी, नीले, पीले, में से कौन सा रंग ज्यादा आवश्यक है यह कहना कठिन है परंतु फिर भी वास्तु एवं वास्तुशास्त्र की दृष्टि से इनके तारतम्य का विचार कर लेना आवश्यक है।

नक्षत्र एवं रंग

कक्ष के भीतरी वातावरण एवं दीवारों पर रंगों का प्रयोग व्यक्ति या गृहस्वामी के गृह रश्मि बल के अनुसार करना चाहिए जो कि नक्षत्र पर आधारित है। अतः यहाँ पर हमें गृहस्वामी के जन्म राशि के अनुसार नक्षत्र के मुताबिक उनकी रुचि विलास पर आधारित रंगों का सुझाव शास्त्र सम्मत तरीकों से दे रहा हूँ जिसकी चर्चा कूर्मपुराण में है।

नक्षत्र		रंग
1.	अश्विनी	भीतरी रंग धूम्र रंग यानी श्वेत, कृष्ण एवं पीत रंग से मिला हुआ सम्मिश्रण वाला रंग।
2.	भरणी	विविधवर्गी यानी सभी रंगों का समावेश।
3.	कृतिका	गुलाबी एवं ताम्र रंग।
4.	रोहिणी	कृष्ण वर्ण, नील वर्ण को छोड़कर शेष सभी रंग।
5.	मृगशिरा	लाल रंग, कत्थई रंग एवं सिन्दुरी रंग।
6.	आर्द्रा	नील एवं श्वेत वर्ण।
7.	पुनर्वसु	पीला, गुलाबी एवं पीताभ।
8.	पुष्य	सातों रंग शुभ, पीला एवं गुलाबी विशेष शुभ।
9.	आश्लेषा	दूब जैसा हल्का हरा रंग एवं गुलाबी।
10.	मघा	गुलाबी रंग, द्राक्षा व भूरे रंग एवं गहरा लाल।
11.	पूर्वा फाल्गुनी	गुलाबी, हल्का नीला, सिन्दुरी वर्ण एवं दुधिया रंग।
12.	उतरा फाल्गुनी	माणिक्य का रंग एवं कत्थई।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

13.	हस्त	पीला, पुष्प परागवर्ण एवं चादनी जैसा श्वेत रंग।
14.	चित्रा	गुलाबी एवं गहरे रंग।
15.	स्वाति	सीधे, सपाट रंग की अपेक्षा सम्मिश्रित रंग अधिक अच्छा।
16.	विशाखा	सुनहरा, धूसर, श्वेत एवं पीला।
17.	अनुराधा	नील एवं कबुतरी रंग।
18.	ज्येष्ठा	रक्त, पीत एवं चित्रविचित्र रंग।
19.	मूल	भूरा, मटमैला, नींबू, नारंगी, भेड़ के बाल जैसा रंग।
20.	पूर्वाषाढ़ा	दूधिया, श्वेत, तैलाभ, कटहली जैसा रंग।
21.	उतराषाढ़ा	अरुण, हरित एवं अखरोटी रंग।
22.	श्रवण	सफेद रंग मिश्री जैसा, तरल श्वेत, चौदनी जैसा।
23.	धनिष्ठा	सिन्दुरी, ताम्रवर्ण, बादामी रंग, लाल और पीले रंग का सम्मिश्रण रुचि के अनुसार।
24.	शतभिषा	जामुनिया, बादलिया एवं आकाशी रंग।
25.	पूर्वाभाद्रपदा	सुनहरा, पुखराजी एवं काषाय।
26.	उतराभाद्रपद	श्याम एवं नीला रंग।
27.	रेवती	हरा, दूब के रंग जैसा एवं श्वेत वर्ण।

इस प्रकार नक्षत्र रश्मियों के आधार पर सम्यक् या रंगों का विचार करना चाहिए। यह लग्न नक्षत्र के हिसाब से स्वीकार करना चाहिए न कि चन्द्रमा के नक्षत्र से। क्योंकि सर्वप्रथम लग्न नक्षत्र का उदय होता है, उदय लग्न ही शीर्ष है, मूल है, बीज है, इसके द्वारा ही विस्तार होता है। बिन्दु से विस्तार तक के अध्ययन के लिए मूल को खोजना आवश्यक होगा। मूल को देखकर ही विस्तार के स्वरूप की सम्भावना की जा सकती है। यथा मूल तथा फलम् का अध्ययन किया जा सकता है।

रंग और स्थान विशेष

मंदिर में उजला एवं पीला, शयन कक्ष में गुलाबी, नीला, हरा एवं आसमानी, अध्ययन कक्ष में हरा एवं पीला, भोजन कक्ष में हरा एवं पीला, भण्डार कक्ष में पीला एवं आसमानी, स्नानघर में हरा, नीला एवं पीला, शौचालय में आसमानी एवं नीला, रसोईघर में उजला एवं आसमानी,

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

बरामदा में पीला एवं आसमानी, कार्यालय में श्वेत, पीला एवं हरा, दूकान में हरा, नारंगी एवं आसमानी, अस्पताल में श्वेत एवं पीला, सिनेमा होल में हरा एवं आसमानी, फैक्ट्री में भूरा एवं हरा, कारागार में आसमानी, पीला एवं हरा, पुलीस स्टेशन में श्वेत एवं पीला करना चाहिए।

एक प्रयोग

बम्बई की घटना है एक व्यक्ति ज्वर (बुखार) से ग्रस्त रहता था। उसने बहुत दवाइयाँ लीं पर बुखार नहीं उतरा। उसने सभी तरह के साधनों का प्रयोग किया परन्तु कोई (लाभ) नहीं हुआ। उसने एक ज्योतिषी से परामर्श लिया। उसने स्थिति को देखने के बाद वास्तु का सहारा लेना उचित समझा तथा वास्तु देखने चला गया। ज्योतिषी ने देखा, रोगी, आग्नेय कोण के कमरे में जो कि लाल रंग से, रंगा हुआ था तथा लाल ही चादर पर लेटा था एवं हाथ में माणिक्य पहन रखा था। उसे समझ में आ गया, उसने तुरंत ही माणिक्य उतरवाकर तथा दूसरे कमरे में जो कि सफेद रंग का था उसमें सफेद चादर पर लिटाने को कहा। ज्योतिषी का परामर्श स्वीकार कर लिया गया। उसका चमत्कार हुआ तथा बुखार ठीक होने लगा और तीसरे दिन बुखार समाप्त हो गया। अतः हमें रंगों के प्रति जागरूक बनना चाहिए जिससे हमें अप्रत्याशित लाभ हो सकते हैं तथा हानि से बचा जा सकता है। किस रंग का कपड़ा पहने, किस रंग का खाना खाएँ, मकान या कमरे का रंग कैसा हो, इसका विचार अवश्य करना चाहिए।

गुलाबी रंग - एक प्रयोग

केलिफोर्निर्या (अमरीका) के सान बरमार्डिनो काउण्टी के "प्रोबेशन विभाग" (अपराध-सुधार विभाग) की स्वास्थ्य सेवा के निर्देशक श्री पौल इ० बोकुनिनी के अनुसार-"हमारे यहाँ कैद बाल अपराधी जब कभी उन्मत होकर हिंसा पर उतारू हो जाते हैं, तब पहले हम यातनाओं द्वारा उन पर नियंत्रण प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे, परन्तु अब हम उन्हें ऐसे कमरे में रखते हैं जिसकी दीवारें एक विशेष गुलाबी रंग से रंगी हुई होती है। हमने पाया कि वे उदंड बच्चे चिल्लाना छोड़कर शिथिल और शांत होकर केवल 90 मिनट में ही निद्राधीन हो जाते हैं।" समूचे अमेरीका में लगभग 1500 से अधिक अस्पतालों एवं सुधार-गृहों में कम से कम एक कमरा गुलाबी रंग की दीवारों वाला होता ही है। यह गुलाबी रंग "शांतिदायक गुलाबी रंग" के नाम से प्रसिद्ध है।

प्रयोग

मैंने दुरभाष के द्वारा एक अकस्मात् प्रश्न का प्रयोग किया जिसमें मैंने अपना नाम बताते ही सर्वप्रथम यह पूछा कि आपके पसंद का रंग क्या है। उस उत्तर के आधार पर एक सत्य जो सामने आया वह इस प्रकार है।

बैंगनी रंग 02, नीला रंग 04, आसमानी रंग 42, हरा रंग 27, पीला रंग 02, नारंगी रंग 01, लाल रंग 07, कुछ नहीं पता 15, कुल 100. अधिकत्तर लोग आसमानी रंग पसन्द करते हैं। दूसरा

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

नम्बर हरे रंग का है। यह रंग मानसिक स्थिति को दर्शाता है। इस तरह मेरा यह प्रयोग बच्चों, स्त्रियों, वृद्धों के ऊपर जारी है।

जीवन में कुछ भी नया नहीं है और नहीं कुछ हो रहा है, जो पहले कभी नहीं हुआ है, जो कहीं और नहीं है, या किसी ने नहीं देखा, परन्तु फिर भी नयेपन का आभास होते ही ताजगी का अहसास होता है, तुष्टि सी मिलती है। यह तुष्टि भी चिरन्तन नहीं, क्षणिक ही होती है, किन्तु क्षण भर का आनन्द भी आनन्द ही होता है, जो अनिर्वचनीय है। इस अकथ्य का उत्तर है रंग। यह क्यों है, क्या है इसका उत्तर देने का प्रयास मैंने वास्तुशास्त्र में रंग विन्यास (एक मूल संकल्पना) में किया है। यों तो इस प्रश्न का उत्तर बहुत ही कठिन है, शायद ही हल कर पाऊँगा। क्योंकि आज तक जो मैंने सोचा, जो मैंने योजना बनाई, वह कभी साकार नहीं हुई, और मैंने जो नहीं विचारा, वह अनायास ही सहज रूप से सम्पन्न होता चला गया। मैं यही कहना चाहूँगा कि अदृश्य सत्ता निरन्तर संकल्प बुनती रहती होगी, जिसे (मैं) मेरा स्थूल रूप समझ नहीं पाया होगा, अन्यथा यह तो नहीं हो सकता है कि मेरे बिना चाहे कोई आकार बन जाये और गति या शब्द प्राप्त कर ले परन्तु यह सब हो सकता है उसका एकमात्र आधार है रंग।

रंगों की मूल संकल्पना में गृहस्थ को किस रंग का चयन करना चाहिए और क्यों उसका मानक क्या होना चाहिए, उसके उपयोग से क्या चाहते हैं, क्या नयापन चाहिए, किसे दिखाना है, स्वयं को क्या देखना है, मन में क्या भाव छिपा है जिसे उजागर करना है, ताकि मुख से बोलना ना पड़े, लोगों को सिर्फ रंग से ही समझ में आ जाए, क्या संकेतात्मक भाषा है रंग। एक ही रंग से भी तृप्ति हो जाती है, ऊबन सी आ जाती है, क्योंकि उस रंग का कार्य समाप्त हो जाता है, उस रंग का उपयोग जिस दृष्टि से किया गया था वह समापन की तरफ है अतः ऊबाई तो होगी ही। अतः रंग-वैविध्य होते हुए भी अधिक बल किस रंग पर दिया जाय। हमारे आत्मिक जीवन के वर्तमान कार्य को, वर्तमान समय में, आधुनिकता के दौर में, लोगों की मानसिकता, स्वयं की मानसिकता को किन रश्मियों की सर्वाधिक आवश्यकता है। हम उन्हें ही प्राप्त करने के लिए, यानि उन रंगों से प्रभावित होने के लिए तथा प्रभावित करने के लिए समुचित माध्यम का चयन करना है जो कि बाह्य सत्ता एवं आभ्यान्तर अस्तित्व दोनों का विश्लेषण कर सके।

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः

(केन्द्रीयविश्वविद्यालयः)

CC-0. In Public Domain. Digtized by Muthulakshmi Research Academy

नवदेहली-110016